भारत में पचायती राज लगभग उतना ही पुराना है जितना स्वयं भारत। लेकिन आज हमारे गाँव-गाँव में जो पचायतें है, वे एक अलग और सर्वथा नयी कहानी है। ग्राम, ब्लॉक और जिला–इन तीन स्तरों पर देश भर में फैली हुई इन पचायतों की स्वतंत्र संवैधानिक सत्ता है। इसे भारतीय राज्य का तीसरा पाया कहा जा सकता है, जिसकी जरूरत 1990 के आसपास इसलिए बहुत ही तीव्रता से महसूस की गयी कि जनता की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए सिर्फ केंद्र और राज्य सरकारों पर परपरागत निर्भरता की सीमाएँ उस समय तक उजागर हो चुकी थीं और सत्ता के विकेंद्रीकरण के अलावा कोई और उपाय नहीं रह गया था।

तिहत्तरवें संविधान संशोधन को लागू हुए एक दशक बीत चला है। प्रश्न यह है कि क्या इस लक्ष्य को हम किसी बडी सीमा तक हासिल कर पाये है, जो इस दूसरी लोकतांत्रिक क्रांति के संवैधानिक स्वप्न के केंद्र मे था? उत्तर मिला-जुला है। पचायती राज के माध्यम से गाँव के स्तर पर एक मौन क्रांति का सूत्रपात हो चुका है। सत्ता के जमीनी स्तर के प्रयोग मे महिलाओं, दलितों और आदिवासियों को वांछित स्थान मिल गया है। लगभग सभी राज्यों में पंचायतों के चुनाव नियमित अंतराल पर होने लगे है। बहुत-सी पचायतों मे लोक सत्ता अपने को अभिव्यक्त भी कर रही है। पचायती राज की सफलता कथाएँ देश के विभिन्न कोनों से सुनाई पडने लगी है।

लेकिन किस्सा यह भी है कि सभी कुछ ठीक-ठाक नहीं है। ग्रामीण भारत की परपरागत सत्ताएँ इस नये लोकतांत्रिक निज़ाम को स्वीकार करने के मूड मे नहीं है। छल और वंचना के विभिन्न प्रपचों से तथा जरूरत पड़ने पर प्रत्यक्ष हिंसा के द्वारा भी वे पंचायत राजनीति के नये खिलाडियों को दबाने और कुचलने में लगी हुई हैं। सबसे ज्यादा अफसोस और चिंता की बात यह है कि राज्य सरकारें नहीं चाहतीं कि ये स्थानीय सरकारें उनकी सत्ता मे थोड़ी भी साझीदारी करें और केंद्रीय सरकार भी तरह-तरह से पचायती राज को शक्तिहीन करने की कोशिश कर रही है। इस निर्णायक मुकाम पर 'पंचायती इच्छाशक्ति' ही कोई बडा कमाल कर सकती है।

भारत मे पचायती राज के स्वप्न, परियोजना और कमजोरियों का यह प्रखर लेखा-जोखा देश के अनन्य समाजविज्ञानी डॉ. जॉर्ज मैथ्यू ने तैयार किया है। पचायती राज और विकेंद्रीकरण के प्रति उनका जैसा अगाध लगाव है और इस क्षेत्र में सिद्धांत और व्यवहार, दोनों स्तरों पर जितनी निरंतरता और गहराई से उन्होंने कार्य किया है, उसे देखते हुए यह काम उनसे बेहतर और कौन कर सकता था?

आवरण चित्र - सर्वेश

भारत में पंचायती राज

परिप्रेक्ष्य और अनुभव

भारत में पंचायती राज
परिप्रेक्ष्य और अनुभव

जॉर्ज मैथ्यू

भारत में पंचायती राज त
भारत। लेकिन आज इ
अलग और सर्वथा
जिला—इन तीन स्तरों
की स्वतन्त्र संवैधानिक
पाया कहा जा सकता
इसलिए बहुत ही तीव्र
बुनियादी आवश्यकत
राज्य सरकारों पर प
तक उजागर हो चुकी
कोई और उपाय नहीं
तिहत्तरवें संवि
दता है। प्रश्न यह
सीमा तक हासिल क
के संवैधानिक स्व
पंचायती राज के म
का सूत्रपात हो चुक
महिलाओं, दलितों
गया है। लगभग स
अंतराल पर होने ल
की अभिव्यक्त भी
कथाएँ देश के वि
लेकिन किस
है। ग्रामीण भारत
निजाम को स्वीका
के विभिन्न प्रपंचो
द्वारा भी वे पंचाय
और कुचलने में ल
की बात यह है कि
सरकारें उनको स
सरकार की तरह
की कोशिश कर
इच्छाशक्ति' ही
भारत में
कमजोरियों का
समाजविज्ञानी ड
और विकेंद्रीकर
इस क्षेत्र में लि
निरंतरता और
हुए यह काम

ISBN 81-8143-048-4

अरुणोदय प्रकाशन
सी-191, आनन्द विहार, दिल्ली-110092
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण · 2003

मूल्य · 300.00

शुभम् ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110032
में मुद्रित

PANCHAYATI RAJ IN INDIA
Perspectives and Experiences
by George Mathew

विषय सूची

परिप्रेक्ष्य

अनुभव

प्रस्तावना

दस वर्ष पूर्व, 24 अप्रैल 1993 को, पचायतें भारतीय संविधान के भाग नौ का अंग बन गयी। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के लागू होने के बाद मैंने जो निबंध लिखे हैं, यह पुस्तक उन्हीं का एक चयन है। इसके माध्यम से मैंने पंचायतों की दस वर्षो की यात्रा को उकेरने की कोशिश की है।

जैसा कि जाहिर है, दस वर्षो की यह यात्रा न तो बाधारहित रही है और न ही हमेशा वांछित दिशा में। निश्चय ही, हमारे जैसे, ढेर सारी जटिल समस्याओ से भरे, समाज में रेडिकल परिवर्तन लाना कोई आसान काम नही है। कठिनाई तब और बढ जाती है, जब परिवर्तन का लक्ष्य उन बहुसंख्यक लोगो को सत्ता देना हो जो परपरागत रूप से हाशिये का जीवन जीते रहे है और समाज से बहिष्कृत रहे हैं। यही कारण है कि पचायते एक ओर तो सत्ताधारियों की संपूर्ण उपेक्षा का शिकार और दूसरी ओर भूपतियों, सामती तत्वों और ऊँची जातियों की हिंसक और ध्वंसपूर्ण प्रतिक्रिया के निशाने पर रही हैं। दूसरी अजीब-सी बात यह हुई कि जिन हाथों ने यह गत्यात्मक सवैधानिक ढॉचा निर्मित किया, वे हाथ ही इसे नष्ट करने की कोशिश करते रहे है। ससद सदस्यो और विधान सभा सदस्यों में यह एहसास सताता रहता है कि उनकी ही बनायी हुई चीज सत्ता और स्वार्थ विस्तार की उनकी उच्छृंखल भूख के मार्ग में बाधक बन रही है। नौकरशाही भी इस रेडिकल कदम से बहुत खुश नहीं है कि तृणमूल स्तर पर गठित 'स्वशासन की संस्थाओ' के माध्यम से अधिकार आम जनता को दिये जा रहे हैं।

लेकिन देश भर में लोगों ने यह दिखा दिया है कि पीछे लौटना संभव नही है। पंचायतों के काम-काज के बारे में बहुत-सी नकारात्मक कथाओ के देशव्यापी प्रचार के बावजूद इस तथ्य को विलक्षण स्वीकृति मिली है कि पचायतें

अपने क्षेत्र मे अच्छा काम कर रही हैं। यह भी लक्षित किया गया है कि जहाँ भी महिलाओं को स्थानीय निकायों के संचालन मे स्वतत्र रूप से काम करने का अवसर मिला है, परिणाम बहुत ही सकारात्मक रहे है। इन नयी स्थानीय लोकतात्रिक संस्थाओ की सक्रियता के दस वर्ष बाद हम पाते है कि सुशासन, जवाबदेही, दूरदर्शिता, सूचना का अधिकार तथा इनसे जुड़े अन्य मुद्दों की राष्ट्रव्यापी चर्चा होने लगी है। यह कोई साधारण उपलब्धि नहीं है। यह हमारे समाज और राजनीतिक तंत्र के भविष्य के लिए शुभ साबित होगा।

इस पुस्तक के अध्याय इस एकनिष्ठ लक्ष्य से लिखे गये हैं कि जमीनी स्तर का प्रामाणिक लोकतंत्र और लोकतात्रिक संस्थाएँ हमारी सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति का आधारभूत अंग बनें, निर्णय-प्रक्रिया में बहिष्कृत समुदायों की भागीदारी और स्त्री-पुरुष समानता जीता-जागता यथार्थ बन सकें। पंचायतों की विशद संभावनाओं के प्रति लोगों में सचेतनता पैदा करके ही यह लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। यह पुस्तक इसी दिशा में एक छोटा-सा प्रयास है।

मेरे सहकर्मी श्री राजकिशोर ने अग्रेजी में लिखे गये इन लेखों के चयन, अनुवाद और संपादन का कष्ट किया है। मैं उनका विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। अनुवाद कार्य में श्रीमती अन्नू आनद और पांडुलिपि तैयार करने मे सुश्री माधवी मिश्रा का उल्लेखनीय योगदान है। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

जॉर्ज मैथ्यू

परिप्रेक्ष्य

1

एक सिंहावलोकन

> सशोधित संविधान मे राज्यो के लिए आवश्यक है कि वे न केवल गॉवों के लिए, वल्कि माध्यमिक तथा जिला स्तर पर भी पंचायतो को स्वशासन की सस्थाओ के रूप में गठित करे। परिणामस्वरूप सरकार की तीन परते होगी : संघ, राज्य तथा पचायते। इससे अधिक सारभूत परिवर्तन की कल्पना कर पाना कठिन है। इसके प्रभाव व्यापक होंगे।[1]
>
> –निर्मल मुखर्जी

यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान कृषि अर्थतंत्र मे स्वशासित ग्राम समुदायो का अस्तित्व रहा है। न केवल ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व रचित ऋग्वेद मे इनका उल्लेख है, बल्कि ईसा के छह सौ वर्ष पूर्व तक के युग में भी 'ग्राम सभाओं' (परिषदो अथवा सभाओं) एव 'ग्रामीणो' (गॉव के वरिष्ठ व्यक्तियों) के विद्यमान होने का उल्लेख मिलता है। ये सभी ग्राम निकाय गॉवो से सबधित मामले उच्चाधिकारियो के सम्मुख पहुँचाने के सूत्र थे।

उपनिवेश-पूर्व काल में

समय वीतने के साथ-साथ इन ग्राम निकायो का स्वरूप बदला और पंचायते (पॉच व्यक्तियो की समिति) बन गयीं जो गॉव की गतिविधियो का कामकाज सॅभालती थी। उन्हें पुलिस के तथा न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। रीति-रिवाजो तथा धर्म ने उन्हे सामाजिक प्राधिकार का पवित्र स्थान प्रदान किया। ग्राम पचायतो के अलावा जातिगत संस्थाएँ भी हुआ करती थीं, जो जाति विशेष के सदस्यों द्वारा उस जाति के सामाजिक आचार-विचार और नैतिक संहिता का पालन सुनिश्चित करती थी जहाँ एक ओर गगा की घाटी में यह आम पद्धति थी वहीं दूसरी ओर दक्षिण में

एव जातियों के प्रनिनिधियों को शामिल कर एक प्रशासी निकाय का गठन किया जाता था। यहाँ कह कहना उचित होगा कि उत्तरी एवं दक्षिणी भारत दोनो ही भागो में ऐसे ग्राम निकाय प्रशासन के केदबिन्दु तो थे ही, वे सामाजिक जीवन के तथा इससे भी बढ कर परस्पर सामाजिक ऐक्यबद्धता के मुख्य बिन्दु थे। यहाँ तक कि मध्य युग एवं मुगल काल मे भी ग्राम पचायतो का यह स्वरूप परिवर्तन से अछूता हीं रहा। यद्यपि मुगल काल में न्यायिक अधिकारो पर पाबन्दी लगा दी गयी, लेकिन स्थानीय गतिविधियों पर ऊपर का कोई नियंत्रण नहीं था एवं ग्राम अधिकारियो औग कर्मचारियो का उत्तरदायित्व पंचायतो के प्रति ही बना रहा।

भारत के अन्तरिम गवर्नर-जनरल सर चार्ल्स मेटकाफ (1835-36) ने भारतीय ग्रामीण समुदायों को 'लघु गणराज्यो' की संज्ञा प्रदान की। इसका तात्पर्य यह नही है कि ये लोकतान्त्रिक 'गणराज्य' सभी लोगों की भागीदारी से कार्य करनेवाली आदर्श सस्थाएँ थी। ग्रामीण समाज में उस समय व्याप्त जातिग्रस्त सामती सरचना के कारण उनमे बहुत-सी कमियाँ थी। बी आर. आम्बेडकर इन ग्रामीण समुदायो के बारे में ऊँचे विचार नहीं रखते थे। वास्तव मे निजी अनुभवों ने उनके मन पर इन जातिग्रस्त गॉवो एव पचायतो की नकारात्मक छाप छोडी थी। सविधान सभा मे 4 नवबर 1948 को दिये गये उनके इस प्रसिद्ध वक्तव्य को, 'इन ग्राम गणराज्यो ने भारत को बरवाद किया है और वे स्थानीयता की नाली, अज्ञान, सकीर्णता एव साप्रदायिकता की गुफा है।'[2] उसके सही परिप्रेक्ष्य मे देखा जाना जरूरी है।

आम्बेडकर ने भले ही ग्राम समुदाओं की स्थिति का आकलन तीखे रूप से किया हो, यह महत्वपूर्ण है कि प्राचीन ग्राम प्रणाली को, विशेषकर समानता ओर लोकतंत्र के मूल्यों के संदर्भ में, रोमांटिक दृष्टि से देखने से बचना होगा। एक बार जयप्रकाश नारायण ने टिप्पणी की थी कि पुराने ग्राम समुदाय किसी और रूप मे नही, फकत अपने भौतिक स्वरूप मे ही जीवित है। अब वे ऐसे जीवंत समुदाय नही रह गये हैं जो किसी व्यक्ति अथवा समुदाय की कठिनाइयों का समाधान ढूँढने ओर उसके नैतिक तथा भौतिक जीवन का विकास करने का काम सामूहिक रूप से कर सके।

ब्रिटिश युग

अंग्रेजो के आगमन के उपरांत आत्मनिर्भर ग्राम समुदाय तथा उनकी पचायतों को पोषण मिलना समाप्त हो गया। काल क्रम मे उनका स्थान औपचारिक रूप से गठित ग्राम प्रशासन ने ले लिया। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत में एक उत्तरदायी प्रतिनिधि संस्था के रूप मे स्थानीय स्वशासन अंग्रेजो की देन है।

यहाँ यह बात जोर दे कर कही जा सकती है कि ग्राम पंचायतें अंग्रेज शासको के लिए पहली प्राथमिकता नही थीं। उन्होंने मुख्यत व्यापारिक केंद्रो के आसपास

अपना ध्यान केंद्रित किया था। अतः प्रारम्भ मे प्रमुख नगरो मे नामित सदस्योंवाले स्थानीय निकायो का गठन ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इसी के तहत 1687 में मद्रास मे एक नगर निगम स्थापित किया गया। टाउन काउसिल के ब्रिटिश मॉडल पर बनाये गये इस निकाय को गिल्ड हॉल तथा विद्यालय निर्माण पर कर लगाने का अधिकार दिया गया। समय बीतने के साथ-साथ इस निकाय तथा अन्य प्रमुख नगरो मे गठित इसी प्रकार के निकायो के कार्य कलाप का विस्तार हुआ तथा उनके कराधान अधिकारो मे वृद्धि की गयी। यद्यपि ये निकाय स्थानीय सरकारो की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करते थे, किंतु इनका सचालन निर्वाचित सदस्यो के बजाय नामाकित सदस्य ही करते रहे।

मेयो प्रस्ताव : 1870 मे लॉर्ड मेयो ने अधिकारो के विकेन्द्रीकरण के लिए अपनी परिषद द्वारा एक प्रस्ताव करवाया, ताकि जनता की माँगें पूरी करने की प्रक्रिया मे प्रशासनिक कुशलता लायी जा सके और 'देश की बढ़ती माँगों को पूरा करने मे अपर्याप्त इपीरियल ससाधनों में वित्तीय वृद्धि' की जा सके।[3] जैसा कि वायसराय काउसिल के वित्त सदस्य सैमुअल लैंग ने कहा था, 1857 के विद्रोह के कारण इपीरियल वित्तीय व्यवस्था पर भरपूर दबाव पड़ा तथा यह जरूरी समझा गया कि स्थानीय कराधान से ही स्थानीय सेवाओ की वित्त व्यवस्था की जाये। अत· वित्तीय मजबूरी के कारण स्थानीय सरकार सबधी लॉर्ड मेयो का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। फिर भी इस क्षेत्र में ब्रिटिश शासन के नीति विकास में यह एक ऐतिहासिक कदम था। इस प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए बंगाल चौकीदारी अधिनियम के जरिये 1870 में बंगाल मे परपरागत ग्राम पचायत प्रणाली को पुनर्जीवित किया गया। इस अधिनियम ने जिला मजिस्ट्रेटो को गाँवों में नामांकित सदस्योंवाली ग्राम पचायते गठित करने का अधिकार प्रदान किया। नामाकित सदस्योंवाली ये पचायते कर लगा सकती थीं, ताकि वे अपने द्वारा नियुक्त चौकीदारो को वेतन दे सकें। 1880 के अकाल आयोग ने स्थानीय निकायो के न होने से अकाल पीडित लोगों तक राहत सामग्री पहुँचाने मे आनेवाली दिक्कतों का जिक्र किया था तथा स्वशासन की सस्थाओ का विस्तार गाँवो तक भी करने की आवश्यकता पर बल दिया था।

रिपन प्रस्ताव : इस पृष्ठपट मे वायसराय के रूप मे लॉर्ड रिपन जैसे उदारवादी के प्रवेश ने देश में स्थानीय सरकारो के संरचनात्मक विकास में एक ऐतिहासिक मोड का काम किया। उनके वायसराय काल में 18 मई 1882 के सरकारी प्रस्ताव को, जिसमे अधिक सख्या मे गैरसरकारी सदस्यो के भारी बहुमतवाले स्थानीय बोर्डों के गठन तथा गैरसरकारी अध्यक्ष का प्रावधान था, भारत मे स्थानीय सरकार का मेग्ना कार्टा माना जाता है। इस प्रस्ताव के आने से स्थानीय शासन की भूमिका को विस्तार मिला। 'जन सेवा की भावना रखनेवाले उस कुशाग्रबुद्धि वर्ग' का इस्तेमाल करने के उद्देश्य से, जिसका इस्तेमाल कर पाने में विफलता 'न केवल त्रुटिपूर्ण नीति

है, वल्कि सत्ता की शुद्ध बरबादी भी', निर्मित इस प्रस्ताव मे ग्रामीण निकायो के गठित करने का प्रावधान था, जिनके दो-तिहाई सदस्य निर्वाचित प्रतिनिधि होने थे।[4] यद्यपि 1882 के रिपन प्रस्ताव की अपेक्षा के अनुरूप स्थानीय स्वशासन की प्रगति धीमी रही, क्योंकि जिला स्तर पर नगर निगम निकायो तथा बोर्डो के गठन के लिए कुछ ही कदम उठाये गये और वह भी बेमन से, पर यह जरूर हुआ कि 'स्वशासन' शब्द का प्रचलन शुरू हो गया।

1906 मे दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने देश के लिए राजनीतिक ध्येय के रूप मे 'स्वशासन' को स्वीकार किया। 1907 में सरकार ने विकेंद्रीकरण पर शाही आयोग का गठन किया, जिसने 1909 मे प्रकाशित अपनी रिपोर्ट मे रिपन प्रस्ताव मे समाविष्ट सिद्धांतों को और अधिक विस्तृत किया। यद्यपि इस आयोग में अंग्रेज सदस्य पाँच थे तथा भारतीय सदस्य मात्र एक रमेशचंद्र दत्त थे। फिर भी इस आयोग ने भारतीय संदर्भ मे पंचायतो के महत्व को समझा। आयोग ने सिफारिश की कि 'विकेंद्रीकरण के हित में लोगों के लिए भी यह बहुत वांछनीय होगा कि गाँवो के स्थानीय मामलो के प्रशासन के लिए ग्राम पचायतों का गठन और उनका विकास किया जाये।[5] यद्यपि आयोग ने ऐसे प्रयासों में आनेवाली कुछ कठिनाइयो की कल्पना भी की थी, जैसे 'जाति एवं धार्मिक विवाद' अथवा धनी जमींदारो का प्रभाव जो 'किरायेदारों द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक काम करने को रोक सकते है।' उसने कहा कि ये दिक्कतें ऐसी नहीं है कि दूर न की जा सकें। इसी वर्ष (1909) लाहौर में हुए कांग्रेस के चौबीसवे अधिवेशन मे प्रस्ताव पारित किया गया कि 'ग्राम पंचायतो तथा उनसे ऊपर के सभी स्थानीय निकायो को चुनाव-आधारित बनाया जाये तथा उनका अध्यक्ष गैरसरकारी व्यक्ति हो और उन्हे पर्याप्त वित्तीय समर्थन दिया जाये।'[6] इस दिशा में शीघ्र कदम उठाने हेतु सरकार से अनुरोध किया गया। किंतु रिपन प्रस्ताव की तरह ही विकेंद्रीकरण पर बने शाही आयोग द्वारा प्रस्तुत अधिकांश सिफारिशें कागजी बन कर रह गयीं, जिस पर कराची में दिसंबर 1913 में हुए कांग्रेस के अट्ठाइसवे अधिवेशन मे पारित प्रस्ताव में टिप्पणी की गयी। कोलकाता में 1917 मे हुए कांग्रेस अधिवेशन में डॉ. ऐनी बेसेंट ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे विकेंद्रीकरण पर गठित शाही आयोग की रिपोर्ट में जो बहुत मामूली सिफारिशे की गयी थीं, उन पर भी कार्यवाही न करने के लिए सरकार को दोषी ठहराया।

मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार : द्विशासन की प्रस्तावित योजना के तहत 1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों ने स्थानीय सरकार को 'हस्तांतरित विषय' बना दिया। इसका अर्थ यह था कि स्थानीय सरकार का विषय प्रदेशों के भारतीय मंत्रियों के अधिकारो के अंतर्गत आ गया। यह भविष्य के लिए आशा पैदा करनेवाला और प्रगतिवादी कदम था। स्थानीय स्व-सरकारों को पूर्णतः प्रतिनिधिक और उत्तरदायी बनाने के लिए सुधारों में यह सुझाया गया कि स्थानीय निकाय यथासंभव निर्वाचित जन प्रतिनिधियो

क नियत्रण मे हाने चाहिए तथा उन्ह बाहरी नियत्रण स अधिकाधिक स्वतत्रता होनी चाहिए।[7] मांटग्यू-चेम्सफोर्ड योजना का यह घोषित लक्ष्य होते हुए भी संगठनात्मक एव वित्तीय दोनो ही स्तरो पर विभिन्न दबावों के कारण गॉवो के स्तर पर पचायत सस्थाओं को वास्तव में लोकतात्रिक तथा स्वशासन का सक्रिय माध्यम नही बनाया जा सका। फिर भी ग्राम पचायतो के गठन के लिए देश के लगभग सभी प्रातो मे तथा अनेक रियासतों मे अधिनियम पारित तो हुए ही। 1929 तक ब्रिटिश भारत के आठ प्रांतों मे ऐसे अधिनियम पारित हो चुके थे।[8] वहरहाल, इन साविधिक पंचायतो के अंतर्गत गॉवों की एक छोटी-सी सख्या ही आ सकी और उन्हें भी सीमित कार्य ही सौपे गये।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 : भारत सरकार अधिनियम, 1935 तथा उसके अतर्गत प्रादेशिक स्वायत्तता की शुरुआत से देश मे पंचायतो के क्रमविकास में एक और महत्वपूर्ण चरण प्रारम्भ हुआ। प्रदेशे मे निर्वाचित प्रतिनिधिक सरकारें होने के परिणामस्वरूप लगभग सभी प्रादेशिक प्रशासनो ने अपना यह कर्तव्य माना कि ग्राम पचायतों सहित स्वशासन की सभी संस्थाओं को और अधिक लोकतात्रिक बनाया जाये। यद्यपि 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने पर प्रदेशों मे शासन करनेवाली प्रतिनिधिक कांग्रेस सरकारों ने इस्तीफा दे दिया, फिर भी 1947 तक स्थानीय शासन की सस्थाओं की स्थिति यथापूर्व बनी रही।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की वैचारिक रूपरेखा में ग्राम पचायतो का स्थान केंद्रीय था। गांधी जी ने 'ग्राम स्वराज' की जो परिकल्पना की थी, उसमे ग्राम पंचायतों को परिपूर्ण लोकतंत्र एव व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित सपूर्ण गणराज्यों के रूप में देखा गया था।[9]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद

सवैधानिक वहस

लोकतांत्रिक विकेद्रीकरण के प्रति भारत की राष्ट्रीय प्रतिबद्धता पर यह एक दुखद टिप्पणी है कि गॉव के एतिहासिक रूप से प्रशासन की मूलभूत इकाई होने, पंचायतो के प्रति राष्ट्रीय आंदोलन की प्रतिबद्धता और इस विचारधारा को गांधी जी द्वारा अनवरत रूप से प्रचारित किये जाने के बावजूद भारतीय सविधान के प्रथम प्रलेख मे पंचायतो के लिए कोई प्रावधान शामिल नहीं किया गया। गांधी जी को यह पता चला कि प्रस्तावित सविधान मे पंचायतो के लिए कोई प्रावधान नहीं है, तो उन्होने टिप्पणी की कि यह निश्चय ही एक भूल है और भारत की स्वतंत्रता में जनता का स्वर प्रतिध्वनित होना है, तो हमे इसकी ओर तुरंत ध्यान देना होगा।

सविधान सभा में पंचायतों के खिलाफ आम्बेडकर के तर्को के जवाब मे मैसूर के माधव राव ने कहा था, 'यह सच है कि गॉव लवे समय से गुटबदी की प्रवृत्ति

से ग्रस्त है, और वहाँ छोटे-छोटे जुल्म होते रहते है, अथवा व छुआछूत के गढ बन हुए हैं। ज्यादातर गाँवो की दशा या तो दयनीय है या वे मरणासन्न है।'[10] तथापि उन्होंने इस बात पर वल दिया कि यदि तीस प्रतिशत गाँव भी अच्छे गाँवो के रूप मे वर्गीकृत किये जा सकते है, तो उनकी उपेक्षा नही की जा सकती। उन्होंने मैसूर की तत्कालीन लोकप्रिय सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों का उदाहरण देते हुए बताया, 'यह उत्साहवर्धक है तथा, कई मामलो मे, काफी संतोषप्रद है।'[11] सविधान में ग्राम पचायतो को शामिल करने का आग्रह करनेवाले तर्कों को अतंतः मान लिया गया--हालाँकि एक सीमित स्तर पर। सविधान के भाग चार (राज्य नीति के निदेशक सिद्धातो) मे पंचायतों का प्रावधान शामिल करवाने मे सफलता मिली। अनुच्छेद 40 मे कहा गया है कि 'राज्य ग्राम पंचायतों का सगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हे स्वायत्त शासन की इकाइयो के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।' यह दो परस्पर-विरोधी नजरियो के बीच एक समझौता था।

संविधान में एक अन्य स्थान पर 'स्थानीय शासन' का उल्लेख किया गया है। अनुसूची सात, सूची दो (राज्य सूची) के पाँचवे इदराज में कहा गया है 'स्थानीय शासन अर्थात नगर निगमों, सुधार न्यासो, जिला बोर्डो, खनन प्राधिकरणों और स्थानीय स्वशासन या ग्राम प्रशासनो के प्रयोजन के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकरणों का गठन और शक्तियाँ।' निश्चित रूप से पचायतो को उनका स्थान दिये बिना स्थानीय शासन को परिभाषित करने का यह एक असाधारण तरीका है।

गाधीवादियो ने पंचायतो को न केवल साधन, बल्कि लक्ष्य भी माना, साथ ही, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण तथा जनता को अधिकार प्रदान करने की उनकी गहरी क्षमता में भी उनका विश्वास था। यद्यपि आम्बेडकर की आपत्ति लोकतात्रिक विकेंद्रीकरण या जनता को अधिकार सौपने की धारणा के प्रति नहीं थी, जो एक आदर्श पंचायत प्रणाली की निष्पत्ति होती। वे अपने अनुभवों के आधार पर बता रहे थे कि भारत के जातिग्रस्त ग्राम समाज का अर्थ उनके और उनकी तरह के करोडो लोगो के लिए क्या था। बेशक उनका अनुबोध भी उतना ही यथार्थवादी था जितना दूसरे वर्गो के लोगो का।

ग्राम पचायतें सामाजिक बदलाव तथा विकास कार्यो को कार्यान्वित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है-- इस मूल धारणा की आसानी से उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। किंतु यह बुनियादी सवाल अभी तक अनुत्तरित ही है : पंचायतो को सविधान के उन हिस्सो मे क्यों नही रखा गया जो विधिक रूप से लागू किये जा सकते हैं? उन्हे उपयुक्त सवैधानिक दर्जा एव मान्यता क्यों नही दी गयी? इसका उत्तर यह है कि शहरी तथा ग्रामीण संभ्रांत वर्ग तथा राजनीति में उनके प्रतिनिधियो को (राष्ट्रीय स्वतत्रता आंदोलन के समय से ही) पंचायतों से घृणा थी और यह घृणा

जस की तस बनी हुई है। सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए जो भी सच्चे प्रयास किये गये, इन स्वार्थो ने उन्हे सफल नही होने दिया। स्वतत्रता के बाद से पचायत सस्थाओ की कहानी सक्षेप मे यही है।

1977 तक पंचायतों का उत्थान एवं पतन

पचास के शुरुआती दशक मे भारतीय विकास की योजना में गांधी जी के ग्राम विकास के विचार को ध्यान में नहीं रखा गया। लेकिन इस दृष्टिकोण की मूर्खता को समझने मे अधिक समय नही लगा। 1952 में उद्घाटित सामुदायिक विकास की योजनाएँ, जो मारथंडम, शाति निकेतन, बडौदा, इटावा और नीलोखेड़ी के पैटर्न पर बनायी गयी थी, लोगों की भागीदारी के बिना निरर्थक साबित होने लगीं। सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रमों में ऐसी भागीदारी प्राप्त करने के लिए एक संस्थागत ढॉचे का सुझाव देने के लिए 1957 में योजनागत परियोजनाओं पर बनायी गयी समिति ने इन दो कार्यक्रमो के अध्ययन के लिए एक दल गठित किया। सांसद बलवतराय मेहता इस अध्ययन दल के अध्यक्ष थे। अध्ययन दल का मत था कि गॉव के स्तर पर ऐसी एजेंसी के बिना, जो पूरे समुदाय का प्रतिनिधित्व कर सके, और उत्तरदायित्व ले सके तथा विकास कार्यक्रमो के कार्यान्वियन को आवश्यक नेतृत्व प्रदान कर सके,[12] ग्रामीण विकास के क्षेत्र में वास्तविक प्रगति सभव नही है। उसकी इस सिफारिश से कि 'सामुदायिक कार्यो मे जन प्रतिभागिता को सांविधिक प्रतिनिधि निकायो के जरिये सगठित किया जाये।'[13] राष्ट्रव्यापी स्तर पर व्याप्त भावनाओ को बल मिला।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के पक्षधर बलबंतराय मेहता अध्ययन दल की सिफारिशों से सभी राज्यो मे पंचायत राज सस्थाएँ गठित करने के कार्य मे गति आयी। यहॉ यह भी याद किया जाये कि तत्पश्चात राष्ट्रीय विकास परिषद ने भी बलवतराय मेहता रिपोर्ट की सकल्पना मे लोकतांत्रिक विकेद्रीकरण की स्पष्ट अभिव्यक्ति को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया तथा प्रत्येक राज्य के लिए उपयुक्त संरचना तैयार करने का कार्य राज्यों पर छोड़ दिया।

इसी दौर में शासन की एक प्रक्रिया के रूप मे 'पचायती राज' शब्द प्रचलन मे आया। इसका तात्पर्य था ग्राम सभा से लोक सभा तक आवयविक रूप से जनता को जोड़ने की एक प्रणाली। लेखक के साथ एक मुलाकात मे एस.के. दे ने बताया था कि यह शब्द जवाहरलाल नेहरू की देन है। यह 'पंचायत' से भिन्न है जो किसी भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित स्थानीय निकाय की ओर संकेत करता है।

बलवतराय मेहता अध्ययन दल की सिफारिशों के बाद राजस्थान पहला राज्य था जहॉ पचायती राज का उद्घाटन हुआ। प्रधान मत्री जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान की राजधानी जयपुर से 260 किलोमीटर दूर स्थित नागौर मे 2 अक्तूबर 1959 को स्वतत्र भारत के प्रथम पचायती राज का उद्घाटन किया। नेहरू ने इस प्रणाली की

प्रशसा की तथा इसे 'नये भारत के सदर्भ में सर्वाधिक क्रातिकारी एवं ऐतिहासिक कदम'[14] की संज्ञा दी। नेहरू को यह अनुभव हो चुका था कि ऊपर के स्तर पर लोकतत्र तब तक सफल नही हो सकता जब तक नीचे के स्तर से उसका निर्माण न किया जाये। इसके आठ दिनो के बाद हैदराबाद (आध्र प्रदेश) से 60 किलोमीटर दूर शादनगर में पंचायती राज का उद्‌घाटन करते समय भी उन्होंने यही भावना व्यक्त की। नेहरू के केबिनेट में सामुदायिक विकास मंत्री तथ स्वतत्रता के बाद पंचायती राज के शिल्पकार एस.के. दे ने इस सपूर्ण विचार को दार्शनिक ऊँचाई प्रदान की तथा उसे ऐसे साधन के रूप में देखा जो एक व्यक्ति को पूरे ब्रह्माण्ड से जोड़ता है। राष्ट्रीय लोकतत्र के क्षेत्र मे उन्होने ग्राम सभा तथा लोक सभा के बीच आवयविक एवं अतरंग संबंध की परिकल्पना की।

1957 तक सभी राज्यो ने पचायती राज अधिनियम पारित कर दिये थे तथा 1960 के मध्य दशक तक सभी राज्यो में पंचायते अस्तित्व मे आ चुकी थीं। 5,71,000 गॉवो के 96 प्रतिशत तथा ग्राम आबादी के 92 प्रतिशत भाग को समाहित करते हुए 2,17,300 से अधिक ग्राम पचायतो का गठन हो चुका था। औसतन दो या तीन गॉवो की लगभग 2400 आबादी के लिए एक पचायत थी। ग्रामीण भारत मे उत्साह की लहर थी तथा लोगो को लगा कि अब उनके दिन-प्रतिदिन के जीवन को प्रभावित करनेवाले कार्यकलाप मे उनकी अपनी भी कुछ भूमिका है। वे भारत मे पचायती राज के आशावादी दिन थे। सामुदायिक विकास मंत्रालय ने 1964-65 की अपनी एक रिपोर्ट मे बताया कि पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से युवा एव बेहतर नेतृत्व आगे आ रहा है तथा उनके कामकाज से जनता में काफी सतोष है।

राजस्थान के पंचायती राज का मूल्यांकन करने के लिए 1962 में एसोसिएशन ऑफ वालटरी एजेसीज फॉर रूरल डेवलपमेंट (अवॉर्ड) द्वारा नियुक्त अध्ययन दल ने एसी ही टिप्पणी की : 'ऐसी रिपोर्ट मिली है कि जनता को यह महसूस हो रहा है कि अपना भविष्य बनाने के लिए उसे पर्याप्त अधिकार मिले हैं।...उसे इस बात का पूरा ज्ञान है कि जो विशेषाधिकार और लाभ पहले बीडीओ के नियंत्रण में थे, वे अब उसके नियंत्रण मे हैं। इस अर्थ मे लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का पूरा लाभ हासिल कर लिया गया है।'[15]

अध्ययन दल ने आगे बताया कि जन प्रतिनिधियों को अधिकार सौपे जाने के कारण प्राथमिक स्कूलो में अध्यापकों की उपस्थिति में सुधार हुआ है, ब्लॉक प्रशासन अधिक उत्तरदायी हो गया है, प्रधानों के सम्मुख जनता अपनी शिकायते रख रही है और उनके माध्यम से राहत पा रही है तथा, सबसे अधिक, अधीनस्थ कर्मचारियों एवं नव निर्वाचित नेताओ में व्याप्त भ्रष्टाचार मे कमी आयी है, क्योंकि ब्लॉक कर्मचारी अब पचायत समिति के अधीनस्थ कर दिये गये थे तथा नेताओं के पुनः निर्वाचित होने के लिए जनता के बीच प्रधानों की प्रतिष्ठा जरूरी थी। दूसरे शब्दो में, पचायती

राज सस्थाओ ने स्थानीय सरकार के सभा कार्य पूरे किये और लोकतत्र की नर्सरियों—बल्कि उसके प्राथमिक स्कूलो—के रूप में कार्य किया। पचायती राज संस्थाओ द्वारा उत्पन्न रुचि के कारण कई राज्यों ने उनकी कार्यप्रणाली के आकलन एवं उनमे सुधार लाने के उपायों की सिफारिश करने के लिए समितियाँ गठित कीं।

इस सबके बावजूद, अभिजित दत्त के विचार से पंचायती राज सस्थाएँ 'स्थानीय सरकार का जीवित कैरिकेचर बन कर रह गयी हैं।'[16] थॉमस मथाई ने *डेमोक्रेटिक वर्ल्ड* (22 जनवरी 1978) के सपादकीय मे कहा कि 'ग्राम पंचायतें असंतोष का बिन्दु बन कर रह गयी हैं। ग्राम सभा तो एक तरह का मजाक है।'[17] ग्राम सभा के ससाधन काफी कम थे। यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति होती तो इस स्थिति को सुधारा जा सकता था। सर्वाधिक चितनीय समस्या थी आर्थिक रूप से सपन्न एवं सामाजिक सुविधापूर्ण वर्गो का पचायती राज संस्थाओं पर हावी होना। निश्चित रूप से यह एक सामाजिक-राजनीतिक समस्या थी; समय पर चुनाव करवा कर काफी हद तक इसका समाधान किया जा सकता था। इससे दीर्घ काल से दमित रहे समुदायों को जो राजनीतिक प्रशिक्षण मिलता, उससे परिस्थितियाँ बदली जा सकती थी।

यदि नियमित रूप से चुनाव संपन्न हुए होते, तो मुद्दों पर आधारित समूह उत्पन्न हो सकते थे, हर स्तर पर समीकरण बदल सकते थे तथा पारंपरिक प्रतिद्वद्विताएँ समाप्त हो सकती थीं। इस प्रक्रिया मे सपाट तकनीकी एकजुटता आवयविक एकजुटता का मार्ग प्रशस्त करती है, जिससे राय देने की व्यक्तिगत स्वतत्रता तथा सामूहिक विचार-विमर्श का उद्‌भव होता है। लेकिन इस प्रक्रिया को राज्य सरकारों ने पचायत चुनावों को बार-बार स्थगित कर अथवा बिल्कुल न करवा कर वर्षो तक रोके रखा। जी वी.के. राव की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना आयोग द्वारा गठित समिति ने पचायतो के चुनाव नियमित रूप से न करवाने पर चिंता जतायी।[18] साक्ष्य उपलब्ध हैं कि स्थानीय निहित स्वार्थो तथा राज्य विधान मडलो एवं संसद मे उनके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो की यह सोची-समझी साजिश थी कि पंचायती राज को पहले अपंग बना दिया जाये और अन्ततोगत्वा उसका परित्याग कर दिया जाये, क्योंकि उसके उत्कर्ष से वे भयभीत थे।

इस गुप्त एजेंडा की जड़े 1960 में देखी जा सकती हैं, जब सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की उपेक्षा करते हुए गहन जिला कृषि कार्यक्रम (आइएडीपी) शुरू किया था। 1961 मे जयप्रकाश नारायण समिति ने एक स्वतंत्र कार्यक्रम बनाने मे सरकार के भीतर मौजूद दोहरे सोच और अंतर्विरोधपूर्ण स्थितियों को पहचाना था। समिति ने टिप्पणी की कि योजना बनाने और उसके कार्यान्वयन के लिए पंचायती राज को एक एजेंसी के रूप में स्वीकार कर लेने के बाद 'कोई वैध कारण नही रह जाता है कि मदवार आवंटन जारी रखे जाये—भले ही ये मार्गदर्शिका के ही रूप हो।'[19] स्पष्टत- सामुदायिक विकास मत्रालय आइएडीपी की शुरुआत से नाखुश था।

इसके बावजूद शीघ्र ही निर्वाचित जिला परिषदो के क्षेत्राधिकार से बाहर 'लघु किसान विकास अभिकरण' (एसएफडीए), सूखा-उन्मुख क्षेत्र कार्यक्रम (डीपीएसी) और गहन आदिवासी विकास कार्यक्रम (आईटीडीपी) जैसी योजनाएँ भी शुरू कर दी गयीं। योजनाओं के लिए आबंटन के साथ भी, जो जिला परिषदों का मामला था, छेड़छाड की गयी।

1966-67 मे सामुदायिक विकास मत्रालय का स्तर घटा कर उसे एक विभाग बना दिया गया तथा उसे खाद्यान्न एवं कृषि मंत्रालय के अधीन ले आया गया। ऐसा करने के साथ ही सरकार ने 12 राज्यों के 28 जिलों में समेकित जिला आयोजना की कुछेक योजनाएं प्रारंभ कीं तथा मूल्याकन करने के दो औजार भी समाप्त कर दिये। वे औजार थे—वार्षिक विकास सम्मेलन तथा कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन द्वारा वार्षिक मूल्याकन। 'ऐसा करने से इस मत को बल मिला कि न केवल सामुदायिक विकास मंत्रालय, बल्कि समाजिक विकास परियोजना का भी स्तर गिरा दिया गया।'[20] 1971 में 'सामुदायिक विकास' के स्थान पर 'ग्रामीण विकास' शब्द लाया गया। यह केवल शाब्दिक परिवर्तन नही था। एल.सी. जैन कहते हैं, 'इससे परिवर्तन के एजेंडा तथा विकास के अभिकरणों के रूप मे 'समुदाय' तथा 'पचायतों' दोनों का ही खात्मा हो गया है।'[21] अशोक मेहता समिति के शब्दों में, "सभी प्रकार की विकास गतिविधियॉ केवल ब्लॉक स्तर के सगठन के जरिये ही चलायी जानी चाहिए" का मूल विचार अपनी जमीन खो बैठा, यद्यपि पचायत समिति विकेंद्रीकरण की आधारभूत इकाई के रूप में, अधिकतर मामलों में, ब्लॉक का ही पर्याय थी।'[22] यहॉ इस बात पर बल दिया जा सकता है कि सभी विकास कार्यक्रम नौकरशाही पर केंद्रित हो कर रह गये और उनमें जनता की कोई प्रतिभागिता शायद ही बची रह गयी। पंचायती राज अंततः केंद्र मे ग्रामीण विकास मत्रालय का एक अग बन गया, जिसका कार्य देखने के लिए एक संयुक्त सचिव नियुक्त कर दिया गया। यही स्थिति अब तक जारी है। इस प्रकार राज्य तथा केंद्र स्तर के 'सभ्रात' राजनेताओं के एक बृहत गठबधन में पंचायती राज को वर्तमान दयनीय स्थिति में ला खडा करने मे नौकरशाही की भूमिका को अशोक मेहता समिति ने तीखे रूप मे उजागर किया।[23]

यह घटना स्वतंत्र भारत के चरित्र का बखान करनेवाला एकमात्र प्रतीक नही है। ब्रिटिश काल में भी नौकरशाही ने यही किया था। स्थानीय स्वाशासन का जो भी कमजोर ढॉचा भारत में विद्यमान था, अफसरों ने उसे ढाह दिया। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश काल मे ग्राम पचायतो के विखडीकरण के मुख्य कारणों का विश्लेषण करते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की ग्राम पचायत समिति की रिपोर्ट मे कहा गया था कि 'सरकारी अधिकारियो के हाथों मे कार्यकारी तथा न्यायिक अधिकारो के अत्यधिक केंद्रीकरण के कारण पूर्व काल से प्राप्त अधिकारो एव प्रभावों से ग्रामीण प्राधिकारियो को हाथ धोना पड़ा।'[24]

हमने ऊपर कहा है कि लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन को शुरू करने के लिए गंभीर प्रयास किये थे, किन्तु वे विफल रहे। क्यों? 1929 के भारतीय साविधिक आयोग ने टिप्पणी की थी कि लॉर्ड रिपन की मंशा कुछ भी रही हो, स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र मे उनके सुधार सरकारी नियत्रण से मुक्त नहीं थे। स्थानीय निवासियो की अभिलापा के अनुरूप प्रणाली शुरू करने की लिए कोई वास्तविक प्रयत्न नही किया गया।[25] 'संभ्रात' राजनेता नौकरशाहों के इशारो पर कार्य क्यो करते रहे? कारण जानना कठिन नही है। पेशेवर राजनेता नही चाहते कि स्थानीय नेतृत्व की नयी पौध उनकी शक्ति को कम करे। इसीलिए, यह निष्कर्ष निकालना तर्कयुक्त है कि नौकरशाही, व्यापारिक स्वार्थ, मध्य वर्ग, पुलिस तथा राजनेता लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण के खिलाफ एकजुट हो गये। एक अभिधारणा तैयार की गयी तथा यह प्रचारित किया गया कि सभी निर्वाचित 'निहित स्वार्थों' के मुकाबले केंद्रीकृत नौकरशाही गरीब ग्रामीणों को ज्यादा लाभ पहुँचा सकती है। इसका परिणाम क्या हुआ? रजनी कोठारी कहते है, 'शहरी अधिकारी वर्ग तथा धनी ग्रामीणों का एक ऐसा अभेद्य गठबधन बन गया, जिससे गरीब ग्रामीणो को दूर रखा गया।'[26]

स्थानीय शक्तियों और राज्य तथा केंद्र स्तर के राजनेताओं के साथ मिल कर नौकरशाही ने नयी प्रणाली की कमियों को बढ़ा-चढ़ा कर दर्शाते हुए उसे बदनाम करना शुरू कर दिया। इस गठबधन ने स्थानीय निकायो मे महज उच्च अथवा प्रभावशाली जातियों, भ्रष्टाचार तथा अक्षमता के दबदबे को देखना आरम्भ कर दिया। अगर नेहरू जीवित होते, तो कहते, 'ग्राम प्राधिकारियों को काम करने दो, लाखो गलतियाँ करने दो।' ग्राम पचायते हताशा का प्रतीक बन कर रह गयी।

नेहरू युग के पंचायती राज को हम पहली पीढ़ी का पचायती राज मान सकते है। इस अवधि के दौरान पचायती राज सस्थाओं की कल्पना ऐसे स्थानीय निकायो के रूप मे की गयी जिनका लक्ष्य विकास मे जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना था।

अशोक मेहता समिति

1977 में अशोक मेहता समिति की नियुक्ति पंचायती राज की संकल्पना एव व्यावहारिक रूपातरण मे एक नया मोड थी। अशोक मेहता समिति का गठन पंचायती राज संस्थाओ की कार्य प्रणाली की जाँच करने एवं ऐसे उपाय सुझाने के लिए किया गया था जो इन संस्थाओं को सुदृढ़ बनायें, ताकि आयोजना और विकास की विकेंद्रीकृत प्रणाली प्रभावी हो सके। समिति की रिपोर्ट (1978) एक बीजगर्भित दस्तावेज है, जिसमे पचायतों को हमारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया का आवयविक एव एकीकृत हिस्सा बनाये जाने की माँग की गयी थी। अशोक मेहता समिति की सिफारिशों के बाद अनेक राज्यो में जो पचायती राज लाया गया, उसे दूसरी पीढी की पचायते कहा जा सकता है।

1978 मे अशोक मेहता समिति की सिफारिशो के अनुरूप पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा पचायती राज संस्थाओ मे नयी जान फूँकने को दूसरी पीढ़ी की पचायती राज सस्थाओं की शुरुआत कहा जा सकता है। अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार करते हुए पश्चिम बगाल, कर्नाटक, आध्र प्रदेश तथा जम्मू एव कश्मीर में या तो तत्कालीन पचायत अधिनियमो मे संशोधन किया गया अथवा नये अधिनियम पारित किये गये। इन राज्यों ने अपनी परिस्थितियो के अनुसार सिफारिशो को अपनाया तथा एक-दूसरे के अनुभवो के आधार पर नये विधेयक पारित किये अथवा वर्तमान अधिनियमो मे संशोधन किया।

दूसरे चरण में सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया गया कि पचायतें स्थानीय स्तर के विकास संगठनो से बदल कर राजनीतिक संस्था का रूप धारण कर ले। ताकत नौकरशाही से हट कर राजनीतिक तत्वों के हाथ में आ गयी। यह एक स्वागत योग्य प्रवृत्ति थी। बलवंतराय मेहता अध्ययन दल ने पंचायती प्रणाली को विकास-केंद्रित रखा था, जब कि अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट का अनुसरण करनेवाले पश्चिम बगाल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं बाद मे जम्मू एवं कश्मीर राज्यो में पचायतो को एक प्रामाणिक राजनीतिक संस्था बनाने का प्रयास किया गया।

संवैधानिक समर्थन की आवश्यकता

यह सिद्ध हो चुका है कि सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए संवैधानिक समर्थन तथा सांविधिक उपाय जरूरी होते है, किन्तु लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह शर्त ही पर्याप्त नही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारा 55 वर्षो का अनुभव इस तथ्य का साक्षी है। लोकतात्रिक विकेद्रीकरण के बारे मे भी यही सच है। कोई यह तर्क दे सकता है कि अप्रैल 1993 तक राज्य सरकार से निचले स्तरो पर स्वशासन हेतु संवैधानिक समर्थन नहीं था, अत· किसी भी राज्य सरकार ने इस प्रक्रिया को गंभीरता से नहीं लिया। यहाँ यह कहा जा सकता है कि राज्य सरकार के निचले स्तरों पर लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण लाने के लिए संवैधानिक गारंटी के साथ-साथ राजनीतिक इच्छाशक्ति तथा जनता की राजनीतिक जागरूकता भी आवश्यक है। अतः त्रि-आयामी दृष्टिकोण—राजनीतिक संकल्प, जनता की जागरूकता तथा स्वस्थ्य परपराएँ बनाना, जिनकी सुरक्षा के लिए संवैधानिक तथा साविधिक उपाय मौजूद हो—से ही हमारे समाज मे दूरगामी परिवर्तन लाये जा सकते हैं। इनमें से एक भी तत्व कमजोर पडता है, तो अन्य सभी उपाय प्रभावहीन हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि निष्क्रिय पचायती राज सस्थाओं के कारण इस पूरी सकल्पना एव उसके व्यावहारिक स्वरूप को बदनामी मिली। धीरे-धीरे यह बात समझ मे आ रही थी कि संवैधानिक समर्थन के अभाव मे ही ये घटनाएँ हुई। उदाहरणार्थ तमिलनाडु में पद्रह वर्षो तक पंचायत चुनाव न करवाने पर (तमिलनाडु मे बीस बार चुनावो

की घोषणा की गयी तथा हर बार कोई न कोई बहाना बना कर उन्हें स्थगित कर दिया गया) टिप्पणी करते हुए मेलकम आदिशेपय्या ने यह प्रासंगिक प्रश्न उठाया था कि 'हम ऐसा क्यों नही कर सकते कि संविधान मे संशोधन कर समय पर स्थानीय चुनाव करवाना अनिवार्य बना दें?'[27] उनका कहना था कि तमिलनाडु में स्थानीय चुनावो को स्थगित करने के लिए दिये गये सभी बीस कारण लोक सभा एवं विधान सभा चुनावो को स्थगित करने के लिए भी दिये जा सकते है। उन्होंने कहा, 'यहाँ मै अपनी यह दलील पेश करता हूँ कि लोक सभा तथा विधान सभा के चुनावो की भाँति ही पंचायती राज चुनाव करवाने के लिए संवैधानिक संशोधन लाने के लिए हमे गभीरता से कार्य करना चाहिए।'[28]

यद्यपि राज्य सरकारें संवैधानिक निर्देश के अभाव मे पूर्णकालिक पंचायती राज गठित करने के लिए बाध्य नहीं थीं, फिर भी कुछ राज्य पचायतों को अधिकार सौपने के क्षेत्र मे यथासभव आगे बढे। उन्होंने महसूस किया कि केंद्र मे अधिकारो के केंद्रीकरण से गभीर अडचने पेश हो रही हैं। उदाहरणार्थ कर्नाटक की जनता सरकार में पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास मंत्री अब्दुल नजीर साब ने कहा कि संवैधानिक सशोधन द्वारा चौखंभा राज की गारंटी के बिना हमारे प्रयास पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकते।[29] दिल्ली में इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज द्वारा 1985 मे आयोजित एक विचार गोष्ठी मे नजीर साब ने बुद्धिजीवियों से इस प्रश्न पर विचार करने तथा संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता पर बहस छेड़ने का अनुरोध किया।

यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि पंचायती राज को ध्यान मे रखते हुए पहली बार अशोक मेहता समिति ने ही पचायती राज को संविधान मे शामिल करने की सिफारिश की थी। समिति की यह सिफारिश उसके इस दृष्टिकोण के अनुरूप ही थी कि पचायतो को विकास का औजार न हो कर राजनीतिक सस्थाएँ होना चाहिए। इस समिति ने राजनीतिक दलो को पचायत चुनावों मे अपने चुनाव चिह्नों के साथ भाग लेने का भी पक्ष लिया था।

चूँकि दूसरी पीढ़ी के पंचायती राज ने स्थानीय निकायों को अधिक अधिकार प्रदान किये तथा उनके व्यक्तित्व के केद्र में विकास कार्य नहीं, बल्कि राजनीतिक सत्ता का सचालन था, उनकी कार्यप्रणाली एवं उनके द्वारा होनेवाले कार्यान्वयन के प्रति व्यापक उत्साह पैदा हुआ। पश्चिम बंगाल के मॉडल को सफलता का प्रतिमान माना गया। 1985 में कर्नाटक में जनता पार्टी की विजय का एक मुख्य कारण 'जनता को अधिकार' देने का आश्वासन था। अब्दुल नजीर साब के अनुसार जनता को जब पता चला कि निचले स्तरों पर सत्ता में भागीदारी हो सकती है, तो चारों ओर जागरण की लहर फैल गयी। पंचायती राज के कार्यान्वयन में पश्चिम बंगाल एवं कर्नाटक के सामान्य लोगों के उल्लेखनीय उत्साह के कारण पंचायतों को संवैधानिक प्रावधानों मे शामिल करने के प्रयासों को काफी बल मिला।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि 1980 के मध्य में जिला सरकार का विचार सामने आया। इस अवधि के दौरान इस विषय पर निर्मल मुखर्जी का लेखन ही इसका मुख्य कारण था।[30] वास्तव में निर्मल मुखर्जी ने ही पहली बार 'जिला सरकार' की अवधारणा प्रस्तुत की थी। पश्चिम बंगाल तथा कर्नाटक में जिला परिषदो की सापेक्षित सफलता से जिला सरकार की अवधारणा को प्रोत्साहन मिला।

73वाँ संविधान संशोधन

1988 के अन्त मे पी के. थुगन की अध्यक्षता में ग्रामीण विकास मंत्रालय की सलाहकार समिति ने पंचायती राज प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक सिफारिशे की। सलाहकार समिति की एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि पंचायती राज निकायो को संवैधानिक मान्यता प्रदान की जाये। इस पृष्ठभूमि के कारण 15 मई 1989 को संविधान (64वाँ सशोधन) विधेयक का प्रारूप तैयार कर ससद मे पेश किया गया। यह विधेयक कमोबेश अशोक मेहता रिपोर्ट के मॉडल पर (जिसका मसौदा एल. एम. सिघवी ने बनाया था) तैयार किया गया था। यद्यपि 1989 का विधेयक स्वागत योग्य कदम था, किंतु इसे दो मूल मुद्दो पर तथा इसके राजनीतिक अभिसकेतो के कारण गभीर विरोध का सामना करना पडा। ये दो मूल मुद्दे थे . (क) विधेयक मे राज्यो की अनदेखी की गयी थी तथा केंद्र द्वारा पचायती राज सस्थाओं से सीधे संबंध रखने की व्यवस्था के कारण यह राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण था, और (ख) स्थानीय परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक राज्य को कानून बनाने की अनुमति देने के स्थान पर इस विधेयक मे समूचे देश पर एक समान पद्धति थोपने की बात थी। राजनीतिक दलों, बुद्धिजीवियों एवं सरोकार-संपन्न नागरिको ने इस विधेयक का विरोध किया। इस व्यापक विरोध को देखते हुए विपक्षी दलों के राष्ट्रीय मोर्चा ने एस.आर. बोम्मई की अध्यक्षता में एक वैकल्पिक विधेयक तैयार करने के लिए एक समिति गठित की। इस समिति की रिपोर्ट में, जो 10 जुलाई 1989 को जारी की गयी, जरूरी मुद्दों को वह फोकस दिया गया[31] जिसकी जरूरत काफी समय से महसूस की जा रही थी । रिपोर्ट ने एक गहन बहस को जन्म दिया। रिपोर्ट मे जो कुछ कहा गया, उसकी छाप पंचायतों से संबंधित उन सभी विधेयको पर दिखाई पड़ती है जो बाद मे ससद मे दाखिल किये गये।

यद्यपि सविधान (चौसठवाँ संशोधन) विधेयक को लोक सभा मे दो-तिहाई बहुमत मिला, किंतु राज्य सभा मे दो मतो की कमी से यह पराजित हो गया। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने अपने संक्षिप्त शासन काल मे 7 सितबर 1990 को 74वाँ संशोधन विधेयक (पंचायतो तथा नगरपालिकाओ पर संयुक्त विधेयक) पेश किया, किंतु इसे विचार-विमर्श के लिए नही लिया जा सका।

इस समय तक सभी राजनीतिक दल अपने वक्तव्यो तथा घोषणाओं में पचायतों

को सुदृढ बनाने के लिए संवैधानिक संशोधन का समर्थन कर चुके थे तथा देश भर मे पंचायती राज के पक्ष में वातावरण तैयार हो रहा था। सितंबर 1991 मे नरसिंह राव के नेतृत्ववाली कांग्रेस सरकार ने 72वॉ (पंचायत) तथा 73वाँ (नगरपालिका) संविधान संशोधन पेश किया। संसद की संयुक्त चयन समिति को ये दोनों विधेयक भेजे गये। लोक सभा ने दोनों विधेयक 22 दिसंबर 1992 को तथा राज्य सभा ने दूसरे दिन पारित कर दिये। संसद द्वारा इन दोनो विधेयको को पारित करने के क्रम मे इनकी क्रम संख्या क्रमश- 73वी तथा 74वी हो गयी। आधे राज्यों की विधान सभाओ द्वारा मंजूर करने के बाद राष्ट्रपति ने 20 अप्रैल 1993 को दोनो विधेयको को अपनी सहमति प्रदान की। संविधान संशोधन (73वॉ संशोधन) अधिनियम, 1992 24 अप्रैल 1993 को लागू हुआ तथा संविधान संशोधन (74वॉ संशोधन) अधिनियम, 1992 1 जून 1993 को। संविधान मे इन संशोधनों से न केवल स्थानीय शासन के क्षेत्र में, बल्कि भारत के संघीय स्वरूप में भी मौलिक परिवर्तन आये।

इस प्रकार 'स्थानीय स्वशासन' के लॉर्ड रिपन के विचार से 73वे संविधान संशोधन की 'स्वशासन की संस्थाएँ' धारणा तक की यात्रा पूरी होने में एक शताब्दी का समय लगा। देश के संघीय राज्यतंत्र के इस क्रम विकास को विशेष रूप से रेखांकित करने की जरूरत है।

पंचायती राज को स्वशासन की संस्थाओं के रूप मे कार्य करने मे पूर्वाश्यकताएँ इस प्रकार है–

(क) स्पष्ट रूप से चिह्नित क्षेत्राधिकार,

(ख) उत्तरदायित्वों के अनुपात मे पर्याप्त अधिकार,

(ग) अपनी व्यवस्था करने के लिए आवश्यक मानव तथा वित्तीय संसाधन, और

(घ) संघीय ढाँचे के दायरे मे कार्यकारी प्राधिकार

चूँकि संवैधानिक संशोधनों मे इन शर्तो को पूरा करने की संभावना है, अत नयी पंचायतो को सरकार के 'तीसरे स्तर' के रूप मे देखा जा सकता है। यहाँ भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति में आये दो मूलभूत परिवर्तनों का उल्लेख किया जाना जरूरी है।

एक, भारतीय राज्यतंत्र का लोकतांत्रिक आधार विस्तृत हुआ है। इन संशोधनों से पहले, चुने हुए प्रतिनिधियों के जरिये हमारा लोकतांत्रिक ढॉचा संसद के दो सदनो, राज्यों की विधान सभाओं तथा दो केंद्र शासित प्रदेशों (दिल्ली तथा पांडिचेरी) की विधान सभाओ तक ही सीमित था तथा उनमें केवल 4963 चुने हुए सदस्य थे। अब ग्रामीण भारत में 500 से अधिक जिला पंचायते, लगभग 6000 खंड/तहसील/मंडल पंचायतें तथा 2,50,000 ग्राम पंचायतें हैं जहाँ भारत की 73 प्रतिशत जनसंख्या बसती है।

शहरी भारत में, जहाँ 27 प्रतिशत जनसख्या रहती है, 96 नगर निगम, 1700 नगरपालिकाएँ तथा 1900 नगर पंचायते है। प्रत्येक पॉच वर्ष मे जनतान्त्रिक प्रक्रिया के माध्यम से जनता द्वारा लगभग तीस लाख प्रतिनिधि चुने जाते है, जिनमे महिलाओ की संख्या दस लाख है। महिलाएँ लगभग 175 जिला पचायतों, 2000 से अधिक खड/तहसील/मडल पचायतों तथा लगभग 85,000 ग्राम पंचायतो की प्रमुख है। इसी प्रकार, 30 से अधिक नगर निगमों तथा लगभग 600 नगरपालिकाओ की अध्यक्ष महिलाएँ हैं। मुख्य धारा से बहिष्कृत समूहों तथा समुदायो की बहुत बडी संख्या अब इन निर्णयकर्ता निकायों मे शामिल है। भारतीय जनसंख्या का 14.3 प्रतिशत अनुसूचित जातियॉ तथा 8 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियॉ है। सो ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय निकायो के कुल 6,60,000 निर्वाचित सदस्यों मे 22.5 प्रतिशत अनुसूचित जातियो तथा जनजातियो के प्रतिनिधि हैं (देखें तालिका : **विस्तृत होती लोकतांत्रिक प्रणाली,** पृष्ठ 29)।

दो, इन संशोधनों से भारत की संघीय व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ रहे है। जिला तथा उससे नीचे के स्तर पर निर्वाचित स्थानीय निकायों के साथ भारत बहुस्तरीय सघ राज्य बनने की ओर अग्रसर हो रहा है।[32] बेशक ग्यारहवी (पचायत) तथा बारहवी (नगरपालिकाएँ) अनुसूची में उल्लिखित विषयो को अनुसूची सात के अधीन शामिल किया जायेगा, तभी स्थानीय निकायो को केद्र तथा राज्य स्तर के बराबर का दर्जा प्राप्त होगा। यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि स्थानीय निकायो को कोई विधायी अधिकार प्राप्त नहीं हैं तथा केद्र तथा राज्य, यही दोनो मिल कर कानूनी रूप से भारतीय सघ का गठन करते है, परंतु स्थानीय निकायो को सवैधानिक मान्यता मिलने के बाद भारतीय सघीय ढॉचे मे हुए गुणात्मक परिवर्तन के परिणाम दूरगामी होगे।

विस्तृत लोकतान्त्रिक आधार तथा साथ ही नयी पचायतो एवं नगरपालिकाओ द्वारा लाये गये नये ढॉचागत परिवर्तनो के कारण हमारी संघीय प्रणाली में क्रांतिकारी संभावनाएँ पैदा हो गयी हैं। चूँकि केद्र में साझा सरकारें रहेंगी ही, अतः केंद्र को राज्यो पर निर्भर रहना होगा, जिन पर राज्य स्तरीय अथवा क्षेत्रीय पार्टियों का नियत्रण होता है। यदि राज्य सरकारें पचायती राज संस्थाओ की उपेक्षा करती हैं तो उनके फिर से न चुने जाने की पूरी सभावना है। अर्थात राज्य सरकार अथवा राज्य की सत्ताधारी पार्टी की लोकप्रियता इस पर निर्भर है कि वह स्थानीय निकायों को अधिकार सौंपने तथा संविधान के शब्दों और भावना के अनुसार उन्हे शक्तिशाली बनाने के मामले मे कितनी गंभीर और ईमानदार है।

पंचायतो की उपेक्षा करनेवाले राज्यों के राजनीतिक नेतृत्व को इसकी बडी कीमत चुकानी पड़ी है। राजस्थान में भारतीय जनता पार्टी (1993-1998) तथा उत्तर प्रदेश में (1998-2000) की सरकारों ने पंचायतों को दरकिनार कर दिया था। राजस्थान

सरकार ने तो पॉचवीं अनुसूची क्षेत्रों तक 73वें संविधान संशोधन को विस्तृत करने के लिए अनुपालन विधेयक पारित करने पर भी ध्यान नहीं दिया। कर्नाटक की जनता सरकार (1995-1999) ने पंचायतों को सुदृढ बनाने की दिशा मे सकारात्मक कार्य किया था, लेकिन इसके बाद वह उन्हें कमजोर बनाने में लग गयी, यहॉ तक कि उसने पंचायत चुनाव भी स्थगित कर दिये गये। इसका नतीजा यह हुआ कि राजस्थान मे भारतीय जनता दल की तथा कर्नाटक मे जनता दल की सरकार को क्रमश 1998 तथा 1999 में विधान सभा चुनावों में हार का मुँह देखना पडा। उत्तर प्रदेश के पंचायती चुनाव परिणामों (जून 2000) से भारतीय जनता पार्टी को गहरा झटका लगा, यहॉ तक कि राज्य में पार्टी की सरकार के भविष्य पर सवालिया निशान लग गया। दूसरी ओर, मध्य प्रदेश मे काग्रेस सत्ता मे कायम रह सकी, क्योंकि उसने पंचायती राज को गभीरता से लिया था। यही बात पश्चिम बंगाल मे वाम मोर्चा की अनवरत चुनावी सफलता पर लागू होती है। सीधी-सी सच्चाई यह है कि कोई राज्य सरकार तथा उसका क्षेत्रीय राजनीतिक नेतृत्व पचायतों की उपेक्षा अपनी जोखिम पर ही कर सकता है।[33]

महिलाओं का नेतृत्व

जिला, ब्लॉक तथा ग्राम स्तर की लोकतान्त्रिक सस्थाओं मे बडी सख्या में महिलाओ की सहभागिता 73वें संविधान सशोधन का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम है। इसके फलस्वरूप आज लाखो महलाएँ नेतृत्व की भूमिका में हैं।

देश के विभिन्न भागो से महिलाओ के अनुभवों से पता चलता है कि उन्हे हाशिये पर रखने की कठोर संस्कृति का सामना करना पडता है। स्थानीय निकायो मे महिला प्रतिनिधियो को वह सम्मान नही दिया गया है, जिसकी वे हकदार हे। विभिन्न क्षेत्रों के अनुभव बताते हैं कि पंचायतो की बैठको में निर्वाचित महिला सदस्यो को उनके पुरुष साथियो के मुकाबले भिन्न व्यवहार मिलता है, नौकरशाही उन्हें वाछित सम्मान नहीं देती, परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा छाया-सदस्य के रूप में उनका इस्तेमाल किया जाता है। यानी उनके नाम पर पुरुष ही राज करते है। साथ ही, कई मामलो मे देखने में आया है कि यदि वे बैठको मे भाग लेने अकेली जाती है अथवा असहमति प्रकट करती हैं, तो उनके साथ हिंसा भी होती है। पचायतों की कार्य स्थितियॉ किसी भी दृष्टि से अनुकूल नहीं हैं। इन मुश्किलों के अलावा, राजनीति का आम परिवेश भ्रष्टाचार, हिंसा तथा ओछी मानसिकता से सराबोर है। चुनाव लडने के लिए काफी धन खर्च करना होता है। ये सभी कारक महिलाओ मे योग्य उम्मीदवारों के चयन तथा साथ ही चुने जाने के बाद उनकी कुशलता को प्रभावित करते हैं।

महिला प्रतिनिधियों पर अत्याचार हुए हैं तथा अनेक राज्यो में अब भी जारी है।[34] ऐसे अनेक मामले हैं, जहॉ महिला सरपंचो के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाये गये हैं, ताकि पुरुष उपसरपंच महिला पदाधिकारियो को पंचायती राज सस्थाओ से

बाहर कर सकें और अगले चुनावों तक स्वयं सत्ता संभाल सकें। पंचायतों के पुरुष सदस्यों में काम कर रही हीनता ग्रंथि को कोई भी अनुभव कर सकता है। इसके विपरीत निर्वाचित महिलाएँ अपने पुरुष सहयोगियों की तुलना में ज्यादा जवाबदेह, सहानुभूतिशील और सरोकारमयी साबित हुई है। उनमें पुरुष सदस्यों की बनिस्बत ज्यादा निष्ठा तथा पेय जल, स्वास्थ्य सुविधाओं और बच्चों की शिक्षा जैसे मुद्दों के प्रति अधिक संवेदनशीलता दिखाई पड़ती है। अपनी तमाम समस्याओं के बावजूद उनमें से बहुत-सी सदस्य अपने मिशन में सफल हुई हैं। इस वजह से पुरुष सहयोगी आम तौर से पंचायतों में महिलाओं की उपस्थिति को सहन नहीं कर पाते। बहरहाल, 1994 से महिला पंचायत सदस्यों की सफलता कथाओं की फेहरिस्त लंबी है। उनकी निष्ठा और नेतृत्व क्षमताओं को राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली है।[35] यह आशा की एक किरण है।

जमीनी आँकड़ों और चुनावी रुझानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दस से पंद्रह वर्षों के बाद महिलाएँ पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों पर पचास प्रतिशत से अधिक सीटों पर होंगी। पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण की संवैधानिक व्यवस्था का एक सकारात्मक परिणाम यह है कि संसद और राज्यों की विधायिकाओं में महिलाओं को आरक्षण देने पर राष्ट्रीय स्तर पर गरमागरम बहस चल रही है और कुछ राजनीतिक दलों ने आरक्षण के इस विस्तार के प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी जाहिर की है।

अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार

चूँकि संविधान के अनुच्छेद 244 के उपवाक्य (1) के अनुसार 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान आठ राज्यों—आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, बिहार— में स्थित अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं होते थे, संसद ने 1996 में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम पारित कर 24 दिसंबर 1996 को 73वें संशोधन अधिनियम का विस्तार इन क्षेत्रों तक कर दिया। यद्यपि उपर्युक्त आठ राज्यों को एक वर्ष का समय दिया गया था कि वे अपने-अपने पंचायत अधिनियमों में इस तरह के संशोधन करें कि वे विस्तार अधिनियम के प्रावधानों के अनुकूल हो जायें, बिहार और राजस्थान ने इस अवधि में अपने अधिनियमों का संशोधन नहीं किया। राजस्थान ने 26 जून 1999 को राजस्थान पंचायती राज (अनुसूचित क्षेत्रों में उनके अनुप्रयोग से संबंधित प्रावधानों में संशोधन) अध्यादेश, 1999 जारी किया, जो अब अधिनियम की शक्ल ले चुका है। बिहार ने अभी तक अपने पंचायत अधिनियम में संशोधन नहीं किया है।

विस्तार अधिनियम आदिवासियों के स्थानीय निकायों को जितने विस्तृत अधिकार देता है, उसके कारण वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेकिन अशांत

करनेवाली बात यह है कि राज्य सरकारे, विशेषकर राजनीतिक नेता, आदिवासी क्षेत्रों के प्रति निर्मम हैं और आदिवासियो को इतने ज्यादा अधिकार देना नही चाहती।[36] यही कारण है कि इन क्षेत्रों मे कोई उल्लेखनीय काम नही हुआ है तथा आदिवासी जहाँ थे, वहीं हैं। जब तक सरकार और जन सगठन इन दूरवर्ती प्रभावोंवाले प्रावधानो को यथार्थ में बदलने के लिए ठोस प्रयत्न नही करते, यह अधिनियम एक रद्दी कागज बना रहेगा।

1993 के बाद विस्तृत होता लोकतांत्रिक आधार

1993 तक सरकारी विभागो और उनके अधिकारी, विभागीय निदेशको से ग्राम स्तर के कर्मचारियो तक, कार्यक्रमो की निगरानी करते थे। यह ऊपर से नीचे तक आनेवाला ढाँचा था।

73वें तथा 74वें सशोधनों के बाद लोकतांत्रिक आधार में काफी विस्तार हुआ, जिससे योजना तथा विकास कार्यक्रमो के कार्यान्वियन को क्षैतिज रूप दिया जा सका।

ससद के दो सदनो में 790 सदस्य है (लोक सभा 545, राज्य सभा 245)

केंद्र तथा राज्य स्तर पर चुने गये सदस्यों की कुल सख्या 4,963

25 राज्य विधान सभाओं तथा दिल्ली तथा पाडिचेरी की विधान सभाओं मे 4,173 सदस्य है (राज्य 4,072, केंद्र शासित क्षेत्र 101)

राज्य स्तर से नीचे : अब

* 532 जिला पचायते इनमे 175 से अधिक जिलो मे महिला अध्यक्ष है
* 5,912 खड/तहसील मडल पयाचते : इनमे 1970 महिला अध्यक्ष हैं
* 2,31,630 ग्राम पचायतें इनमे 77,210 से अधिक ग्राम पंचायतो मे महिला अध्यक्ष हैं

तीसरे स्तर पर 30,00,000 सदस्य चुने जाते हैं। इनमें 10,0000 महिलाएँ हैं और 6,60,000 अ. जाति/अ जनजाति के हैं

* 95 नगर निगम इनमे 22 मे महिला मेयर है
* 1,436 नगरपालिकाएँ इनमें 749 से अधिक में महिला अध्यक्ष है
* 2,055 नगर पंचायते इनमें 685 से अधिक मे महिला अध्यक्ष है

टिप्पणी तीसरी तालिका (राज्य स्तर से नीचे अब) में दी गयी सख्याएँ बदलती हुई स्थितियों के कारण वास्तविक सख्याओं के मुकाबले कुछ कम-ज्यादा हो सकती हैं।

राज्य वित्त आयोग

27 राज्यो और सातों केंद्र-शासित प्रदेशों ने अभी तक अपने राज्य वित्त आयोगो का गठन कर लिया है और इनमे से 27 ने अपनी रिपोर्ट भी सरकार को दे दी है। चूँकि 73वें और 74वें संशोधनों के मुताबिक राज्य वित्त आयोगों का गठन प्रत्येक पॉच साल पर होता है, दूसरे राज्य वित्त आयोगो के गठन का समय भी आ गया है और कुछ राज्यों मे तो इन्होंने काम करना शुरू भी कर दिया है।

बहरहाल, राज्य वित्त आयोगों की स्थिति विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है। संविधान की व्यवस्था यह थी कि 24 अप्रैल 1993 से एक वर्ष के भीतर प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन हो जाना चाहिए। इसके बावजूद उडीसा जैसे प्रमुख राज्य ने आयोग का गठन नवंबर 1996 में किया—एक साल की अवधि बीतने के ढाई वर्ष बाद और आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसंबर 1998 मे सरकार को दी। गुजरात मे रिपोर्ट जुलाई 1998 में दाखिल की गयी, यद्यपि राज्य वित्त आयोग का गठन सितंबर 1994 मे हो चुका था। बिहार में राज्य वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को दे दी है, परंतु यह रिपोर्ट विधान सभा मे पेश नहीं की गयी है।

अनुच्छेद 243 और 243वाई के उपवाक्यो 2 और 4 के प्रावधानो के अनुसार, कार्रवाई रिपोर्ट (एक्शन टेकेन रिपोर्ट) अधिकांश राज्यो में विधान सभा के पटल पर रखी जा चुकी है। लेकिन गुजरात, हरियाणा और बिहार तीन ऐसे राज्य हैं, जहाँ इस अपेक्षा की पूर्ति नहीं हुई है। जिन राज्यों में कार्रवाई रिपोर्ट पेश हो चुकी है, वहाँ भी राज्य वित्त आयोगो की सिफारिशों को पूरी तरह लागू नही किया गया है।

राज्य वित्त आयोगो की सिफारिशों के अनुसार वित्तीय साधनो के प्रभावशाली प्रदाय के बारे में किसी निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचना कठिन है। तथापि उपलब्ध साक्ष्यों का संकेत यही है कि पंचायतों की वित्तीय स्थिति मे कोई खास सुधार नहीं आया है। तथ्य यह है कि किसी भी राज्य सरकार ने राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार पंचायतों को वित्तीय साधन नही दिये। कुछ तदर्थ व्यवस्थाएँ कर दी गयीं, लेकिन जो राशियाँ दी गयीं, वे आयोगो द्वारा सुझायी गयी राशियों की तुलना में नहीं के बराबर है। न ही राज्यों ने इन राशियो का आवटन उस तरीके से किया जैसा राज्य वित्त आयोगों ने सुझाया था।

जिला योजना समितियाँ

संविधान के अनुच्छेद 243जेडडी (जो 74वें संविधान संशोधन द्वारा डाला गया) में प्रावधान है कि राज्य सरकारें प्रत्येक जिले मे जिला योजना समिति का गठन करेंगी। यह लोगो और समुदायों की भागीदारी पर आधारित विकेंद्रित योजना निर्माण की दिशा में मील का पत्थर है। जिला योजना समितियों से अपेक्षा की जाती है कि वे

जिले की सभी पचायतो और नगरपालिकाओ द्वारा तैयार की गयी योजनाओ को मिला कर पूरे जिले के लिए विकास योजना का प्रारूप तैयार करेंगी। सभी राज्यो और केंद्र शासित प्रदेशो ने या तो इस प्रावधान को अपने पंचायती राज और नगरपालिका अधिनियमों में शामिल किया है या इसके लिए अलग से कानून बनाया है।

संविधान के अनुच्छेद 243जेडडी (2) में जिला योजना समितियो के गठन का काम और यह तय करने का काम कि यह गठन किस प्रकार होगा और समिति का अध्यक्ष पद किसे सौंपा जायेगा, राज्यों की विधायिकाओं पर छोड़ दिया है। कुछ राज्य सरकारों ने जिलाधीशों को यह अध्यक्ष पद सौंप दिया, तो कुछ राज्यों मे मत्रियों को, जिनका चयन मुख्य मंत्री करते है, इन समितियों का चार्ज दे दिया गया। यह न केवल सविधान सशोधन की भावना का उल्लंघन था, बल्कि लोकतात्रिक विकेद्रीकरण के सिद्धांतो का भी।[37] बहरहाल, ज्यादातर राज्यों मे जिला योजना समितियो का अध्यक्ष पद जिला पचायत के निर्वाचित अध्यक्ष को दिया गया है।

यद्यपि जिला योजना समितियों का गठन राज्य सरकारो का संवैधानिक दायित्व है, कुछ राज्य सरकारो ने सिर्फ औपचारिक रूप से उनका गठन कर दिया है और उन्हे काम करने का अवसर प्रदान नही किया है। आध्र प्रदेश ने तो उनका गठन तक नहीं किया है। मध्य प्रदेश ने इस प्रावधान को बदलते हुए जिला सरकारो का गठन कर दिया है, जिनमें पंचायतों तथा नगरपालिकाओं की कोई उल्लेख योग्य भूमिका नहीं है। केरल और पश्चिम बगाल जैसे कुछ राज्यो ने विकेंद्रीकृत योजना निर्माण को निष्ठा के साथ अपनाया है, लेकिन अन्य राज्यों द्वारा जिला योजना समितियो के गठन तथा उन्हे कार्यशील बनाने में जो शिथिलता दिखायी जा रही है, उससे यह उम्मीद नही बॅधती कि जिला योजना समितियॉ विकेंद्रित योजना प्रक्रिया का सक्षम औजार बन सकेंगी। यदि यह आशंका सही निकलती है, तो विकास की प्रक्रिया को नीचे से ऊपर ले जाने का उपक्रम, जो वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक पंचायती राज व्यवस्था का सारतत्व है, तत्वत· अर्थहीन हो कर रह जायेगा।

ग्राम सभा का अभ्युदय

1995 से ग्राम सभा पंचायती राज पर केद्रित सभी चर्चाओ का मुख्य मुद्दा हो गयी है। जब केंद्रीय वित्त मंत्री ने 1999 के बजट भाषण में वर्ष 1999-2000 को ग्राम सभा का वर्ष घोषित किया, जो इससे भी ग्राम सभा के प्रति आकर्षण बढा।

ग्राम सभा वह एकमात्र माध्यम है, जो प्रत्यक्ष लोकतंत्र सुनिश्चित कर सकता है। यह गॉव के सभी नागरिको को पंचायत की कार्यपालिका के प्रस्तावों पर विचार करने, उनकी आलोचना करने और उन्हें मंजूर या नामंजूर करने तथा पंचायत के विगत कार्य निष्पादन का मूल्याकन करने का एक अनुपम अवसर देता है। इस तरह

ग्राम सभा तृणमूल स्तर पर लोकतंत्र के पहरेदार की भूमिका निभाती है। यद्यपि ग्राम सभा अब एक विधिक इकाई है, इसे वह हैसियत और भूमिका नही मिल पायी है जो इसका प्राप्य है। ग्राम सभा आज भी पंचायती राज व्यवस्था की सबसे कमजोर कड़ी है। अधिकाश राज्य सरकारो ने इसे इसका उचित स्थान नहीं दिया है।

यद्यपि ग्राम सभाओं को गरीबी उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों के तहत लाभार्थियों का चयन करने, वार्षिक योजना का प्रस्ताव करने, बजट और अकेंक्षण रिपोर्ट पर विचार करने और पंचायत की प्रगति की पुनर्वीक्षण करने का अधिकार है, ज्यादातर राज्यो में उनके निर्णय पचायतो के लिए बाध्यकारी नहीं है, क्योंकि ग्राम सभाओ को सिर्फ परामर्शदाता की भूमिका दी गयी है। नतीजतन निर्वाचित प्रतिनिधि ग्राम सभाओ की परवाह नही करते। सिर्फ कुछ राज्यो—हरियाणा, पंजाब, उडीसा और तमिलनाडु—ने ग्राम सभा को पचायत का बजट स्वीकृत करने का अधिकार दिया है।

विभिन्न राज्यों से प्राप्त रिपोर्टों का संकेत यह है कि ग्राम सभा की बैठके बुलाने की दिशा में कुछ राज्यो को सफलता मिली है, कुछ को नही मिली है। इस मामले में पश्चिम बगाल का रिकॉर्ड बेहतर है। 1995 मे पश्चिम बंगाल की ग्राम ससदों ने बैठकों की विधि-विहित सख्या का 63 प्रतिशत तक पालन किया। 1998 मे यह ऑकडा 88 प्रतिशत तक पहुँच गया।[38] मई 2000 मे 97 प्रतिशत ग्राम संसदो की बैठक हुई।

मध्य प्रदेश और राजस्थान से प्राप्त रिपोर्टों से पता चला है कि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित ग्राम सभा की बैठक की तारीख बहुत-से लोगों को पता नहीं रहती। चूँकि ग्राम सभा की बैठक पंचायत के मुख्यालय में होती है, दूरवर्ती गॉवो के लोगो के लिए इन बैठको में भाग लेना मुश्किल हो जाता है। उस वक्त उपस्थिति जरूर बढ़ जाती है, जब लाभार्थियां का चयन होना होता है। सामान्यत पचायत चुनावो मे हारे हुए उम्मीदवार सरपच का विरोध करने के लिए लोगो को एकजुट करते है और ग्राम सभा में उसके द्वारा प्रस्तुत विकास योजनाओं को अवरुद्ध करने में सफल हो जाते है।

दरअसल, हमारे समाज मे ग्राम सभा की संस्कृति का ही अभाव है। जाति और वर्ग के विभाजन भारत के गॉवों को एक ऐसे संगठित समुदाय के रूप में काम करने से रोकते है जो सभी के साझा हित में काम करें। ग्राम सभा को जमीनी स्तर के लोकतंत्र का प्रभावशाली औजार और हमारी पचायती राज और समाजिक व्यवस्था का अविच्छिन्न हिस्सा बनाने के लिए भूमि सुधार जैसे प्रगतिशील कदम उठाने की सख्त जरूरत है।

सामाजिक अंकेक्षण का महत्व

सामाजिक अकेक्षण की अवधारणा भारत मे पचायती व्यवस्था द्वारा काम शुरू कर देने के बाद आयी। सामाजिक अकेक्षण का मतलब है समाज के बहुसंख्य लोगो की दृष्टि से, जिनके नाम पर और जिनके हित मे यह पूरा सास्थानिक ढाँचा बनाया जाता है, विकसित किया जाता है और वैधता प्राप्त करता है, किसी भी सामाजिक उपयोगिता की वस्तु या सेवा की कार्यविधि तथा उसकी सामाजिक प्रासंगिकता की जॉच और विश्लेषण। मौजूदा चर्चा के संदर्भ में इसका मतलब है लोगों द्वारा पंचायती राज सस्थाओ के कार्य निष्पादन का स्वतंत्र आकलन।

कई राज्यों में पंचायतों के सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था की गयी है। पचायतो को यह अधिकार दिया गया है कि वे विभिन्न स्तरो पर असरदार सामाजिक अंकेक्षण के लिए समितियो का गठन कर सकती है। ब्लॉक समिति तथा जिला पंचायत के स्तर पर सामाजिक अकेक्षण समितियो का गठन, जिनकी सदस्यता सम्मानीय नागरिको तथा विभिन्न व्यवसायो मे लगे व्यक्तियो को दी जाये, जरूरी है, ताकि वे जब भी जरूरी और उचित समझे, विकास कार्यक्रमों का अंकेक्षण कर सके। विभिन्न संगठनो के अवकाशप्राप्त व्यक्ति, अध्यापक और अन्य सार्वजनिक सरोकारवाले व्यक्ति, जिनकी निष्ठा सदेह से परे हो, सामाजिक अकेक्षण का गठन खुद भी कर सकते हैं। इसी तरह ग्राम पचायत और नगरपालिका स्तर पर महिलाओ की प्रहरी समितियॉ, जिनमें प्रत्येक ग्राम सभा या वार्ड समिति की प्रतिनिधि को स्थान दिया जाये—इनमे से एक अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की जरूर हो—बनायी जाये, तो स्थिति मे काफी सुधार आ सकता है। इन महिला समितियों को वही अधिकार होने चाहिए जो सामाजिक अंकेक्षण समितियों को है। उन्हे यह अधिकार होना चाहिए कि वे लागतो, लागत के आकलनो, विभिन्न कार्यो में लगायी गयी वस्तुओं की गुणवत्ता और मात्रा या संख्या, चयन में मानकों का पालन आदि पहलुओं की जाँच कर सके।[39]

हमारे नये लोकतांत्रिक ढॉचे में सामाजिक अंकेक्षण की शायद सर्वोत्तम ईकाई ग्राम सभा है। ग्राम सभा के सभी सदस्य तथा स्थानीय निकायो—ग्राम पंचायतों, पचायत समितियो और जिला परिषदों—के सभी वर्ग अपने प्रतिनिधियो के माध्यम से सामाजिक सरोकार तथा जन हित के मुद्दे उठा सकते है और स्पष्टीकरण की मॉग कर सकते है। राजस्थान और मध्य प्रदेश से आनेवाली रिपोर्टो के अनुसार ग्राम सभा की अनेक बैठके सामाजिक अंकेक्षण का बहुत ही प्रभावशाली माध्यम साबित हुई है। ग्राम सभा की संस्था को सामाजिक अंकेक्षण का सर्वोत्तम औजार बनाने के लिए जमीनी स्तर पर अभी काफी काम करने की जरूरत है।

सूचना का अधिकार

पंचायती राज के क्षेत्र मे पिछले कुछ वर्षो मे एक सार्थक विकास हुआ है सूचना का अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष के रूप मे। राजस्थान की पाली और राजसमंद जिला परिषदो मे मजदूर किसान शक्ति संगठन द्वारा किये गये सर्वेक्षण से यह तथ्य उद्घाटित हुआ है कि विकास परियोजनाओं के अनुमानित बजट का 85 प्रतिशत हिस्सा विकास कार्यो पर खर्च हुआ ही नही। पंचायत प्रतिनिधियों ने व्यय की गयी राशि पर सरकार की स्वीकृति लेने के लिए फर्जी वाउचर और बिल दखिल किये थे। ये घपले सगठन द्वारा आयोजित जन सुनवाइयों के दौरान सामने आये। ऐसी ही घटनाओ से यह मॉग पैदा हुई कि जनता को सूचना का अधिकार होना चाहिए।

सूचना के अधिकार के लिए मजदूर किसान शक्ति संगठन के संघर्ष के फलस्वरूप राजस्थान के मुख्य मत्री ने अप्रैल 1995 में राज्य की विधान सभा मे घोषित किया कि प्रत्येक नागरिक को सूचना का अधिकार है तथा वह भुगतान दे कर अपने गाँव में पिछले पॉच वर्षो की अवधि में हुए विकास कार्यो पर हुए खर्च का विवरण प्राप्त कर सकता है तथा प्रमाण के रूप मे भविष्य में इस्तेमाल के लिए सभी दस्तावेजों की फोटो-प्रति भी ले सकता है। तमिलनाडु, गोआ, केरल और मध्य प्रदेश मे भी सूचना के अधिकार के सदर्भ में ऐसी ही व्यवस्थाएँ की गयी है। मध्य प्रदेश ने 1998 के शुरू में अपने बहुत-से विभागो मे, जिनमे से एक पंचायती राज भी था, जनता द्वारा जॉच के लिए खोल दिया। उत्तर प्रदेश ने भी पचायती राज के बहुत-से विभागों को इसी तरीके से पारदर्शी बना दिया है। सूचना के अधिकार का आदोलन धीरे-धीरे जोर पकड रहा है। इस आंदोलन की गति धीमी जरूर है, पर यह निरंतर आगे बढ रहा है। जैसे-जैसे दूसरे राज्य भी सरकारी रिकार्डो को जनता के लिए पारदर्शी बनाते जायेगे, सामाजिक अंकेक्षण का विचार फैलता जायेगा और तृणमूल स्तर के लोकतत्र को ज्यादा असरदार तरीके से काम करनेवाला बनायेगा।[40]

गैरसरकारी संस्थाएँ

गैरसरकारी संस्थाएँ, सामुदायिक पहले, जन संगठन और स्वैच्छिक संगठन पचायतो और नगरपालिकाओं को मजबूत बनाने की दिशा मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। 73वें और 74वे संविधान संशोधन के बाद से बहुत-सी गैरसरकारी संस्थाएँ जागरूकता बढाने, निर्वाचित प्रतिनिधियों—खासकर महिलाओं—को प्रशिक्षित करने, चुनावों मे महिलाओ की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने और सामाजिक विकास की रणनीतियॉ बनाने तथा उन्हे लागू करने के कार्यक्रमों के माध्यम से पचायतों की सफलता के लिए अनुकूल स्थितियॉ पैदा करने मे उत्प्रेरक की भूमिका निभा रही हैं। भारत मे स्थानीय निकाय अपनी सवैधानिक वैधता और नागरिक समूहो और स्वैच्छिक संगठनो के साथ अन्तर्क्रिया के कारण राज्य और समाज का आदर्श मिलन बिन्दु प्रस्तुत करते हैं।[41]

यहा यह उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षो मे गैरसरकारी सस्थाओ और पचायतो की भूमिका पर काफी सरगर्म बहस हुई है। स्वशासन की संस्थाओं के रूप मे पचायते तो सभी जगह हैं, लेकिन गैरसरकारी सस्थाओ की उपस्थिति व्यापक नही है। सच तो यह है कि आवश्यकता और विशेषज्ञता के आधार पर गैरसरकारी संस्थाओ का काम कुछ ही जिलो, ब्लॉको और गाँवो तक सीमित है। नयी पचायतों के अस्तित्व मे आने के बाद चार तरह की स्थितियॉ सामने आयी हैं :

(क) उन जन संगठनों और स्वैच्छिक संगठनों ने, जो ऐसे क्षेत्रों में काम कर रहे थे जहाँ न तो पंचायतें थीं और न ही स्थानीय पहले, अपने आपको उन क्षेत्रो मे स्थापित कर लिया है। ये संगठन पंचायतों को ऐसे नवागतुको के रूप में देखते है जो उनके कार्य क्षेत्र में दखल देंगे।

(ख) नव-गठित पंचायतें स्वैच्छिक क्षेत्र को—जो सामुदायिक पहलों और स्वैच्छिक सगठनो तथा गैरसरकारी सस्थाओ को मिला कर बनता है—अपने विधि-विहित कार्य क्षेत्र में प्रतिद्वद्वी की तरह देखती है।

(ग) तीसरी स्थिति यह है कि पंचायतें और स्वैच्छिक संगठन, दोनों अपनी-अपनी भूमिका और उसकी सीमाओं को अच्छी तरह समझते हैं और एक-दूसरे के पूरक की तरह सहयोग और समन्वय के साथ काम करते हैं।

(घ) कुछ इलाको मे स्वैच्छिक संगठन पंचायत चुनावो मे हिस्सा लेते हैं और अपने उम्मीदवार भी खड़े करते है। राजनीतिक दल भी पंचायत चुनावो में सक्रिय भागीदारी करते हैं। स्वैच्छिक क्षेत्र के उम्मीदवार या तो किसी पार्टी का टिकट पा लेते है या निर्दलीय के रूप में चुनाव लडते हैं। सबसे निचले यानी ग्राम पंचायत के स्तर पर उनकी सफलता दर सबसे ज्यादा है। यह भी देखा गया है कि जिन उम्मीदवारों ने स्वैच्छिक संगठनों में काम किया है या उनसे प्रशिक्षण प्राप्त किया है, वे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में ज्यादा दक्षता के साथ काम कर पाते है।[42]

बहुत-से राज्यों मे कुछ पचायतें निष्क्रिय हैं और लोग उनसे विमुख है। गैरसरकारी सगठन ऐसी पंचायतों के प्रति नकारात्मक रुख अख्तियार कर लेते है। डी. बद्योपाध्याय ने ठीक ही लिखा है स्वैच्छिक संस्थाओं को 'सपने में भी यह नहीं सोचना चाहिए कि पंचायतें उनकी हैसियत्त, स्थान और शक्ति से होड़ कर रही हैं। यह बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार किया जाना चाहिए कि विभिन्न स्तरों की पंचायते, प्रतिनिधिक शासन की इकाइयों के रूप में, बुनियादी स्थान की हकदार हैं।'[43]

भारत में स्वैच्छिक संस्थाओं की संख्या काफी बड़ी है। एक जीवंत और सक्रिय समाज तथा उसका आलोचनात्मक समर्थन पचायती राज सस्थाओं के भविष्य के लिए सर्वाधिक मूल्यवान संपत्ति है।

पंचायतों का अतिक्रमण

पिछले पॉच-सात वर्षो में पंचायतो के काम-काज की समीक्षा करते समय तीन चिताजनक रुझान दिखाई देते है जिनका उल्लेख जरूरी है · (1) पचायत चुनावों को स्थगित करना, (2) समानातर ढॉचे खडा करना, और (3) सांसदो का चुनाव क्षेत्र विकास कोष।

1. **पंचायतों का चुनाव स्थगित करना :** कुछ राज्य सरकारो पर यह एक दुखद टिप्पणी है कि पंचायतो का पॉच वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने पर उनके चुनाव कराने की संवैधानिक व्यवस्था को उन्होंने गभीरता से नहीं लिया है। संविधान का अनुच्छेद 243बी इस बारे मे बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य में गॉव, मध्यवर्ती स्तर और जिले के स्तरो पर पंचायतें होगी; और (1) प्रत्येक पंचायत अपनी पहली बैठक की निर्धारित तारीख से पाँच वर्ष तक काम करेगी--उससे ज्यादा नही, और (2) पचायत का गठन करने के लिए चुनाव उसका पॉच वर्ष का कार्य काल समाप्त होने के पहले या उसे भंग किये जाने की स्थिति मे भंग होने के छह महीनो के भीतर सपन्न कराया जाना चाहिए। (अनुच्छेद 243ई (1) तथा (3))

कई राज्यो में यह व्यवस्था है कि राजनीतिक दल ब्लॉक और जिला पचायतों के चुनावों में तो आधिकारिक रूप से हिस्सा ले सकते हैं, लेकिन ग्राम पचायतों के स्तर पर नहीं। बहरहाल, राजनीतिक दल ग्राम स्तर से ही पचायतों पर कब्जा करने के प्रति तत्पर रहे हैं और सत्तारूढ़ दल या सत्तारूढ़ दलों का गठबंधन अपने कार्य काल के मध्य में या उसकी समाप्ति के आसपास जनता का सामना करने से डरता है। कोई भी सत्तारूढ दल या सत्ता पाने का अभिलाषी दल अगले विधान सभा चुनावो के पहले विभिन्न स्तरो की पंचायतो मे सीट खो कर अपनी राजनीतिक साख गिरते नहीं देखना चाहता। भारत के परिपक्व हो रहे लोकतत्र की तारीफ मे यह कहना ही होगा कि प्रत्येक चुनाव के नतीजे अप्रत्याशित होते है यानी राजनीतिक दल यह मान कर नहीं चल सकते कि उन्हे मतदाता का समर्थन मिलेगा ही। इसलिए हमारे सामने ऐसी स्थितियॉ भी आती हैं कि सरकारी दल और विपक्षी दल दोनो पंचायत चुनावों को स्थगित करने या करते जाने के मामले मे हाथ मिला लेते हैं, ताकि उन्हे मतदाताओं का सामना न करना पड़े। पचायत चुनाव टालने का एक तरीका यह होता है कि राज्य के मौजूदा पंचायत अधिनियमों मे यहाँ या वहाँ कोई कमी निकाल कर या प्रतिकूल मौसम के नाम पर या राज्य के किसी हिस्से में नागरिक अशांति के हवाले से उच्च न्यायालय में याचिका दाखिल कर दी जाये, ताकि पंचायत चुनावों को संपन्न करने पर स्थगन आदेश प्राप्त किया जा सके।

राज्य चुनाव आयोग स्वतंत्र संवैधानिक संस्थाओं की तरह काम नही कर रहे हैं। बहुत-से राज्य चुनाव आयोग राज्य सरकारों के दबावो के सामने झुक जाते है।

कुछ ने तो ऐसी स्थिति में भी चुनाव स्थगित कर दिये है, जब चुनाव की प्रक्रिया शुरू हो गयी होती है। बहरहाल, इस आम स्थिति के शानदार अपवाद भी है—कई राज्य चुनाव आयोगो ने राज्य सरकारों के दबावो को अमान्य करते हुए पंचायत चुनाव कराने की अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी का निर्वाह किया है।

जब कोई मामला न्यायालय में जाता है, तो फैसला आने में समय लगता है। इसका एक बडा उदाहरण बिहार है। 9 अप्रैल 1996 को बिहार सरकार ने पटना उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय मे अपील की कि पचायत चुनावों मे (अन्य) पिछड़ी जातियो को दिया गया आरक्षण वैध नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने जुलाई 1977 में इस अपील को सविधान खंडपीठ के पास विचारार्थ भेज दिया। अभी तक, यानी 26 वर्ष बीतने के बाद भी, इस मामले की सुनवाई शुरू नही हुई है। इस विषय पर उच्चतम न्यायालय का स्पष्ट निर्देश न होने का लाभ बिहार सरकार ने इस तरह उठाया कि काफी समय तक पचायत चुनाव कराये ही नही।

पचायतो के खिलाफ जो एक निर्णायक कारक हमेशा सक्रिय रहता है, वह यह है कि राज्य सरकारें उनके साथ उच्चतर शासन और प्रशासनिक तंत्र के गरीब रिश्तेदारो जैसा नजरिया अपनाये हुए है। सविधान की नजर में ससद का सदस्य, विधान सभा का सदस्य और पचायत का सदस्य—तीनों ही हमारे लोकतात्रिक ढॉचे मे बराबर हैसियत के हकदार हैं। सिर्फ उनकी शक्तियॉ और भूमिकाएँ उनके चुनाव क्षेत्र की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग हैं। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए उच्चतम न्यायालय एक साफ-साफ फैसला दे दे, तो उससे देश मे लोकतांत्रिक सस्कृति स्थापित करने मे बहुत मदद मिलेगी।

2. समानांतर ढॉचे : केंद्र सरकार के मंत्रालय और राज्य सरकारों के विभाग, जिनका कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, महिला और बाल विकास तथा कल्याण जैसे विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों और योजनाओं से संबंध है, लगातार ऐसे ढॉचे खडे कर रहे है जो पंचायतों के समानांतर काम करते हैं—खासकर जिला स्तर पर। इनमे से कुछ रजिस्टर्ड सोसायटियाँ हैं, जो पंचायती राज सस्थाओं की कीमत पर बनायी गयी है। विभिन्न मंत्रालयों और विभागो द्वारा इन्हें भारी-कोष दिया जाता है। ये सोसाटियॉ अगर इस कोष का कुछ अंश पचायत समितियो या ग्राम पंचायतों को आवंटित करती है, तो उसके उपयोग के साथ शर्ते लगी होती है। केंद्र सरकार के बहुत-से मत्रालय ओर राज्य सरकारो के बहुत-से विभाग केंद्र या राज्य द्वारा प्रायोजित अनेक कार्यक्रमो का संचालन या क्रियान्वयन करते हैं। इसके लिए राज्यो में ब्लॉक या ग्राम स्तर तक सरकारी कर्मचारी होते हैं। यह कार्य पद्धति भी पचायती राज संस्थाओं की उपेक्षा करती है। जो काम पंचायतों का है, वह दूसरे लोग करते हैं।

इन समानांतर ढॉचो के तहत आनेवाले कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार है.

(क) *जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डीआरडीए)* : यद्यपि केरल, मध्य प्रदेश और कर्नाटक ने जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों को खत्म कर जिला पचायतो मे उनका विलय कर दिया है, इन अभिकरणो को पुनर्जीवित करने पर विचार किया जा रहा है। ग्रामीण विकास मत्रालय गंभीरता से यह सोच रहा है कि डीआरडीए का अध्यक्ष सांसद को और सचिव जिला कलक्टर को बना दिया जाये।

(ख) *जलागम विकास कार्यक्रम* : इन कार्यक्रमो को ज्यादातर कृषि मत्रालय तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा संचालित किया जाता है। कुछ गैरसरकारी संस्थाएँ भी इनसे जुडी हुई है। यद्यपि जलागम विकास के लिए जिला पचायतों को कोष का आवंटन करने मे कोई कठिनाई या तकनीकी बाधा नहीं है, पर ऐसा नहीं किया जा रहा है। कायदे से होना यही चाहिए कि जो एजेंसी जलागम कार्यक्रम को लागू कर रही है, उसे जिला पचायत से कोष मिले। इसका लाभ यह होगा कि इन कार्यक्रमो की जिम्मेदारी एक लोकतात्रिक रूप से चुनी गयी संस्था, जिला पंचायत, पर होगी।

(ग) *सयुक्त वन प्रबंध समितियाँ* : फिलहाल संयुक्त वन प्रबध समितियॉ पर्यावरण और वन मंत्रालय के अधीन काम कर रही हैं। वे ग्राम सभा या ग्राम पचायत या पचायत समिति--किसी के प्रति भी जिम्मेदार नही है। जिन इलाकों में वन लगाने और सामाजिक वानिकी मे पंचायती राज सस्थाओ की भूमिका काफी बड़ी हो सकती है और अनुसूचित क्षेत्रो में लघु वनोपज के प्रबंध में तो ऐसा है ही, सयुक्त वन प्रबध समितियॉ पंचायती राज के दायरे के बाहर काम कर रही हैं।

(घ) *जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम* : 73वॉ संविधान सशोधन अधिनियम, 1992 राज्य सरकारो को यह भार देता है कि वे शिक्षा का विषय, जिसमे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा शामिल हैं, पचायतों को दे दें। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) पॉच वर्षो की अवधि का है। इसके लिए कोष विश्व बैंक ने प्रदान किया है। इसका लक्ष्य पिछडे इलाको में प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाना है। इसमे जोर बच्चों की निरक्षरता को समाप्त करने पर है। यह कार्यक्रम कुछ चुने हुए राज्यो के लगभग 150 जिलो मे चल रहा है। नेशनल काउसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग ने चार राज्यों—हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक और बिहार—में डीपीईपी की सरचना का पंचायती राज सस्थाओं से किस प्रकार का अन्तरसंबंध है, यह जानने के लिए एक अध्ययन कराया। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि डीपीईपी एक समानांतर ढॉचे की तरह काम कर रहा है और पंचायती राज संस्थाओं से इसका कोई सक्रिय अन्तरसंबंध नही है।[44]

केंद्रीय मत्रालयों और विभागों द्वारा बनाये गये समानानर ढॉचों के अलावा राज्य सरकारें भी पंचायतों को उपेक्षा करने और उन्हे कमजोर बनाने के लिए अपनी योजनाऍ चला रही है। इस संदर्भ में आध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश के उदाहरण विशेष

रूप से उल्लेखनीय हैं।

(ड) *जन्मभूमि* आंध्र प्रदेश में जन्मभूमि कार्यक्रम ने पचायतो को काफी आघात पहुँचाया है। 'आंध्र प्रदेश एक कपनी का नाम है, लोग इसके शेयरहोल्डर है ओर मुख्य मत्री जनरल मैनेजर है'–1 जनवरी 1997 को दक्षिण कोरिया के सीमॉल उनडॉग (नया समुदाय आदोलन) की तर्ज पर शुरू किये गये जन्मभूमि कार्यक्रम का उद्देश्य-वाक्य यही है। जन्मभूमि के नौ चक्रो के लिए राज्य सरकार ने 1521 करोड़ 89 लाख रु. का लक्ष्य रखा है। इसमें सरकारी अंशदान 975 करोड 95 लाख रु का है। सरकारी अशदान के लिए रोजगार आश्वासन योजना, ग्रामीण पेय जल योजना, जवाहर रोजगार योजना, समन्वित आदिवासी विकास एजेसी, डीपीईपी. राष्ट्रीय मलिन बस्ती विकास कार्यक्रम आदि केंद्र प्रायेजित योजनाओं के लिए आवंटित की गयी राशियों को जन्मभूमि कार्यक्रम मे लगा दिया गया है। अध्ययनो से पता चलता है कि इन कोषों के उपयोग के लिए जो मानक निर्धारित किये गये हैं, उनकी उपेक्षा होती है। दसवें चक्र में स्वास्थ्य, चिकित्सा और परिवार कल्याण, महिला विकास ओर बाल कल्याण, ग्रामीण विकास, श्रम, शिक्षा, युवा कल्याण, खेल, नगरपालिका प्रशासन, पशु पालन, कृषि, बागवानी और रेशम उत्पादन से हटा कर राशि जन्मभूमि कार्यक्रमो को दे दी गयी। नोडल अफसरो को विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेट, हैदराबाद द्वारा किये गये एक अध्ययन का निष्कर्प है . 'पंचायती राज संस्थाओं के उन सदस्यो की, जो सत्तारूढ़ दल मे न हो कर अन्य दलों के सदस्य हैं, इस कार्यक्रम में कोई भागीदारी नही है। इसने पंचायती राज संस्थाओ तथा अन्य स्थानीय निकायों की उपेक्षा कर प्रशासन का एक समानातर ढॉचा खड़ा कर दिया हे, जिसमे विधायकों तथा अन्य राजनेताओ को ज्यादा महत्व दिया गया है।'[45]

(च) *जिला सरकार* : 1999 के शुरू मे मध्य प्रदेश सरकार ने जिला सरकारो की स्थापना की, जिसके मुख्य अधिकारी थे राज्य सरकार का एक मंत्री, जिला कलक्टर, विधायक, क्षेत्र का सासद और जिला परिषद के प्रतिनिधि। जिला सरकार को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये है। कलक्टर ही जिला सरकार का मुख्य कार्यकारी अधिकारी है, जिस कारण उसकी शक्तियाँ बहुत ज्यादा बढ गयी है। यह सब किया गया है सविधान के अनुच्छेद 243जेडडी का उपयोग करते हुए, जिसके तहत जिला योजना समितियो के गठन का प्रावधान किया गया है। कायदे से जिला सरकार की सज्ञा जिला पंचायत जैसी विकेंद्रित लोकतान्त्रिक संस्था को दी जानी चाहिए, क्योंकि जिला पचायत के सदस्यो का चुनाव जिले के लोगो द्वारा होता है। लेकिन जिला पंचायत को दरकिनार कर मध्य प्रदेश ने जो जिला सरकार बनायी है, वह एक प्रतिनिधि नही, नामांकित संस्था है। इसके दो निहितार्थ हैं : (1) जिला पंचायत अध्यक्ष की हैसियत कम हो गयी है–उसका स्थान जिला सरकार के नीचे हो गया है। (2) जिला मरकार के माध्यम से, जो संवैधानिक इकाई नहीं है, एक स्पष्ट रूप से समानातर

ढाँचा खड़ा कर दिया गया है। यह पचायती राज प्रणाली के विकास को बहुत दूर तक प्रभावित करेगा। दूसरे राज्य स्वशासन की स्थानीय इकाइयों की शक्तियो के साथ भितरधात करने के लिए मध्य प्रदेश के उदाहरण का अनुकरण कर सकते है।

3. सांसद कोष : सासद चुनाव क्षेत्र विकास योजना की घोषणा तत्कालीन प्रधान मत्री ने संसद के दोनो सदनों मे 23 दिसंबर 1993 को की। इस योजना के तहत प्रत्येक सासद को यह अधिकार दिया गया कि वह अपने चुनाव क्षेत्र में जिला कलक्टर को ऐसे विकास कार्यक्रम सुझा सकता है जिनका वार्षिक मूल्य एक करोड से अधिक न हो। सासद चुनाव क्षेत्र विकास योजना के तहत किये जा सकनेवाले 23 कामो की सूची बनायी गयी थी; जैसे, स्कूल भवनो, ग्रामीण सड़कों, पुलो तथा वृद्धों के लिए आश्रय स्थानो और ग्राम पचायतों, अस्पतालों और सास्कृतिक व खेलकूद की गतिविधियो के लिए निर्माण कार्य, नल कूपों की खुदाई आदि। केंद्रीय सरकार समय-समय पर इस सूची मे संशोधन कर सकती है। इस योजना के लिए राशि ग्रामीण विकास मत्रालय द्वारा जिला कलक्टरों को भेजी जाती है। किसी एक निर्माण या विकास कार्य के लिए अधिकतम दस लाख रु. खर्च किये जा सकते है। फिलहाल सांसद कोष की रकम दो करोड रु. प्रतिवर्ष है।

स्पष्टत. सासद कोष की पूरी परिकल्पना 73वे सविधान सशोधन के प्रावधानों और भावना पर कुठाराघात है।[46] ग्यारहवीं अनुसूची (अनुच्छेद 243जी) और बारहवी अनुसूची (अनुच्छेद 243डब्ल्यू) में 47 विषयों की सूची दी गयी है, जिनसे संबधित काम करना स्थानीय सरकारो का विशेषाधिकार है। वैसे, तकनीकी तौर पर यह सूची भी अंतिम नही है, क्योकि राज्य सरकारें स्थानीय निकायो के कार्यो का वितरण करने में किसी भी हद तक जा सकती है। दिलचस्प यह है कि सासद कोष का उपयोग जिन 23 कामो के लिए विहित किया गया है, वे सभी ग्यारहवीं अनुसूची में बताये गये 29 विषयो से संबधित हैं और पंचायतो के विषय हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 74वें सविधान संशोधन के अनुच्छेद 243जेडडी के अनुसार प्रत्येक जिले में एक जिला योजना समिति का गठन अनिवार्य है। लेकिन जिला स्तर पर कोई योजना कैसे बनायी जा सकती है, जब सासदों की अपनी प्राथमिकताएँ हों और उन्हें भारी रकमे खर्च करने की सुविधा दी गयी हो? कई रिपोर्टो में यह बात कही गयी है कि सासद कोष का दुरुपयोग हो रहा है या यह कोष भारी मात्रा में अव्यवहृत पडा रहता है।[47]

कुछ राज्यो में, ऐसी ही योजनाएँ विधान सभा और विधान परिषद के सदस्यों के लिए भी शुरू की गयी है। इससे भी ज्यादा खतरनाक बात यह है कि कुछ नगरपालिकाओ ने (जैसे, राजस्थान और दिल्ली में) पार्षदों के लिए भी इस प्रकार का कोष आवंटन करना शुरू कर दिया है। यह एक खतरनाक लक्षण है और स्थानीय निकायो के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण करने का निदनीय प्रयास है।

तिरोध ओर बाधाए

चायती राज का मूल आधार अनुवर्तित्व का सिद्धात है। अनुवर्तित्व का सिद्धात ह है कि जो काम निचले स्तर पर सर्वोत्तम ढग से किया जा सकता है, वह काम सी स्तर पर किया जाना चाहिए—उससे ऊँचे स्तर पर नही और जो काम निचले तर पर नही किया जा सकता, सिर्फ वही काम ऊपर के स्तर पर किया जाना चाहिए। ह स्वाभाविक है कि शुरू के वर्षो में गलतियाँ हो और उनसे सीख कर भविष्य 5 लिए उचित कदम उठाये जायें। वस्तुत यह पंचायती राज की प्रयोगावस्था है। पेछले कई दशकों मे राजनीतिक नेताओ और नौकरशाही का जो नजरिया हावी रहा ', उसे बदलना आसान नहीं है। प्रयोगावस्था की अवधि को कम करने के लिए कौन-से उपाय करने की जरूरत है? यह एक महत्वपूर्ण सरोकार है।

केंद्र, राज्य और जनता के स्तर पर जिन महत्वपूर्ण मुद्दों का समाधान खोजा जाना चाहिए, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

* राज्यों ने 73वे और 74वें सविधान सशोधनों के शब्दों का पालन किया है—उनकी भावना का नही। बहुत-से राज्यो के पंचायत अधिनियमों मे नौकरशाही को अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित निकायो पर नियंत्रण रखने का अधिकार दे दिया गया है। पंचायतों को शक्तियों और कार्यो का अवगमन बहुत ही मथर गति से हो रहा है। यह अवगमन उचित तरीके से हो सके, इसके लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि नीचे से यानी ग्राम सभाओ, ग्राम पंचायतो और जिला पंचायतो तथा जागरूक नागरिकों के सगठनों से आवाज उठायी जाये।
* यद्यपि सभी राज्यो ने सविधान सशोधनो के अनुरूप अधिनियम पारित कर दिये हैं, पर उनमे से बहुतो ने पंचायतो के रोजमर्रे के काम-काज के लिए नियम-उपनियम नही बनाये है। विभिन्न प्रशासनिक विभाग अभी भी उसी तरह काम कर रहे हैं जैसे वे नयी पचायतों के गठन के पहले काम कर रहे थे। बहुत-से राज्यो मे प्रशासनिक और तकनीकी कर्मचारी राजधानी के विभागीय प्रमुखो के अधीन काम कर रहे हैं और इन कर्मचारियो पर पंचायतो का कोई नियंत्रण नहीं है। परिणामस्वरूप पंचायत स्तर पर कर्मचारियों का घोर अभाव है, जिससे पचायतों का काम-काज प्रभावित हो रहा है। अधिकाश राज्यों मे, ग्राम पंचायत स्तर पर एक ही सचिव दो या तीन पंचायतो का कार्य भार सँभाल रहा है। उदाहरण के लिए राजस्थान में 9187 ग्राम पचायतों के लिए 3668 सचिव है यानी औसतन 2.5 ग्राम पचायतो पर एक सचिव। जनजातीय क्षेत्रो में एक ही सचिव तीन से चार पंचायतों की देखभाल करता है। इस्टीट्यूट ऑफ सोशल

साइमेज द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चला है कि सरपंच कई बार पचायत की बैठक को इसलिए स्थगित कर देते है कि पचायत सचिव उस बैठक मे उपस्थित नही हो सका था।[48] इस समस्या का एक समाधान यह है कि शासकीय कर्मचारियो का एक पचायत काडर बनाया जाये।

* शासन के निचले स्तर पर यानी पचायतो के महत्व, उनकी स्वायत्तता, उनकी शक्तियो और उनके कार्य क्षेत्र को मान्यता देने में राज्य स्तर के राजनेताओं की हिचकिचाहट भी शक्तियो के हस्तातरण में समस्या पैदा कर रही है। मत्री, विधायक और वरिष्ठ राजनेता चितित है कि अगर पचायते और नगरपालिकाएँ शक्तिशाली हो जाती है, तो वे स्वयं जिन अधिकारों का उपभोग करते आ रहे है, उनमे कटौती हो जायेगी। राज्य स्तर के नेता स्थानीय स्तर के नेतृत्व का उभरना पसंद नही करते, क्योकि इससे भविष्य मे उनके लिए चुनौती खडी हो जायेगी। सासद और विधायक पचायतो की बाधारहित कार्यशीलता के मार्ग मे अवरोध खडे करते है, ताकि उन्हे पूरे कद की स्थानीय सरकारों के रूप मे उभरने से रोका जा सके। विधायक उन भारी-भरकम रकमो पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए उतावले हैं जो डीआरडीए जैसी एजेसियो के जरिये केंद्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं के लिए भेजी जा रही है। जब पचायते निर्वाचित प्रतिनिधियो की बडी संख्या के साथ और विपक्ष की आलोचनात्मक दृष्टि के रू-ब-रू पूरी सक्रियता से अपना काम-काज शुरू कर देगी, तो लोग पचायतों के कार्यक्रमो और गतिविधियो मे भागीदारी के जरिये अपने अधिकारों से वाकिफ हो जायेगे। इसका नतीजा होगा विधायकों को इस समय जो अतिरिक्त अधिकार मिले हुए हैं, उनमे कटौती। अतः पंचायती राज सस्थाओं के प्रति सांसदों और विधायको के मौजूदा रुख को बदलने के लिए सभी स्तरो पर प्रयत्न करने की जरूरत है।
* सरकारी अधिकारी आम तौर पर किसी दूरस्थ नियत्रण बिन्दु अर्थात राज्य की राजधानी से अनुशासित होना पसद करते हैं। वे नहीं चाहते कि पंचायती राज के प्रतिनिधि निकट से उन पर निगरानी रखें। इसलिए पचायत सदस्यो के साथ उनका असहयोगपूर्ण व्यवहार एक प्रमुख मुद्दा है। उदाहरण के लिए प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के अखिल भारतीय संघ ने पंचायतो के अधीन काम करने की शिक्षको की अनिच्छा जतानेवाले प्रस्ताव पारित किये। पश्चिम बंगाल जैसे राज्य मे भी, जहाँ पंचायती राज का लबा इतिहास है, जब भी सरकारी कर्मचारियो को पंचायतों के अधीन किया जाता है, वे ऐसे तबादलो को रुकवाने के लिए अदालत से स्थगन आदेश लाने मे सफल हो जाते है। इसी से सबधित मुद्दा यह है कि जो अफसर जिला या उससे

नीचे के स्तर पर कार्यरत है, वे निर्वाचित पचायत कार्यकारियों--जैसे, जिला पचायत अध्यक्ष, ब्लॉक समिति अध्यक्ष या ग्राम पंचायत अध्यक्ष से आदेश लेने में झिझकते हैं। स्पष्ट है कि स्थानीय सरकारों को सुदृढ बनाने के लिए हमें नौकरशाही के अपने ढाँचे में लोकतत्र की नयी सस्कृति का संचार करना होगा।

देश के बहुत-से हिस्सों में राजनीतिक सचेतनता का निम्न स्तर, सामाजिक पिछडापन, निरक्षरता और जातिवाद—ये ऐसे कारक है जो नये पचायनी राज को पीछे की ओर ले जाने के लिए जिम्मेदार है। सामंती मूल्य और सस्कार अब भी काफी दृढ़ है। बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उडीसा मे—जहाँ 2001 की जनगणना के अनुसार लगभग 40 करोड लोग रहते है—पचायती राज के कार्यक्रम का स्तर संतोषजनक नही है। यद्यपि मध्य प्रदेश 73वें सविधान सशोधन के बाद पचायत चुनाव करानेवाला पहला राज्य है, इन चुनावो के बाद जल्द ही इस आशय की रिपोर्टे आने लगी कि पंचायतो का हाल ठीक नही है और स्त्रियों, अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियो के जो प्रतिनिधि निर्वाचित हो कर आये है, वे ऊँची जातियो के अत्याचार का शिकार हो रहे है। इन हिसक घटनाओं की एक समाजशास्त्रीय तहकीकात का निष्कर्ष यह है कि 'पचायत उस समाज का एक सूक्ष्म संस्करण होती है गॉव जिसका हिस्सा होता है। 73वें सशोधन में प्रतिपादित स्वशासन की सस्थाओ के उच्च आदर्शो को मौजूदा अन्यायपूर्ण समाज मे यथार्थ मे रूपातरित नही किया जा सकता।'[4] इस दिशा मे खास-खास मामलो के जो भी अध्ययन किये गये, उन सभी में एक ऐसी सामाजिक प्रणाली की झलक थी, जो व्यक्ति की प्रतिष्ठा का हनन करती है और एक ऐसी सामाजिक मूल्य प्रणाली की भी, जो किसी व्यक्ति या उसके द्वारा धारण किये जानेवाले पद को वह सम्मान नही देती जो उसे मिलना चाहिए। दुर्भाग्यवश, सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक मुद्दा किसी की कार्य सूची में नहीं है—न तो सरकार की, न राजनीतिक दलों की और न ही नागरिक संगठनो की कार्य सूची में। बहुत-सी जगहों पर पुरानी व्यवस्था किसी नयी व्यवस्था के लिए स्थान खाली नही कर रही है। स्वयं पचायते ही अत्याचार के औजार के रूप मे काम कर रही है। भूमि सुधारों का न होना, स्त्रियों में साक्षरता का नीचा स्तर, पितृसत्तात्मक सत्ता इत्यादि गाँवों में कमजोर वर्गो के खिलाफ जाते हैं। इससे महिलाएं बहुत ज्यादा प्रभावित होती है। बहुसख्य लोग, जो परपरागत अत्याचारी सत्ता ढॉचे द्वारा दबाये हुए है, पंचायतो द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे अवसरो का लाभ उठाने में असमर्थ हैं। शक्तिशाली पचायतो की नयी प्रणाली क

अस्तित्व में आने के बाद चुनावों के दौरान और चुनावो के बाद पचायतो के कामकाज के दौरान गंभीर सघर्ष हुए हैं। पिछड़े हुए इलाको मे पचायत चुनावो के समय व्यापक हिंसा होती है। अतएव समय की माँग यह है कि समाज के जिन वर्गो को सत्ता के दायरे से बहिष्कृत रखा गया है, उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल किया जाये।

* पंचायत सदस्यों की अधिसंख्या अल्प शिक्षा-प्राप्त और निरक्षर भी है। इनमें से बहुतों ने, खास तौर से महिलाओ ने, सार्वजनिक जीवन की तो छोडिए, पचायतों में ही पहली बार प्रवेश किया है। अतः स्वाभाविक है कि तकनीकी पहलुओं को समझने और उनके अनुसार काम करने में उन्हे दिक्कत आती हो। उन्हें पंचायत के काम-काज में प्रशिक्षण देने की सख्त जरूरत थी। नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट, हैदराबाद, राज्यों में गठित इस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट और कतिपय गैरसरकारी संस्थाएँ पंचायती राज सस्थाओं के सदस्यो को प्रशिक्षण देने में जुटी हुई है। इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज द्वारा किये गये एक अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि इस महत्वपूर्ण क्षेत्र मे अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। उदाहरण के लिए, प्रशिक्षण की अवधि छोटी थी, प्रशिक्षण देनेवाली संस्थाओं या जहाँ प्रशिक्षण दिया गया, उन केंद्रों का हाल ठीक नहीं था, प्रशिक्षण देनेवाली टीमो को मिला ढाँचागत समर्थन अपर्याप्त था, बहुत-से प्रशिक्षक अपने काम के प्रति उदासीन थे—उनमे कोई उत्साह नहीं था, दूरस्थ माध्यमों से दिया गया प्रशिक्षण काम का साबित नही हुआ, इसका कोई अध्ययन नही हुआ कि प्रशिक्षण कार्यक्रमो का प्रभाव क्या पडा, न ही प्रशिक्षण के बाद का अनुवर्ती कार्यक्रम चलाया गया, प्रशिक्षण देनेवाली सस्थाओं के बीच तथा उनके और सरकार के बीच समन्वय का अभाव था। इसके अलावा प्रशिक्षण की विषयवस्तु और उसका दायरा, दोनो ही अपर्याप्त थे।[50] प्रत्येक पाँच वर्ष पर या इससे कम अन्तराल पर भी 30 लाख निर्वाचित पंचायत सदस्यो को प्रशिक्षित करना एक बृहत काम है। उनके प्रशिक्षण पर ही लोकतंत्र और जिला तथा उससे नीचे के स्तर पर काम कर रही लोकतांत्रिक संस्थाओ का भविष्य निर्भर है। साथ ही, प्रशिक्षण एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। इसलिए इस बृहत चुनौती का मुकाबला करने के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों, भारत मे कार्यरत अन्तरराष्ट्रीय विकास सगठनों तथा गैरसरकारी संगठनो के पास जो भी ढाँचागत सुविधाएँ हैं, सूचना की जो भी टेक्नोलॉजी है और जितने भी प्रशिक्षक हैं, उन सभी का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

संशोधनों की जरूरत

पिछले एक दशक के अनुभवों के आधार पर यह आम भावना बनी है कि संविधान के ग्यारहवें भाग में समाविष्ट 73वे और 74वे संशोधनों पर पुनर्विचार की जरूरत है, ताकि उनके प्रावधानो को सशक्त बनाया जा सके और अनुच्छेद 243 मे निर्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। इन प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की जरूरत है—(1) ग्राम सभा और उसका कार्य क्षेत्र, ग्राम सभा को उपयोगिता और प्रभावशीलता को केसे बढ़ाया जाये, (2) पचायती राज सस्थाओं की समरूप त्रिस्तरीयता तथा विभिन्न स्तरों के बीच आवयविक एकसूत्रता की वांछनीयता, (3) पंचायतो में सासदों और विधायकों की उपस्थिति, (4) अन्य पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षण—चूंकि विधान सभाओ और ससद में अन्य पिछडे वर्गो के लिए आरक्षण नही है, क्या पंचायतों में इसे जारी रखना चाहिए? (कुछ राज्यों में इस मुद्दे पर काफी विवाद है और अदालतों में मामले भी चल रहे हैं) (5) अनुच्छेद 243जी और ग्यारहवीं अनुसूची को किस तरह सशोधित किया जाये कि पंचायतें स्वशासन की संस्थाएँ बन सके? (6) न्याय पचायते—क्या सविधान में न्याय पंचायतों के लिए विशेष प्रावधान होना चाहिए?

ससद में कोई व्यापक सशोधनोंवाला विधायक लाने के पहले इन तथा अन्य मुद्दों पर विस्तृत विचार-विमर्श और बहस की जरूरत है। सविधान के इस भाग के साथ फुटकर छेडछाड, जैसा कि दिसम्बर 1999 में राज्य सभा में लाये गये 87वे संशोधन विधेयक के माध्यम से हुआ, पंचायती-राज के उद्देश्य के लिए हानिप्रद तथा उदीयमान स्थानीय निकायो के लिए खतरनाक है।

लघु गणराज्यों की ओर

प्रारम्भिक कठिनाइयो और नयी व्यवस्था के लिए स्थान बनाने में पुरानी व्यवस्था द्वारा पेश किये अवरोधो के बावजूद बहुत-सी ऐसी चीजें घटित हुई हैं और घटित हो रही हैं जो आशावाद के लिए सामग्री प्रदान करती है। नयी पचायतों के अस्तित्व मे आने के बाद जन भागीदारी के आधार पर नये और सार्थक कार्यक्रम शुरू किये जा रहे है। केरल की पंचायतों और नगरपालिकाओं मे शुरू किया गया 'लोगो के लिए लोगों के द्वारा योजना निर्माण' के नारे के साथ जन भागीदारी पर आधारित और स्थानीय स्तर पर टिकाऊ विकास आयोजन ऐसी ही एक महत्वपूर्ण घटना है। स्थानीय निकायों को सशक्त बनाने का यह प्रयास, ताकि वे अपनी प्राथमिकताओं के आधार पर परस्पर ग्रन्थित योजनाओं का एक पूरा खाका वैज्ञानिक ढंग से तैयार कर सकें,[51] एक आंदोलन की शक्ल ले चुका है तथा उसने देश भर का ध्यान आकर्षित किया है। योजना कोष का लगभग 40 प्रतिशत भाग पंचायती राज और नगरपालिका संस्थाओ के माध्यम से बिना कोई बंधन लगाये, सिर्फ इस मार्ग निर्देश के साथ आवन्टित

किया जा रहा है कि इसका उपयोग ग्रामीण क्षेत्रो मे उत्पादक क्षेत्रो, सामाजिक सेवाओ और आधारभूत ढाँचे के निर्माण पर 40-30-30 के अनुपात में किया जाना चाहिए।[32] यह एक ऐसा उदाहरण है, जिसका अनुकरण दूसरे राज्य कर सकते हैं।

हम इस तथ्य से अवगत है कि सविधान सशोधन स्पंदनशील स्थानीय सरकारो को अस्तित्व में लाने की सिर्फ एक जरूरी (पर काफी नहीं) शर्त है। हम इस तथ्य से भी अवगत है कि पंचायते जड़ जमा सकें, इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति का होना एक इतना ही महत्वपूर्ण कारक है। लेकिन जहाँ इस राजनीतिक इच्छाशक्ति का सम्पूर्ण अभाव है, पंचायतों को सुदृढ़ करने की दिशा में ऐसे काम हुए है जो पहले सोचे भी नहीं जा सकते थे। उडीसा में राज्य सरकार ने पचायत चुनावों को रोकने के लिए क्या नही किया। लेकिन राज्य चुनाव आयोग, प्रेस, लोग और न्यायपालिका–सभी ने उडीसा सरकार पर अपने-अपने स्तर पर दबाव डाला कि वह पचायत चुनाव कराने के अपने सवैधानिक दायित्व का पालन करे। उड़ीसा सरकार को जनवरी 1997 मे पचायत चुनाव कराने पडे, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रो मे एक लाख जन प्रतिनिधि निर्वाचित हो कर पंचायतों मे आये। इसी तरह आध्र प्रदेश मे पचायत चुनावों को स्थगित करने के लिए अध्यादेश जारी किया गया, तो राज्य चुनाव आयोग तथा कई अन्य सगठनो और व्यक्तियो ने अदालत में याचिका दायर की। आध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने उस अध्यादेश को निरस्त कर दिया। यह सब इसीलिए सम्भव हुआ कि सविधान सशोधन के बाद देश मे एक नया माहौल बना है।

भ्रष्टाचार मे, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन का अभिशाप बना हुआ है, काफी कमी आ सकती है, यदि स्थानीय निकायो को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की जा सकें। इस बारे मे यह व्यग्यपूर्ण टिप्पणी की जाती है कि राजनीतिक और आर्थिक विकेंद्रीकरण के साथ-साथ भ्रष्टाचार का भी विकेद्रीकरण हो जायेगा। निश्चय ही यह आशका सच साबित हुई है–लेकिन एक फर्क के साथ। स्थानीय स्तर पर भ्रष्टाचार तत्काल दिखाई पड जाता है और उसका प्रतिरोध भी तत्काल ही सामने आ जाता है। चूँकि लोगों की सतर्क निगाहे हर चीज पर रहती है, इसलिए स्थानीय स्तर पर जनता के प्रति जवाबदेही स्वाभाविक रूप से ज्यादा होती है। जैसे-जैसे ग्राम सभाएँ सामाजिक अंकेक्षण का मच बनती जा रही है, जन प्रतिनिधियों में सतर्कता भी बढ़ रही है।

नया पचायती राज सूचनाओ के बेहतर प्रवाह के द्वार खोल रहा है। सूचना शक्ति है और वर्चस्वशाली वर्गो ने साधारण लोगों को अँधेरे में रखा है। सार्वजनिक मामलो मे पारदर्शिता नहीं थी, क्योकि हर सरकारी काम गोपनीय था और जनता को उसके बारे मे नहीं बताया जाता था। जब 30 लाख निर्वाचित पंचायत सदस्य जन जीवन को प्रभावित करनेवाले मामलों के बारे मे सूचनाओं की माँग करते है, तो सूचनाओं की यह केद्रीकृत प्रणाली दरकने लगती है। सभी संकेतकों की कसौटी

पर उत्तर भारत के राज्य—उत्तर प्रदेश, बिहार मध्य प्रदेश और राजस्थान-सामाजिक विकास के मामले मे पिछडे हुए है। इसका एक कारण है सामाजिक आंदोलनो का अभाव, जब कि दूसरे राज्यो मे समय-समय पर ये आंदोलन होते रहे हैं। इस ऐतिहासिक कमी की पूर्ति पंचायतें कर सकती हैं—लोगों मे अपनी जिन्दगी का नियत्रण अपने हाथ मे लेने की भावना पैदा कर। नयी सहस्राब्दी के इन प्रारम्भिक वर्षो मे नयी पचायते इन राज्यो के गॉवो मे जीवन का एक नया गवाक्ष खोल सकती हैं। इसका प्रतिरोध होगा जरूर—वह हिसक भी हो सकता है, लेकिन लोकतंत्रीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसे इस प्रकार के अवरोध से रोका नहीं जा सकता है। जब लोग सत्ता का स्वाद चख लेते है, तो वे किसी के आगे नहीं झुकते।

दुर्भाग्यवश पचायतों को सशक्त और स्थानीय लोकतत्र को सुदृढ़ करने के विरुद्ध कार्यरत शक्तियॉ अभी भी काफी ताकतवर हैं। यथास्थिति को बनाये रखने मे जिनका निहित स्वार्थ है, वे योजनाबद्ध ढग से यह प्रयास कर रहे है कि स्थानीय सरकारो की कार्यकुशलता के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर सदेह पैदा हो जाये। सकारात्मक आलोचना या रचनात्मक कार्य नदारद है। लेकिन नया पंचायनी राज हम सभी का पथ प्रदर्शन कर रहा है। पंचायतों को लोगों की जिन्दगी का अविच्छिन्न हिस्सा बनाने के लिए सुदृढ अभियान आज के समय की माँग है। सच तो यह है कि यह प्रक्रिया अब पीछे नही ले जायी जा सकती। यह हमारे राज्य तत्र का पुनर्निर्माण करने का दूसरा मौका है। पहला मौका वह था जब हमने एक गणराज्यवादी संविधान अपने आपको सौंपा।

'लघु गणराज्यों' का देश बनना ही भारत की नियति है। प्राचीन काल मे यह देश ऐसा ही था और शताब्दियो तक उसने अपनी यह विशेषता बनाये रखी। लोकतांत्रिक क्रान्ति और आधुनिकता की विमुक्तिकारी ऊर्जा के साथ नये 'लघु गणराज्य' समानता और जन समृद्धि के लिए कार्य करने को बाध्य है।

संदर्भ

1. निर्मल मुखर्जी, तीसरा स्तर, *इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 1 मई 1993, पृष्ठ 859-62
2. एच डी मालवीय, *विलेज पंचायत्स इन इण्डिया,* आर्थिक और राजनीतिक शोध विभाग, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ 258
3. एम, वेंकटरंगेया तथा एम पट्टाभिरामन (सपादित) *लोकल गवर्नमेंट इन इण्डिया ' सेलेक्ट रीडिंग्स,* एलाइड पब्लिशर्स, मुबई, 1969, पृष्ठ 97
4 पूर्व उद्धृत पृष्ठ 190
5 एच.डी मालवीय, पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 215-16
6. पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 109
7 आर.एल खन्ना, *पचायती राज इन इण्डिया,* इ इग्लिश बुक डिपो, अबाला छावनी, 1972
8 ये प्रान्त थे मद्रास (1920 का पंचायत अधिनियम), बाबे (1920 का ग्राम पंचायत अधिनियम)

बगाल (1919 का स्वशासन अधिनियम), बिहार (1920 का स्वशासन अधिनियम), मध्य प्रात और बरार (1920 का ग्राम पचायत अधिनियम), उत्तर प्रदेश (1920 का ग्राम पचायत अधिनियम) पजाब (1922 का पंचायत अधिनियम), और असम (1925 का स्वशासन अधिनियम)।

1926 तक छह रियासती राज्यों न ग्राम पचायत अधिनियम अपना लिये थे। य राज्य थे कोचीन (पचायत विनियम अधिनियम, 1919), इदौर (पचायत अधिनियम, 1920), त्रावनकोर (ग्राम पचायत अधिनियम, 1925), बडोदा (ग्राम पंचायत अधिनियम, 1926), कोल्हापुर (पचायत अधिनियम 1926) और मैसूर (ग्राम पचायत अधिनियम, 1926)। बाद के वर्षो मे, कुछ अन्य राज्यो मे भी इस प्रकार के अधिनियम अपनाये गये बीकानेर (ग्राम पंचायत अधिनियम, 1928) करोली (ग्राम पचायत अधिनियम, 1939), हैदराबाद (ग्राम पचायत अधिनियम, 1940), मेवाड़ (ग्राम पचायत अधिनियम, 1940), जसदन (ग्राम पंचायत अधिनियम, 1942), भावनगर (ग्राम पचायत अधिनियम, 1943), पोरबदर (ग्राम पचायत अधिनियम, 1943), भरतपुर (ग्राम पचायत अधिनियम, 1944), मारवाड़ (ग्राम पचायत अधिनियम, 1945), वाडिया (ग्राम पचायत अधिनियम, 1946), धरनगध्रा (ग्राम पचायत अधिनियम, 1946), मोरवी (ग्राम पचायत अधिनियम, 1946) सिरोही (ग्राम पचायत अधिनियम, 1947), और जयपुर (ग्राम पचायत अधिनियम, 1948)।

9 एम.क. गांधी, ग्राम स्वराज की मेरी धारणा, *हरिजन*, 26 जुलाई 1942

10 एम. वेकटरगैया और एम पट्टाभिरामन, पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 97-103

11 पूर्व उद्धृत

12 भारत सरकार, *सामुदायिक प्रकल्पो और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अध्ययन के लिए दल की रिपोट* (अध्यक्ष · वलवंतराय मेहता), योजना प्रकल्पो पर समिति, राष्ट्रीय विकास परिषद (नयी दिल्ली, नवम्बर 1957), खण्ड 1, पृष्ठ 23

13. पूर्व उद्धृत

14 *हिन्दुस्तान टाइम्स*, 3 अक्टूबर 1959

15 एसोसिएशन ऑफ वालटरी एजेन्सीज फॉर रूरल डेवलपमेट (अवाड), *राजस्थान मे पचायती राज पर अध्ययन दल की रिपोर्ट* (नयी दिल्ली, 1962)

16 य राज्य और समितियाँ थीं—आध्र प्रदेश : पुरुषोत्तम समिति, 1964, रामचद्र रेड्डी समिति, 1965 और नरसिहम समिति, 1972, कर्नाटक : वासप्पा समिति, 1963, महाराष्ट्र नाइक समिति 1961 और बोगदीवार समिति, 1963, राजस्थान . माथुर समिति, 1963, सादिक अली समिति, 1963 और जी एल व्यास समिति, 1973, उत्तर प्रदेश . गोविद सहाय समिति, 1959 और मूर्ति समिति, 1965

17 अभिजित दत्त, भारत में विकेंद्रीकरण तथा स्थानीय सरकार सुधार, *इडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, खंड 31, सख्या 3, जुलाई-सितम्बर 1985, पृष्ट 562

18 'अपर्याप्त ससाधनों के अलावा, इन निकायो के चुनाव नियमित रूप मे नही कराये गये है। वस्तुत ग्यारह राज्यो मे पचायती राज सस्थाओ के एक या एकाधिक स्तरो के चुनाव काफी समय से बकाया हैं और आठ राज्यों मे ग्राम पंचायतो तक के चुनाव बकाया है। चुनावों को इस या उस बहाने स टाला जाता रहा है और मौजूदा निकायों का कार्य काल बढा दिया गया है या उन्हे निलबित कर दिया गया है।' देखे, ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए मौजूदा प्रशासनिक व्यवस्थाओ का पुनर्वीक्षण (काड) *रिपोर्ट*, ग्राम विकास विभाग कृषि

मत्रालय, नयी दिल्ली, 1985, पृष्ठ 41
एल सी जैन इत्यादि, *ग्रास विदाउट रूट्स*, सेज पब्लिकेशस, नयी दिल्ली, 1985 पृष्ठ 39
पूव उद्धृत पृष्ठ 40
पूव उद्धृत, पृष्ठ 44
भारत सरकार, *पचायती राज सस्थाओ पर समिति की रिपोर्ट* (अध्यक्ष अशोक मेहता), कृषि तथा सिचाई मत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग (नयी दिल्ली, 1978), पृष्ठ 5
'पचायती राज सस्थाओ को विकास की प्रक्रिया से विलग करने मे सम्भवत नोकरशाही की अपनी भूमिका थी। उसका नजरिया बनाने मे कई कारको का योगदान प्रतीत होता है। प्रशासनिक पदानुक्रम की प्रणाली सगठन के सिद्धात के रूप में उन्हे अपन अनुकूल लगती हे। अफसरा मे यह एहसास होता है कि वे परिणामों ओर वित्तीय नियमों के पालन क लिए मूलत राज्य सरकार के प्रति जवाबदेह है। उन्हें अपने भाई-वंदों पर भरोसा करने क अलावा कुछ ओर पता ही नहीं होता। अत वे एक ओर तो यह नही चाहेंगे कि पचायती राज सस्थाओं को अतिरिक्त काय सोपे जाये और दूसरी आर निर्वाचित प्रतिनिधियो के तहत काम करने के साथ वे जल्दी सामजस्य नही बेठा सकेंगे।' पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 5-6
अखिल भारतीय काग्रेस समिति, *काग्रेस ग्राम पचायत समिति की रिपोर्ट* (नयी दिल्ली, 1954) पृष्ठ 10-11
आई पी शुक्ल, *ए हिस्टरी ऑफ विलेज पचायत्स* इन इडिया, इस्टीट्यूट ऑफ इकॉनॉमिक रिसच (धारवाड, 1964), पृष्ठ 10
एल सी जैन इत्यादि, पूर्व उद्धृत, मे देखिए भूमिका। पंचायती राज सस्थाओ के विकास मे बाधा डालने में राजनीतिक सुविधावाद की भूमिका के लिए देखिए जॉर्ज मैथ्यू, *पचायती राज फ्रॉम लेजिस्लेशन टु मूवमेंट*, कसेप्ट पब्लिशिग कपनी (नयी दिल्ली, 1994)
मलकॉम एस. आदिशेपेया, सवैधानिक सुरक्षाओ की जरूरत, जॉर्ज मैथ्यू द्वारा सपादित *पचायती राज इन कर्नाटक टुडे* मे, कसेप्ट पब्लिशिग कपनी (नयी दिल्ली, 1986), पृष्ठ 25
पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 25
अब्दुल नजीर साब, चौखबा राज्य की ओर, जॉर्ज मैथ्यू द्वारा सपादित पूर्व उद्धृत पुस्तक म पृष्ठ 53
निर्मल मुखर्जी, वैकल्पिक जिला सरकार, एम एन दाँतवाला इत्यादि सपादित *रूरल डेवलपमट द इडियन एक्सपीरिएस*, ऑक्सफोर्ड इंडिया बुक हाउस (नयी दिल्ली, 1986) में
लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के मूल आधार पचायतो ओर स्वशासन पर रिपोर्ट, जनता दल (नयी दिल्ली, 1989)
जॉर्ज मैथ्यू, भारत मे स्वशासन बहुस्तरीय सघवाद की ओर, *रिव्यू ऑफ डेवलपमेंट एड चेंज* खड 2, अक 2, जुलाई-सितबर 1997, मद्रास इस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, चेन्नई
मणिशंकर अय्यर, तृणमूल स्तर पर उभार, *इडियन एक्सप्रेस*, 1 दिसम्बर 1998
जॉज मैथ्यू ओर रमेश सी नायक, पचायतें व्यवहार मे क्या लाभ है इनसे शोषित वर्गो को? *इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, खड 31 अक 27, 6 जुलाई 1996, पृष्ठ 1765-1771।
ये भी देखे : *हिंदुस्तान टाइम्स*, 22 अगस्त 1998, नयी दिल्ली, *इडियन एक्सप्रेस*, 21 अगस्त 1998, नयी दिल्ली, पी साईनाथ, वास्तविक दुनिया की कार्यशालाएँ, *हिन्दू*, 26 जून 1998, नयी दिल्ली

35 आंध्र प्रदेश के कुरनूल जिले की केलवा ग्राम पचायत की सरपच फातिमा बी को उनके गरीबी उन्मूलन कार्य के लिए सयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा *रेस अगेस्ट पॉवर्टी* पुरस्कार के लिए चुना गया। यह पुरस्कार उन्हे न्यू यॉर्क मे सयुक्त राष्ट्र के महासचिव द्वारा 17 अक्टूबर 1998 को प्रदान किया गया।

36 नयी दिल्ली मे 2 अगस्त 1997 को राज्यों के मुख्य मत्रियो और पचायत मत्रियो के सम्मेलन ने लक्ष्य किया कि कई राज्यों के अनुपालन अधिनियमो ने गॉवो का वर्गीकरण नही किया गया था। ये अधिनियम आदिवासी जनसख्या के सकेंद्रणवाले क्षेत्रो मे चालू सामुदायिक कानूनो के बारे में भी कुछ नहीं कहते। सम्मेलन ने सुझाव दिया कि पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 की विभिन्न व्याख्याओं से उत्पन्न होनेवाली इन तथा अन्य समस्याओ का समाधान करने के लिए मुख्य मत्रियों की एक दूसरी बेठक बुलायी जाये।

37 तमिलनाडु ने कलक्टर को जिला योजाना समिति का अध्यक्ष बना दिया और मध्य प्रदेश ने मत्री को। बहरहाल, कटु आलोचना के बाद तमिलनाडु ने मई 2000 मे अपने पचायत राज अधिनियम (1994) मे सशोधन कर जिला परिषद के अध्यक्ष को जिला योजना समिति का अध्यक्ष और जिला कलक्टर को उपाध्यक्ष बना दिया।

38 प्रभात दत्त, ग्राम सभा का अनुभव, *फ्रन्टलाइन,* 30 जुलाई 1999, पृष्ठ 52

39 केरल सरकार, विकेन्द्रीकरण पर समिति (अध्यक्ष : सत्यब्रत सेन), *द्वितीय अतरिम रिपोर्ट,* 1996 पृष्ठ 19-20

40. इस विषय के विस्तृत अध्ययन के लिए देखें माधव गोडबोले, सूचना का अधिकार, *इकॉनॉमिक एड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 35, अंक 17, 22-28 अप्रैल 2000, पृष्ठ 1423-28। यूएनडीपी की *मानव विकास रिपोर्ट 2000* मे सूचना के अधिकार के लिए सघर्ष मे एमकेएसएस की भूमिका को इस प्रकार रेखाकित किया गया है : भारत मे मजदूर किसान शक्ति सगठन सार्वजनिक ससाधनों, व्ययों और विकास प्रकल्पो पर नियमित रूप से जन सुनवाइयों का आयोजन करता है। लोग इन मुद्दो से सबधित सरकारी दस्तावेजो की फोटोप्रतियो की मॉग कभी भी कर सकते हे और सार्वजनिक अधिकारी इनकी पूर्ति करने के लिए बाध्य हैं।' (*मानव विकास रिपोर्ट 2000,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क, 2000, पृष्ठ 39)

41 जॉर्ज मेथ्यू, स्थानीय सरकार जहॉं राज्य और नागरिक समाज का मिलन होता है, राजेंद्र के साइल और अजित मुरिकेन द्वारा सपादित *ट्रॉसेंडेटिग बाउण्डरीज पर्स्पेक्टिव्स ऑन फेथ, सोशल एक्शन एड सॉलिडरिटि,* मुम्बई 1995, पृष्ठ 166-82

42. जॉर्ज मेथ्यू, विकेंद्रित सस्थान सरकार तथा स्वयसेवी क्षेत्र, *इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 34, अक 9, 27 फरवरी 1999। यह भी देखे फिलिप ओल्डर्नबर्ग, *नॉनगवर्नमेंटल ऑर्गनाइजेशन्स एड पचायती राज,* नयी दिल्ली, अवार्ड ओर प्रिआ, 1999

43. डी बंद्योपाध्याय, स्वैच्छिक सगठन और पचायतें, *मेनस्ट्रीम,* 29 मार्च 1977

44. जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम और पचायतें दरारो से भरा सबध, *पंचायती राज अपडेट,* अगस्त 1999, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली

45 *जन्मभूमि एन इन्नोवेटिव अप्रोच टु पार्टिसिपेटरी डेवलपमेंट इन आंध्र प्रदेश,* आइआरडी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद, 1998, पृष्ठ 38

46 ई एम वेंकटरमैया, सांसद चुनाव क्षेत्र विकास योजना संविधान पर आघात, *इडियन एक्सप्रेस,*

नयी दिल्ली, 13 फरवरी 1997

47 ओर अधिक विवरणों के लिए देखें, *पचायती राज अपडेट,* इस्टीट्यूट ऑफ साशल साइंसेज, नयी दिल्ली, जुलाई, 1998। यह भी देखें एम. ए. ऊम्मन ओर महीपाल, स्थानीय क्षेत्र विकास योजना अशुभ सकेत, *इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 14, अंक 5, 29 जनवरी 1994, पृष्ठ 223-25

48 रमेश मी नायक (इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज) द्वारा राजस्थान के अलवर, कोटा और पाली जिलो मे किये गये क्षेत्र कार्य के आधार पर, 1996-2000

49 पचायते व्यवहार में क्या लाभ है इनसे शोषित वर्गो को?, पूर्व उद्धृत

50 एस वी शरण, *मध्य प्रदेश मे पचायती राज, प्रशिक्षण . एक मूल्याकन,* इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, पाडुलिपि रिपार्ट 11, 1998

51 *नौवी योजना के लिए जन अभियान : एक परिप्रेक्ष्य पत्र,* केरल राज्य योजना बोर्ड, तिरुवनतपुरम, 1996, पृष्ठ 1

52 जॉर्ज मैथ्यू, केरल की सफलता कथा, *हिंदू,* 24 मई 1999, यह भी देखे जन योजना केरल की कथा, *कुरुक्षेत्र,* ग्रामीण विकास मत्रालय, भारत सरकार, अगस्त 1999, पृष्ठ 15-17, 29

2

राज्य तंत्र का पुनर्गठन

एम.एन. राय का एक बीज-विचार था, सत्ता का विकेंद्रीकरण। अपनी मृत्यु के कुछ माह पहले लिखे एक लेख में उन्होंने सत्ता के विकेंद्रीकरण पर अपने विचार प्रकट किये। उन्होने कहा, 'लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया की समस्या अततः विकेंद्रीकरण करने की है।'[1] उन्होने आगे कहा, 'लोकतत्र का विकेंद्रीकरण सत्ता के केंद्रीकरण को रोकेगा और राज्य का काम स्वायत्त सामाजिक सस्थाओं के कार्यो के समन्वय का रह जायेगा।'[2]

राय के मुताबिक, उन्होने देखा है कि तमाम सामाजिक विषमताओं के बावजूद आम लोगों में अपने मसलों को हल करने की क्षमता होती है। 'यह सच है कि आम लोग अशिक्षित होते हैं। उनमें देश पर शासन करने की क्षमता नही होती। लेकिन सच यह भी है कि अगर उन पर छोड़ दिया जाये तो बेहद अज्ञानी किसान भी अपने मसलो को हमारी मौजूदा सरकार से बेहतर ढग से हल कर सकते हैं। आम लोग अपने बारे में सोचने या अपनी देखभाल करने की क्षमता नही रखते, यह धारणा उनके नाम पर सत्ता हथियाने और उनकी ताकत को कोस कर उनकी स्वतंत्रता को दबाने का बहाना है।'[3]

राय का मानना है कि एक संगठित लोकतत्र की बुनियादी इकाई जन समिति होनी चाहिए। 1949 में उन्होने लिखा कि देश के कुछ हिस्सो में गठित मौजूदा ग्रामीण पंचायतो को संगठित लोकतत्र की इकाइयो के रूप में विकसित किया जा सकता है।[4]

पचास के दशक में उन्होने पार्टी राजनीति और उससे भी अधिक एक पार्टी के शासन की सत्ता देखी और फिर सत्ता के केंद्रीकरण के खिलाफ कड़े शब्दो में लिखा। उन्होंने पार्टी-रहित लोकतत्र का समर्थन किया। राय के विचार में, जन समितियों को राजनीतिक पार्टियों से जुड़े बिना कार्य करना चाहिए।

भारतीय संविधान को संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर 1949 को अगीकृत किया गया। इस सविधान के मुताबिक भारत राज्यों का संघ है। सविधान का प्रारूप प्रस्तुत

करते हुए बी आर. आबेडकर ने कहा कि 'सघ' शब्द का इस्तमाल जान-बूझ कर किया गया है। प्रारूप तैयार करनेवाली समिति यह स्पष्ट करना चाहती थी कि 'भारत महासघ होने के बावजूद राज्यो द्वारा आपसी समझौते के कारण अस्तित्व में आया महासंघ नही है।' आबेडकर के मुताबिक, संघीय शासन (फेडरलिज्म) की दो मुख्य कमजोरियॉ है लचीलेपन का अभाव और कानूनवाद। भारतीय प्रशासनिक प्रणाली इस मामले मे अनोखी है कि इसकी नागरिकता तो एक ही है, मगर राज्य तत्र दुहरा हे। समय और परिस्थिति के मुताबिक यह एकात्मक अथवा संघीय बन जाता है। सामान्य समय में यह संरचनात्मक तथा कार्यकलाप के स्तर पर संघीय है एव आपातकाल में इसे एकात्मक राज्य तत्र मे बदला जा सकता है।

भारत का सविधान कोई पूर्ण दस्तावेज नहीं था और समय बदलने के साथ इसमे निरंतर परिवर्तन करने की जरूरत थी। आज तक ससद ने सविधान मे तिरानवे सशोधन पारित किये हैं। हालॉकि भारतीय सघ का अभिप्राय केद्र और राज्यो मे सत्ता का विभाजन है, लेकिन पिछले चार दशको का अनुभव सत्ता के केद्रीकरण का रहा है। संघ ने अनुच्छेद 249, 250, 252, 352 और 356 का इस्तेमाल केद्र के अधिकारो और शक्तियो के विस्तार के लिये किया, जो सघीय सिद्धांतों के विपरीत था।

सविधान सभा द्वारा पारित भारतीय सविधान में गंभीर दोष यह था कि वह स्थानीय सरकारो, पचायतो और नगरपालिकाओ को प्राथमिकता नहीं देता। इन्हें केवल नीति निदेशक सिद्धांतों (संविधान के चालीसवें अनुच्छेद) में स्थान मिला, जो न्यायसगत नही था। संघ की संरचना द्वि-स्तरीय थी : संघ सरकार और राज्य सरकार। स्थानीय निकायो की कोई भूमिका नहीं रखी गयी—न तो विकासात्मक और न ही शासन से संबधित। यह राज्यों पर छोड़ दिया गया कि 'वे ग्राम पंचायतो का गठन करे और उन्हें ऐसी सत्ता और अधिकार सौंपे जायें जो स्वशासन की इकाइयों के रूप मे कार्य करने के लिये आवश्यक हों।'[5]

भारत के संविधान को अपनाने के बाद देश के स्थानीय निकायो को वैधानिक निकाय बनने मे तैतालीस वर्ष लग गये। 22 दिसंबर 1992 को संसद ने 73वॉं संशोधन विधेयक पारित किया और कई अन्य औपचारिकताओं के बाद 24 अप्रैल 1993 को सविधान के भाग नौ में जोड़ा गया। इस संशोधन विधेयक की प्रस्तावना मे कहा गया, 'इसका उद्देश्य संविधान में पंचायती राज संस्थाओं को कतिपय बुनियादी और आवश्यक विशेषताओं को स्थापित करना है ताकि उन्हे स्थिरता, निरंतरता और शक्ति मिल सके।'[6] इसी के साथ-साथ शहरी स्थानीय निकायो को मान्यता देने के लिये 74वॉ संविधान सशोधन भी पारित किया गया। इन सवैधानिक संशोधनों की एक पृष्ठभूमि है। दरअसल, अनेक वर्षो से राजनैतिक और आर्थिक शक्तियों के विकेंद्रीकरण की मॉग बढ़ रही थी। 1980 दशक के मध्य तक यह स्पष्ट हो गया था कि सत्ता के केंद्रीकरण से भारत का राजनीतिक तंत्र बिखर सकता है। इसी दौरान,

पश्चिम बगाल, कनाटक और आध्र प्रदेश मे राजनीतिक सस्थाओ के रूप मे पचायता की सफलता के चलते और 'लोगो को सत्ता' के नारे के साथ सत्ता के विकेद्रीकरण की आम माँग ने भी सविधान संशोधन की गति को बढ़ाने का काम किया। कर्नाटक के तत्कालीन पंचायती राज मंत्री अब्दुल नजीर साब ने 1980 मे कर्नाटक के पचायत अधिनियम को गभीरता से लागू करने के बाद स्वीकार किया कि 'राज्य शासन के ढाँचे में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की हमारी मशा भले ही प्रशसनीय हो, लेकिन संविधान संशोधन के बिना 'चौखंबा राज' के हमारे प्रयास वैसे परिणाम नहीं दे सकते जैसा हम चाहते हैं। मेरे विचार से यह एक मुख्य प्रश्न है जिस पर इस देश के प्रबुद्ध व्यक्तियों को विचार करना चाहिए। उन्हें संविधान संशोधन की आवश्यकता पर लोगों मे बहस छेड़नी चाहिए।'[7] नजीर साब ने यह वक्तव्य अक्तूबर 1985 में दिल्ली में दिया था।

चार वर्षो के भीतर 15 मई 1989 को पचायतो को संवैधानिक स्तर प्रदान करने के लिए संसद में चौसठवाँ सवैधानिक संशोधन पेश किया गया। इसके मूल मे सत्ता के केद्रित होने के कारण देश में उत्पन्न अशासनीय स्थितियों और निचले स्तर पर व्यक्त हो रही निराशा को माना गया, क्योंकि लोगों के हित में कुछ नही हो रहा था।

संविधान संशोधन का महत्व

संविधान सशोधन के पहले तक भारतीय लोकतंत्र संसदीय लोकतंत्र तक सीमित था, जिसके तहत पाँच वर्षो में एक बार संसद और राज्य विधान सभाओ के लिये पॉच हजार सदस्यों का चुनाव किया जाता था। यह लोकतंत्र विशिष्ट वर्ग के लिए था, क्योंकि चुनावो मे बाहु बल, धन बल और जाति बल की निर्णायक भूमिका थी। यह लोकतंत्र उपयुक्त सहयोगात्मक संरचना के अभाव मे गहरी जड़ें नहीं जमा पाया।

पिछले पचास सालों में संसद और विधान सभाओं के चुनाव जमीनी (ग्रासरूट) स्तर पर लोकतान्त्रिक प्रक्रिया बहाल नहीं कर पाये। सविधान के 73वे और 74वे संशोधन के बाद से हर पाँच साल के बाद पंचायतों के तीन स्तरों और नगरपालिकाओ के लिए चुनाव हो रहे हैं। 20 लाख से अधिक जनसख्यावाले राज्यों में तीन-स्तरीय पंचायतों का विधान है - निचले स्तर पर ग्रामीण पंचायत, मध्य स्तर पर ब्लॉक पचायत और सबसे ऊपर जिला पंचायत। इसी तरह, शहरी क्षेत्रों मे शहरों और कस्बों की जनसंख्या के आधार पर भी तीन प्रकार की नगरपालिकाएँ हैं—नगर निगम, नगर परिषद और नगर पंचायत। इस प्रकार देश में 500 से अधिक जिला पंचायते, 5100 के आसपास ब्लॉक या तालुक पंचायतें और 2,25,000 के आसपास ग्राम पंचायते हैं। देश भर में लगभग 90 नगर निगम, 1500 नगर परिषदे और 1800 नगर पचायते हैं। ग्रामीण और शहरी निकायों के लिए लगभग तीस लाख प्रतिनिधियों का चुनाव

होना है। इस प्रक्रिया ने भारतीय लोकतंत्र के आधार को मजबूत करने का काम किया है।

स्थानीय निकायो को सवैधानिक सत्ता मिलने के परिणामस्वरूप देश के संघीय राज्य तंत्र मे जो बदलाव आया है, उसके दूरगामी परिणाम होंगे। ये क्रांतिकारी भी हो सकते हैं। 73वे और 74वे संशोधन के पारित होने से पंचायतें और नगरपालिकाएँ वस्तुत: देश मे शासन का तीसरा स्तर हो गयी हैं।

पचायतो को 11वीं अनुसूची में 29 विषय और नगरपालिकाओं को 12वी अनुसूची में 18 विषय हस्तांतरित करने का सुझाव दिया गया है। राज्य सरकारों द्वारा कमोबेश इन सभी विषयों के हस्तांतरण के बाद यह कहा जा सकता है कि जिला और उससे निचले स्तरो पर स्थानीय निकाय भारतीय संघ को एक नया अर्थ देते हुए भारतीय संघीय स्वरूप मे तीसरे स्तर का शासन बन जायेंगे। फिलहाल यह प्रक्रिया चल ही रही है, क्योकि स्थानीय निकायो के पास कानून बनाने के अधिकार नही है। न ही वे कानून-व्यवस्था यानी पुलिस विभाग के और न्यायिक अधिकार रखते है। कुछ ही राज्यो ने अपने अनुपालन अधिनियमो में न्याय पंचायतो को स्थान दिया है।

यहाँ इस तथ्य का विशेष उल्लेख जरूरी है कि संविधान के अनुच्छेद 243जी और 243पी(ई) पचायतों और नगरपालिकाओं को 'स्वशासन की संस्थाओ' के रूप मे परिभाषित करते हैं, लेकिन कहीं भी 'स्वशासन की संस्थाओं' के कार्य क्षेत्र को परिभाषित नहीं किया गया है। यहाँ यह याद दिलाना जरूरी है कि केवल तीन राज्यो—पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और बिहार—के अनुपालन कानूनो मे साफ-साफ लिखा गया है कि उनके पचायती कानूनो का लक्ष्य पंचायतों को ऐसे अधिकारों और कार्यो से सपन्न बनाना है जिससे वे स्वशासन की जीवत संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य हो सकें। दूसरी ओर हरियाणा है। हरियाणा का पंचायत अधिनियम साफ तौर पर कहता है कि पचायत प्रणाली का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो के प्रशासन को बेहतर ढग से चलाना है। यानी, यही बात दूसरे ढंग से कही गयी है कि राज्य अभी भी जिला स्तर और उससे निचले स्तर पर प्रशासन के लिए 'कलक्टर राज' और 'एसएचओ राज' मे विश्वास करता है।

'स्वशासन की सस्थाएँ' पद की व्याख्या दो प्रकार से की गयी है। पहली व्याख्या यह है कि जब संविधान कहता है कि पचायत स्वशासन की संस्था है, तो इसका अनिवार्य अभिप्राय यह है कि वह स्वायत्त हो और उसे अपने क्षेत्राधिकारवाले विशेष इलाके मे शासन चलाने का अधिकार हो। इसलिए संविधान के प्रावधानों के मुताबिक लोगो के निर्वाचित प्रतिनिधियो का प्रशासन इसका आवश्यक तत्व है। संविधान का 73वाँ सशोधन पंचायतों को अलग ही पहचान देता है, इसलिए यह वस्तुत: शासन का तीसरा स्तर है। दूसरी व्याख्या कहती है कि यह नयी व्यवस्था 'संघीय प्रशासन'

को मजबूत करती है, इससे अधिक कुछ नहीं। उदाहरण के लिए प्रोफेसर एस. गुहन का तर्क है कि 73वें सशोधन के प्रावधान 'प्रशासनिक संघ' को ही मजबूत बनाते है, ताकि राज्यों मे स्थानीय निकायों को प्रशासकीय और वित्तीय अधिकार उपलब्ध हो सकें। गुहन कहते हैं, 'स्थानीय निकायो के प्रशासकीय अधिकार और दायित्व तथा इन अधिकारो और दायित्वों को पूरा करने के लिए वित्तीय ससाधन राज्य द्वारा पारित होनेवाले कानून से प्राप्त होते है।'[8]

स्थानीय निकायो के पास विधान निर्माण के या न्यायिक अधिकार नही है, इसलिए गुहन के विचार से, केवल सवैधानिक दर्जा दे कर या नियमित चुनाव कराने से उन्हे शासन तंत्र के तीसरे स्तर का दर्जा नहीं मिल जाता। कहा जा सकता है कि हरियाणा अनुपालक अधिनियम इसी सोच पर चलता है।

प्रोफेसर गुहन का तर्क तकनीकी रूप से सही है। फिर भी, जिन देशो मे स्थानीय निकाय मौजूद है, उन्हें कानूनी अधिकार प्रदान किये गये है, जैसे बजट, उपनियम बनाना, विनियमन करना। उन्हें अपने कामो और दायित्वों से जुडे नियंत्रण के अधिकार भी उपलब्ध है। इसी तरह, पुलिस से जुडे और न्यायिक अधिकार भी पचायतों को दिये जा सकते है।

निर्मल मुखर्जी लिखते हैं : 'स्थानीय स्वशासन के बारे में सोचने-विचारनेवाले ज्यादातर लोगों ने जिन दो लक्ष्यों पर विचार नही किया है, वे हैं न्यायिक प्रणाली का विकेंद्रीकरण और इसी के समानातर पुलिस प्रणाली का विकेंद्रीकरण। स्पष्टत इन दोनों मे अंतरसबंध है। जिन सवैधानिक संशोधनो ने नयी पंचायतो और नगरपालिकाओ को जन्म दिया है, वे इस विषय पर पूरी तरह खामोश हैं। ...सभवत यह जान-बूझ कर नहीं हुआ है। कारण कोई भी हो, विकेंद्रीकृत न्याय प्रणाली पर जोरदार पुनर्विचार की जरूरत है, क्योंकि स्थानीय 'न्याय व्यवस्था' के बिना स्थानीय शासन पूरी तरह अधूरा रहेगा।'[9]

प्रकट है कि विकेंद्रीकृत न्याय व्यवस्था (न्याय पचायत) विकेंद्रीकृत पुलिस व्यवस्था के बिना सभव नही है। इसलिए वह समय अधिक दूर नही जब शहर और कस्बा पुलिस के साथ-साथ गॉव, ब्लॉक और जिला पुलिस भी होगी।

भारत में स्थानीय निकायो को यथार्थ के स्तर पर प्रशासन का तीसरा स्तर बनाने के प्रयास निरतर होते रहे, लेकिन उनकी आधिकारिता में कोई वृद्धि नहीं हुई। 73वें और 74वें संविधान सशोधन की घटना को इस दिशा में मील का पत्थर माना जा सकता है, क्योंकि इनसे देश में जिला सरकार बनाने का रास्ता खुला है। इन संशोधनों के माध्यम से दरअसल जिला स्तर की योजनाओं का दायित्व भी स्थानीय निकायों को दिया गया है और यह सही दिशा की ओर एक प्रमुख कदम है। जिले के मतदाताओ द्वारा निर्वाचित जिला पंचायतो के सदस्य और अध्यक्ष नये प्रशासनिक तंत्र की धुरी हैं। अभी तक जिलाधिकारी पर ही सब कुछ निर्भर था। लेकिन नयी

व्यवस्था मे 'कलक्टर राज' पचायती राज में परिवर्तित हो जायेगा।

आखिरकार, अर्धशती के बाद राजनीतिक प्रणाली को पलटने के रास्ते खुले है। आज तक 'ऊपरवाले' ही प्रमुख थे, सब कुछ ऊपर से नीचे आता था। हर चीज 'ऊपर' से व्यवस्था को देखनेवालो की सद्भावना पर निर्भर थी। निचले स्तर के लोगों की आवाज नहीं थी। लोगों द्वारा निर्वाचित कुछ हजार प्रतिनिधियो द्वारा देश को चलाने के स्थान पर अब हमारे समक्ष विभिन्न स्तरों पर जन मुद्दो को आवाज देनेवाल कई लाख प्रतिनिधि हैं। इस तरह नये संशोधन और स्थानीय निकाय राजनीतिक प्रबधन के क्षेत्र मे एक लंबी छलॉग है।

संसदीय लोकतत्र की संरचना को पहली बार नीचे से ऊपर देखा गया। अब अधिक समय तक निचले स्तर के लोगो यानी गॉव और नगर वार्ड की उपेक्षा नही की जा सकेगी। विधायक इस तीसरे स्तर से डर महसूस कर रहे है। राज्य स्तर के राजनेता राजनीति की इस नयी घटना से असुरक्षा का अनुभव करते है। मुख्य मत्रियों और राज्य स्तर की सत्तारूढ पार्टियो को डर है कि सभवतः लोग अपने अधिकारो की मॉग करेगे और उन्हें दंड देंगे, इसलिए वे पचायत चुनावों को बार-बार स्थगित करते रहे हैं। संविधान संशोधनो से स्थानीय शासन प्रणाली को मिलनेवाले महत्व को सन 1962 में 'अनुग्रह नारायण सिह बनाम उत्तर प्रदेश सरकार' के मामले मे इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले मे व्यक्त किया था।

याचिकाकर्ता की पीड़ा यह थी कि राज्य मे लबे समय से नगरपालिकाओं क चुनाव नहीं हुए थे और सरकार का मत था कि चुनाव का समय तय करने का अधिकार उसका है—उसे चुनाव कराने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। अपने विस्तृत और प्रबुद्ध फैसले में अदालत ने आदेश दिया कि स्थानीय स्वशासन भारतीय सविधान की एक आधारभूत विशेषता है। फैसले मे कहा गया कि स्थानीय स्वशासन के बिना शेष लोकतांत्रिक ढॉचा बिखर जायेगा। विद्वान जज ने लिखा : 'स्थानीय स्वशासन का अर्थ है : गॉव हो या शहरी क्षेत्र, लोगो की भागीदारी के साथ निरतर उन्नति करते रहना। लोकतंत्र के जमीनी स्तर पर लोगों की भागीदारी के साथ स्थानीय स्वशासन निरंतर बना रहे, इसे भुला न दे कर इसकी रक्षा करनी चाहिए और इसे पूर्णता तक ले जाना चाहिए। स्थानीय स्वशासन वह तोरण है जिस पर इस राष्ट्र का ससदीय लोकतत्र टिका है। राज्य विधायिका और संसद का गुवज इसी पर टिका है। तोरणों के बिना यह संरचना बिखर जायेगी।'[10] चूँकि राष्ट्र ने तीन दशको से इस तथ्य को नहीं स्वीकारा, यह संरचना काफी हद तक ध्वस्त हो चुकी है। राजनीतिक आपातकाल, लोकतान्त्रिक अधिकारों का स्थगन और आपातकाल के बाद भी उनका उल्लघन, आतंकवाद और हिंसा की शुरुआत, राजनीतिक हत्याऍ—ये सब बताते है कि यह संरचना टूट और बिखर रही थी। यह महत्वपूर्ण है कि हम भारत के लोगो ने इन तोरणों को, जिस पर संसदीय व्यवस्था का गुबज टिका है, संवैधानिक मंजूरी

दे दी है। इससे सघीय स्वरूप को नीचे से देखने की सभावना पैदा हुई है।

भारत के संघीय स्वरूप पर शासन के तीसरे स्तर के रूप में पंचायती राज तथा नगरपालिकाओं का प्रभाव
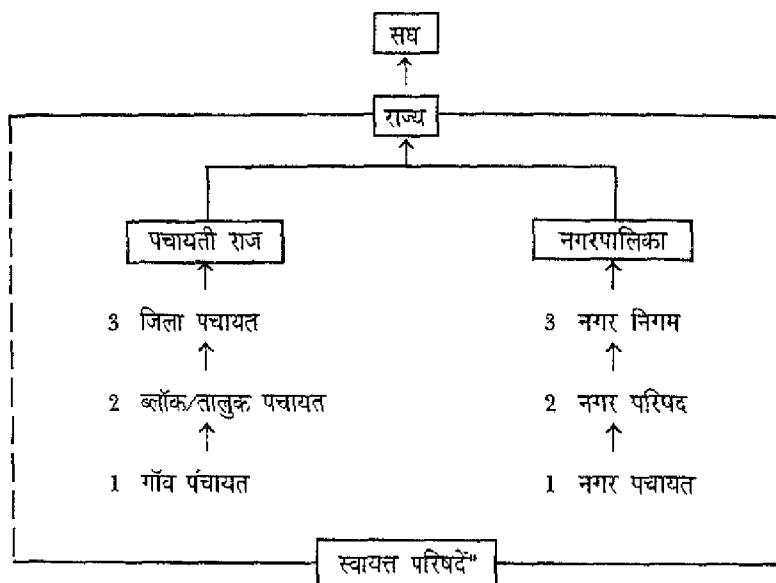
* स्वायत्त परिषदे कुछ राज्यों, जैसे पश्चिम बगाल, जम्मू और कश्मीर तथा असम, मे कुछ विशेष क्षेत्रों के विकास और प्रबध के लिये बनायी गयी हैं, लेकिन वहाँ वैधानिक स्थानीय निकाय भी है।

स्थानीय निकायों के चुनाव

भारत में पचायतो का चुनाव लोकतंत्र की कार्यप्रणाली का उत्कृष्ट बैरोमीटर रहा है। मतदान प्रतिशत ऊँचा रहता है। हाल ही मे उड़ीसा मे हुए पंचायत चुनावो में कुछ पचायतों मे मतदान 90 प्रतिशत तक था।

पचायत चुनाव प्रक्रिया के बारे मे और कर्नाटक मे 1995 और तमिलनाडु मे 1996 में चुनावी मुद्दों पर किये गये अध्ययन निचले स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया के कुछ दिलचस्प तथ्य उजागर करते हैं।[11] सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पिछले पचास वर्षो में जाति और धर्म जैसे मुद्दे चुनावो के परिणाम निर्धारित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे, लेकिन कुछ राज्यो के पंचायत चुनावों मे उनका महत्व कम हुआ है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु मे 1996 के पचायत चुनावो में लोगों मे बढती लोकतांत्रिक चेतना स्पष्ट दिखाई दी। एक सर्वेक्षण में 81 प्रतिशत उत्तरदाताओ ने बताया कि धार्मिक या जातीय नेताओं ने उन्हें किसी भी प्रकार से अपने वोट के

अधिकार का इस्तेमाल करने का निर्देश नहीं दिया।

इस सीधे और स्पष्ट सवाल पर कि क्या किसी विशेष उम्मीदवार को वोट देने मे अपनी जाति से लगाव उनके लिए महत्वपूर्ण था, 73.6 प्रतिशत लोगों ने कहा कि उनके लिए उम्मीदवार की जाति महत्व की बात नहीं थी। गाँवो में आम मतदाताओ के लिए महत्वपूर्ण यह था कि उम्मीदवार भ्रष्ट तो नहीं है और विकास के काम करने मे उसने कितनी सक्रियता दिखायी है। कर्नाटक में 63.2 प्रतिशत उत्तरदाताओ के लिए उम्मीदवार की जाति कोई मुद्दा नहीं थी, 44.9 प्रतिशत का मानना था कि उन्होने अमुक उम्मीदवार को इसलिए वोट दिया क्योकि वह अच्छा पुरुष या अच्छी महिला थी।

ये चुनाव अध्ययन बताते है कि स्थानीय निकायों के चुनावो मे जातिवाद और क्षेत्रीयता की सघनता कम हुई है। इसका मुख्य कारण यह है कि आम लोग जाति या पार्टी राजनीति के मुकाबले गाँवों या ब्लॉकों में कल्याणकारी और विकासात्मक कार्यों को प्राथमिकता देते है। मई 1993 मे पश्चिम बंगाल के पचायत चुनावो ने भी जमीनी स्तर पर इस सकारात्मक पहलू को उजागर किया।

पंचायत चुनावों में राजनीतिक दल

यह सर्वविदित है कि एम.एन राय राजनीतिक पार्टियों की राजनीति से दूर हट गये थे। सक्रिय राजनीति और राजनीतिक पार्टियों में अपने लंबे अनुभव के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'राजनीतिक पार्टियों का गठन लोकतत्र को चलाने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि सत्ता पर कब्जा जमाने के लिए किया जाता है। वे इस सिद्धांत पर काम करते हैं कि लक्ष्य ही साधनो को न्यायोचित ठहराता है और साधनों से प्रायः फैलता है तथा लोकतंत्र भ्रष्ट और अततः नष्ट होता है।'[12]

गांधीवादियो, सर्वोदयवादियों, जयप्रकाश नारायण—इन सभी ने पचायतों में पार्टी-रहित चुनावो की वकालत की है। वास्तव में पंचायती राज चुनावों पर संतानम समिति ने 1964 में कहा था कि समिति के समक्ष सबसे विवादास्पद मुद्दा यह था कि क्या राजनीतिक पार्टियों को पचायत चुनावो मे हिस्सा लेना चाहिए और अगर हॉ तो किस हद तक?

फिर भी, मौजूदा भारतीय राजनीतिक और सामाजिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में स्थानीय शासन के चुनावो में राजनीतिक पार्टियों की भागीदारी जरूरी हो गयी है—लेकिन सामाजिक परिवर्तन के किसी सकारात्मक पहलू के बिना नही। मध्य प्रदेश की पंचायतों में अनुसूचित जाति की महिला सरपचो (प्रधानों), सदस्यों और अन्य निर्वाचित अधिकारियों के साथ हुए उत्पीडन और दुर्व्यवहार के कुछ मामले इसीलिए प्रकाश में आये क्योंकि वहाँ दूसरी तरफ राजनीतिक पार्टियॉ थी जिन्होने पीडितो का साथ दिया। क्षेत्रीय सर्वेक्षण बताते हैं कि पश्चिम बंगाल जैसे उच्च राजनीतिक

सचेतनतावाले राज्य मे भी चुनाव खत्म होने के वाद सभी सदस्य गॉव के विकास के लिए सहयोग करते है। आखिरकार यदि हम विधान सभाओ और संसद में बहु-दलीय चुनाव प्रक्रिया को बनाये रखते है, तो निचले स्तर पर पार्टी-रहित चुनाव अर्थहीन हो जायेंगे। इससे जमींदारों, जाति और धर्म की सत्ता ही आगे बढेगी।

ग्रामीण सौहार्द के मामले को ले कर इतना ज्यादा भावुक होने की जरूरत नही है। अब्दुल नजीर साब अक्सर कहते थे, 'वैसे भी गॉवों मे रामन्ना-भीमन्नावाली राजनीति है। यह वास्तविकता है। क्या यह बेहतर नही कि वे जाति, धर्म इत्यादि की अपेक्षा लोकतान्त्रिक पार्टी लाइन पर एकजुट हों?'[13]

स्थानीय शासन में महिलाएँ और कमजोर वर्ग

नयी पचायतें और नगरपालिकाएँ पिछड़े वर्गो, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियो को, जो हमारी जनसख्या का 25 प्रतिशत है, स्थानीय शासन मे सक्रिय भागीदारी करने और इन सस्थाओ का सदस्य या अध्यक्ष निर्वाचित होने के अवसर प्रदान करती हैं। उनकी सदस्यता क्षेत्र की जनसख्या के आधार पर निर्धारित होती है। सविधान की पॉचवीं और छठी अनुसूची मे आदिवासी क्षेत्रों को विशेष दर्जा और प्राधिकार मिला है। वास्तव मे, आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में गैर-आदिवासी उनके कार्यो को नियंत्रित करते है और आदिवासी परपराओं को नष्ट कर रहे है। आदिवासियों की जमीन गैर-आदिवासियो द्वारा जब्त कर ली जाती थी।

जुलाई 1994 में केंद्र सरकार द्वारा 73वें सविधान सशोधन का विस्तार अनुसूचित क्षेत्रो तक करने के हेतु प्रस्तावो पर सुझाव देने के लिए संसद सदस्य दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता मे एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया गया। इस समिति के सुझाव थे ·

(1) सभी आदिवासी गाँवों में ग्राम सभा गठित की जानी चाहिए, क्योकि आदिवासी क्षेत्रो मे स्व-शासन की बुनियादी इकाई समुदाय होना चाहिए;

(2) निर्वाचित इकाइयो के सभी स्तरों पर अधिकतर सीटें अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए आरक्षित रखी जायें, और

(3) आदिवासी ही सरपंच के रूप में निर्वाचित होना चाहिए।

ससद के दोनो सदनों ने दिसंबर 1996 में भूरिया समिति के सुझावों के अनुरूप तैयार किये गये पचायत (अनुसूचित क्षेत्रो तक विस्तार) विधेयक, 1996 को अपना लिया। यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 244 के उपवाक्य (1) में उल्लिखित अनुसूचित क्षेत्रों, जिनमें आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान शामिल हैं, को लाभ पहुँचायेगा।

भारत में पचायतो और नगरपालिकाओ के नये चरण की एक विशेषता यह है कि यह स्थानीय निकायो मे महिलाओ का एक-तिहाई प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता

है। इसके अलावा यह उनके लिए ग्रामीण और शहरी निकायो के सभी स्तरो पर एक-तिहाई अध्यक्ष पद भी सुनिश्चित करता है। इससे पचायतो और नगरपालिकाओ मे दस लाख महिलाओ के निर्वाचित होने की संभावना बनी है।

अभी तक* हुए पचायत चुनावो के ऑकड़ों का विश्लेषण बताता है कि देश मे 7,16,234 महिलाएँ निर्वाचित हो चुकी हैं। इसमें मणिपुर की सख्या (विवरण उपलब्ध न होने के कारण) शामिल नही है. बिहार, जम्मू और कश्मीर में चुनाव होना अभी बाकी है। (*जब यह लेख लिखा गया था, तब तक इन राज्यों मे पचायत चुनाव नही हुए थे*।) जब हम नगरपालिकाओं के तीनो स्तरों पर महिला सदस्यो को शामिल करेंगे, तो यह ऑकड़ा दस लाख तक पहुँच सकता है। यह कोई साधारण उपलब्धि नही है। यह लक्ष्य करने की बात है कि कई राज्यो में 33.3 प्रतिशत की अनिवार्य सख्या से ज्यादा महिलाएँ पंचायतो मे निर्वाचित हुई। ताजातर पंचायत चुनावो से साबित होता है कि महिलाओ ने चुनाव मे भाग लेने के अवसर का पूरा-पूरा उपयोग किया। पश्चिम बागल मे ग्राम पचायत और पंचायत समिति के स्तर पर महिलाओ के लिए आरक्षित प्रत्येक सीट के लिए औसतन तीन उम्मीदवारो ने चुनाव लडा, जिला पंचायत के स्तर पर यह औसत चार का था। तीनो स्तरों की पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षित 24,855 सीटों में से सिर्फ 561 सीटों पर, 2 प्रतिशत से कुछ ही ज्यादा, सर्वसम्मति से चुनाव हो सका।[14] पिछले दो-तीन वर्षो के अखबार इन खबरो से भरे हुए हैं कि महिला पंचायत सदस्य और सरपंच किस प्रकार अपने अधिकारों की दावेदारी करती हैं और इससे स्थितियो मे सुधार आता है। आज यदि 25 प्रतिशत महिलाएँ भी सफलतापूर्वक काम कर रही है, तो यह भविष्य की उज्ज्वल संभावनाओं की ओर सकेत करता है।

शासन के तीसरे स्तर की समस्याएँ

पचायती राज प्रणाली की कल्पना जिस बुनियादी सिद्धात पर की गयी है, उसके मुताबिक निचले स्तर पर जो भी अच्छा काम किया जा सकता है वह उसी स्तर पर किया जाना चाहिए, उससे ऊपरी स्तर पर नहीं। जो काम निचले स्तर पर सभव नहीं है, सिर्फ वही ऊँचे स्तर पर होना चाहिए।

लेकिन यह कहना जरूरी है कि नयी पंचायतो और नगरपालिकाओं के पहले पॉच या दस वर्षो की अवधि मे गलतियॉ होना सभव और स्वाभाविक है। यह गर्भावधि यानी शुरुआती दौर है। स्वतत्रता के पॉच दशकों से जो मनोवृत्ति हावी रही है, उसे बदलना आसान नहीं है। हम इस गर्भावधि को छोटा कैसे कर सकते हैं, सभी चितको का मुख्य लक्ष्य यही होना चाहिए।

---

* मार्च 1997 तक

ये कुछ ऐसे मुद्दे है जो पचायतो को 'स्वशासन संस्थान' बनने मे बाधा डालते है।

1. 1993 के बाद राज्य पचायत और नगर निगम अधिनियमो मे पाया गया कि राज्यों ने 73वे और 74वे सशोधनों को उनकी आत्मा के बजाय उनके शब्दो मे स्वीकार किया है। बहुत-से राज्य अधिनियमो में सिविल कर्मचारियों को निर्वाचित निकाय से बढ कर अप्रत्यक्ष अधिकार दिये गये हैं। पंचायतों को कार्यो का स्थानातरण बहुत धीमा है। उचित अधिकारों की प्राप्ति नीचे से यानी ग्राम सभा, ग्राम पंचायत और जिला पचायतों के अलावा जागरूक नागरिक सस्थाओ की जोरदार माँग पर ही होगी।

2. दूसरी समस्या यह है कि हालाँकि राज्यों ने अनुपालन अधिनियम लागू कर दिये है, बहुत-से राज्यों ने दिन-प्रतिदिन की कार्यप्रणाली के लिए नियम और उपनियम नही बनाये है। इसके साथ ही, बहुत-से राज्यों में पंचायतों के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओ की भी कमी है।

3. शासन के निचले स्तरों की महत्ता, उनकी स्वायत्तता, अधिकार और कार्यक्षेत्र को समझने सबंधी राज्य स्तर के राजनेता की अनिच्छा भी पंचायतों को अधिकार प्रदान करने में बाधा पैदा कर रही है। मंत्रियों, विधायकों और वरिष्ठ राजनेताओ को चिता है कि पंचायतों और नगरपालिकाओं के ताकतवर होने से जिन अधिकारो का मजा वे लूट रहे हैं, वे कम हो जायेगे। राज्य स्तरीय नेता नही चाहते कि निचले स्तरो से ऐसा नेतृत्व उभरे जो कुछ समय के पश्चात उनके लिए चुनौती बन जाये। सक्रिय स्थानीय निकायो को सदैव ही नेतृत्व की पौधशाला माना जाता रहा है। पचायतो की कार्यप्रणाली में विधायक रोड़ा अटकाते हैं, ताकि वे परिपूर्ण स्थानीय सरकारे न बन सकें। उड़ीसा में 1995 की शुरुआत में जब नयी सरकार सत्ता मे आयी, तो उसने निर्वाचित पंचायतों और नगरपालिकाओ को भंग करने का फैसला किया। इस कार्रवाई का वास्तविक कारण यह था कि विधायक ग्रामीण विकास योजनाओ के तहत केंद्र सरकार से पचायतो को मिलनेवाली भारी धनराशि को पूरी तरह अपने काबू में करने को बेताब थे। यदि पचायतें बडी संख्या मे निर्वाचित प्रतिनिधियो के साथ और विपक्ष की आलोचनात्मक दृष्टि के तहत उचित रूप से कार्य करे तो लोग पंचायती कार्यक्रमो मे नियमित भागीदारी से अपने अधिकारो के प्रति जागरूक हो जायेगे। इससे विधायको की अनुचित ताकत में भी कमी आयेगी।

4 सरकारी अधिकारी और सरकारी कर्मचारी दूरवर्ती नियंत्रण पद्धति, जिसका केंद्र राज्य की राजधानी में होता है, के तहत काम करना पंसद करते हैं। वे पंचायती राज के तहत नजदीक से नियंत्रित या पर्यवेक्षित होना नहीं चाहते। इसलिए निर्वाचित पचायत सदस्यों के प्रति उनका असहयोगात्मक रवैया एक मुख्य मुद्दा है। प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको के एक सगठन ने प्रस्ताव पारित कर स्पष्ट रूप से कहा था

कि वे पंचायतों के तहत काम करना नही चाहते। पचायती राज के लंबे इतिहासवाले राज्य पश्चिम बंगाल में भी जब कर्मचारियों को पंचायतो के अधीन किया जाता है, तो अदालत की ओर से ऐसी कार्यवाही के खिलाफ स्थगन आदेश आ जाता है।

पश्चिम बंगाल के पचायत मंत्री ने हाल ही में बताया कि विभागीय आदेशों के खिलाफ ऐसे सैकडो स्थगन आदेश हैं। इससे जुडा मुद्दा यह भी है कि जिला स्तर और उससे नीचे के स्तरो पर कार्यरत अधिकारी निर्वाचित पंचायत सदस्यों, जैसे जिला पंचायत अध्यक्ष, ब्लॉक समिति अध्यक्ष या ग्राम पचायत अध्यक्ष, से आदेश लेना नहीं चाहते। स्पष्टत. स्थानीय सरकारो को मजबूत बनाने के लिए लोकतत्र की नयी संस्कृति की जरूरत है।

5. देश के बहुत-से भागों में राजनीतिक जागरूकता की कमी नये पंचायती राज को पीछे खीचने का दूसरा बड़ा कारण है। बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उडीसा राज्यो में, जिनकी जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 37 करोड़ थी, पंचायती राज के कार्य निष्पादन की दर कम है। इसका मुख्य कारण राजनीतिक जागरूकता का निम्न स्तर तथा सामंती ताकतों और सामंती मूल्यों का प्रचलन है। 73वें सविधान संशोधन के बाद मध्य प्रदेश पचायत चुनाव करानेवाला पहला राज्य था। इस चुनाव से निर्वाचित स्थानीय निकाय अस्तित्व मे आये। लेकिन चुनाव के बाद ही समाचारपत्रों में रिपोर्टे आने लगीं कि पंचायतों की कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। राज्य के विभिन्न भागों से विभिन्न घटनाएँ सुनने को मिलीं। एक महिला प्रधान को नंगा किया गया, एक निम्न जाति के उपप्रधान को प्रताडित किया गया, एक अनुसूचित जाति के पचायत सदस्य को पीटा गया। इन घटनाओं के एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ने दर्शाया कि पचायत उस समाज का, गॉव जिसका एक हिस्सा है, एक लघु संस्करण है। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से 'स्वशासन की संस्थाओ' से जिन आदर्शो की अपेक्षा की गयी थी, उन्हें मौजूदा अन्यायपूर्ण समाज मे लागू नही किया जा सकता।[15] सभी घटनाओं का अध्ययन एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की ओर सकेत करता है जो व्यक्ति की गरिमा को नही मानती, जिसके सामाजिक मूल्य व्यक्ति या उसके पद को उचित प्रतिष्ठा प्रदान नही करते।

6. बहुत-से स्थानों पर पंचायते स्वयं शोषण का औजार बनी हुई हैं। भूमि सुधारों की अनुपस्थिति, साक्षरता का निम्न स्तर—विशेषतः महिलाओं मे, पितृसत्तात्मक व्यवस्था इत्यादि कारक गाँवों मे कमजोर वर्गो के खिलाफ काम करेंगे। इससे महिलाएँ गभीर रूप से प्रभावित होंगी। ताकत के पारंपरिक शोषक ढॉचे के प्रभावो से पीडित अधिकतर लोग पंचायतों के माध्यम से मिले नये अवसरों का असरदार उपयोग करने मे असमर्थ हैं। नयी पंचायतों के कारण चुनावों के दौरान और चुनावो के पश्चात गाँवों में उनकी कार्यप्रणाली को ले कर गभीर तनाव पैदा हुए हैं। उडीसा के पंचायत चुनाव में भारी हिंसा के कारण जानें भी गयीं।

7. केंद्र सरकार खुद भी ऐसी स्थितियॉ पैदा करती है जो पचायतो के विकास मे सहायक नही है। ऐसा कोई भी कार्यक्रम, कोई भी योजना या संस्था, जो पचायतो की कार्य प्रणाली के समानातर शुरू की जाती है, स्थानीय सरकारो की व्यवस्था को कम करके आँकेगी। इस उभरते स्थानीय शासन के खिलाफ एक अत्यत गभीर अपराध ससद सदस्यों को दो करोड़ रुपये (जिसे सांसद निर्वाचन क्षेत्र विकास योजना कोष कहा जाता है) की राशि प्रदान करना है। यह केवल सवैधानिक प्रावधानों में ही दखल नहीं है, बल्कि उस संघीय भावना में भी हस्तक्षेप है जिसके तहत नये स्थानीय निकाय कार्य करते हैं। भारत के पूर्व मुख्य न्यायधीश ई.एस. वेंकटरमय्या ने लिखा हे

> *किसी राज्य मे ऐसी परियोजनाओं पर, जो राज्य के क्षेत्राधिकार मे हो, सासद के निर्देशो पर खर्च किया जानेवाला निर्वाचन क्षेत्र विकास फंड, सवैधानिक प्रावधानो के खिलाफ है और संविधान की वैध सीमा रेखा मे परपीड़ा का आनंद लेनेवाला हस्तक्षेप करता है। यह सिर्फ संघीय योजना के साथ ही नहीं, बल्कि शक्ति पृथककरण के स्वस्थ सवैधानिक सिद्धांत के साथ छेड़छाड है।*[6]

भविष्य की आशा

सवैधानिक संशोधनो के बाद बहुत-सी घटनाऍ आशावादी स्थिति का सकेत करती है।

गैरसरकारी सगठन, सामुदायिक प्रयास और जन सगठन पंचायतों और नगरपालिकाओ को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। 73वें और 74वे सवैधानिक सशोधनों के बाद भारत मे बडी संख्या में गैरसरकारी सगठन पंचायतो की सफलता के लिए अनुकूल स्थितियॉ पैदा करने मे उत्प्रेरक की भूमिका निभा रहे है। जागरूकता निर्माण कार्यक्रम, निर्वाचित सदस्यो विशेषकर महिलाओ को प्रशिक्षण देने और चुनावों में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने, सामाजिक विकास के कार्यक्रम और नीतियॉ बनाने और उन्हें लागू करने में पंचायतों की सहायता कर रहे ये संगठन पंचायती राज का सामाजिक आधार बन रहे हैं। इस तरह भारत मे स्थानीय निकाय अपनी सवैधानिक वैधता तथा नागरिक समूहो और स्वयंसेवी सस्थाओं के साथ संवाद के जरिये राज्य और नागरिक समाज के बीच एक आदर्श मिलन बिंदु प्रस्तुत करते हैं।

नयी पंचायतो के अस्तित्व मे आने के बाद से ग्रामीणो की भागीदारी से नये कार्यक्रमो को अर्थपूर्ण तरीके से लिया जा रहा है। इसका उदाहरण केरल मे 'पार्टीसिपेटरी एड सस्टेनेबल पचायत लेवल डेवलपमेंट प्लानिंग' (पीएलडीपी) का नारा 'लोगों द्वारा लोगों की योजना' है। इस राज्य में नौवीं पंचवर्षीय योजना के लिए जन अभियान कार्यक्रम मील का पत्थर है। प्रस्तावित दस्तावेज में कहा गया है कि यह

पचायती निकायो को सशक्त करने की एक कोशिश हे। इसके लिए यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि पचायती राज/नगरपालिका निकाय वैज्ञानिक तरीके से एकीकृत योजनाओ को तैयार करे और उन्हें प्राथमिकता दे।[17]

इस कार्यक्रम ने पंचायती राज को एक जन आंदोलन की शक्ल दी है ओर समूचे राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया है। 1997-98 के बजट में वार्षिक योजना की 36 प्रतिशत राशि पचायती राज और नगरपालिका सस्थानों को वितरित की गयी। इसके दिशा-निर्देशों मे कहा गया था कि यह राशि ग्रामीण क्षेत्रों मे उत्पादक क्षेत्रो, समाज सेवा और बुनियादी सरचना पर खर्च की जानी चाहिए। पचायती राज के निराशाजनक इतिहासवाले राज्य भी पंचायतो को अधिकार और वित्त देने के लिए आगे आ रहे है। मध्य प्रदेश और तमिलनाडु इसके उदाहरण हैं। पचायत चुनावो के तत्काल बाद तमिलनाडु सरकार ने नव निर्वाचित पंचायतों को विकास कार्यक्रमो से सबधित सृजनात्मक दायित्व सौंपने के लिए राज्य योजना आयोग से विशेष दल गठित करने को कहा, जो राज्य सरकार को परामर्श दे कि कौन-से अधिकार और कार्य (जो अभी राज्य विभाग के पास है) स्थानीय निकायो को सौंपे जा सकते है। इस विशेष दल की सिफारिशों[18] के आधार पर तमिलनाडु के मुख्य मत्री एम करुणानिधि ने अपने बजट अभिभाषण में घोषणा कर दी कि अब स्थानीय निकाय ही निर्णय लेगे और अधिकारियों का दायित्व इन्हे लागू करना होगा। पचायत प्रधान को कार्यकारी अधिकारी घोषित करते हुए सरकार ने आदेश जारी कर दिये कि उसे अपने कार्यो को पूरा करने के लिए आवश्यक ससाधन और स्टाफ प्रदान किये जायेगे।

हम जानते हैं कि जीवत स्थानीय सरकारो को अस्तित्व मे लाने के लिए सवैधानिक सशोधन केवल एक आवश्यक शर्त है। हम यह भी जानते है कि पंचायते अपनी जडे जमा सके, इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति समान रूप से महत्वपूर्ण है। लेकिन जहाँ राजनीतिक इच्छाशक्ति बिल्कुल नदारद है, वहाँ भी पचायतों को मजबूत करने के लिए ऐसे कदम उठाये गये हैं जो इसके पहले असभव थे। उडीसा मे राज्य सरकार और विधायकों ने चुनावों को रोकने के लिए हर संभव कोशिश की। लेकिन सवैधानिक प्राधिकार यानी चुनाव आयोग, प्रेस और लोग चुनाव चाहते थे और न्याय प्रणाली ने उनका साथ दिया। सभी अड़चनों के बावजूद उडीसा मे पचायत चुनाव हुए और राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों मे जनता के करीब दस हजार प्रतिनिधि चुने गये। यह सब नये सवैधानिक संशोधन के कारण ही संभव हुआ है। बहुत-से देश बेहद रुचि के साथ हमारे इस स्थानीय सरकार के प्रयोग को देख रहे है। पाकिस्तान की नयी सरकार भारत की तरह स्थानीय निकायों में महिलाओ को आरक्षण देने की सोच रही है।

भ्रष्टाचार, जो राष्ट्रीय जीवन के लिए अभिशाप बन चुका है, मजबूत स्थानीय निकायों के माध्यम से काफी हद तक कम हो सकता है। वैसे, यह आशका भी

प्रकट की जा रही है कि राजनीतिक और आर्थिक विकेंद्रीकरण के साथ भ्रष्टाचार का भी विकेंद्रीकरण हो जायेगा। लेकिन हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि निचले स्तर पर लोगो के प्रति जन प्रतिनिधियों की जवाबदेही का स्तर ऊँचा है। बहुत-से मामलो मे ग्राम सभाएँ सामाजिक ऑडिट का केंद्र बिंदु बन रही है, जिससे निर्वाचित प्रतिनिधि भी सचेत होते जा रहे हैं।

नया पंचायती राज सूचना के प्रवाह की बेहतर संभावनाएँ खोल रहा है। सूचना ताकत है और प्रभावशाली वर्ग ने सामान्य लोगों को अँधेरे में रखा था। सार्वजनिक मामलो में पारदर्शिता नहीं थी और हर चीज मे आधिकारिक गोपनीयता बनी हुई थी। पंचायत इस केंद्रीकृत सूचना प्रणाली को तब तोड देगी, जब तीस लाख निर्वाचित सदस्य लोगों के जीवन को प्रभावित करनेवाली विभिन्न जानकारियाँ माँगेंगे। राजस्थान मे मजदूर किसान शक्ति सगठन द्वारा किया गया कार्य सभी राज्यों मे फैलेगा और पचायते इसके लिए सबसे प्रभावशाली हथियार होंगी।

उपलब्ध सामाजिक सूचको के मुताबिक उत्तर भारत के राज्य सामाजिक विकास के संदर्भ मे पिछड रहे है। इसका एक कारण इन राज्यों मे ऐसे सामाजिक सुधार आदोलनो की कमी है जो समय-समय पर देश के अन्य हिस्सों में होते रहे हैं। इक्कीसवी शताब्दी की दहलीज पर खडी नयी पंचायतों मे इन राज्यों के ग्रामीणो के जीवन मे नया अध्याय शुरू करने की क्षमता है।

जब लोकतन्त्र आम नागरिको के हाथ में हो, तो वह गरीबी को मिटाने का औजार बन सकता है। वह समान आर्थिक विकास सुनिश्चित कर सकता है। स्वस्थ वातावरण को स्थायित्व प्रदान कर सकता है और मानवाधिकारो के लिए काम कर सकता है। दुर्भाग्य से जमीनी स्तर पर लोगों को लोकतंत्र सौंपने के खिलाफ काम करनेवाली ताकते अब भी काफी शक्तिशाली है। मुझे लगता है कि यथास्थिति को बनाये रखने के लिए स्वार्थी तत्वों द्वारा जान-बूझ कर कोशिश की जा रही है, ताकि स्थानीय सरकारो की कार्यप्रणाली के बारे में संशय का वातावरण बनाया जा सके। लेकिन नया पंचायती राज अपना रास्ता बना रहा है। इस प्रक्रिया को उलटा नही जा सकता। राज्य तंत्र के पुनर्गठन का यह दूसरा अवसर है। पहला अवसर वह था, जब हमें गणतंत्रात्मक सविधान प्राप्त हुआ।

संदर्भ

1 एम एन रॉय, शक्ति का विकेंद्रीकरण, *द रेडिकल ह्यूमनिस्ट* का सपादकीय, 30 अगस्त 1953
2. उपर्युक्त
3 उपर्युक्त
4 एम एन रॉय, दलविहीन राजनीति, *द रेडिकल ह्यूमनिस्ट*, 25 सितबर, 1949
5 अनुच्छेद 40, *भारत का संविधान*

6 लक्ष्यो का विवरण, सविधान (72वॉ सशोधन) विधेयक, 1991

7 अब्दुल नजीर साब, चौखबा राज की ओर, जॉर्ज मेथ्यू द्वारा सपादित *पचायती राज इन कर्नाटका टुडे इट्स नेशनल डाइमेशस* मे सग्रहीत, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज तथा कसेप्ट पब्लिशिग कपनी, नयी दिल्ली, 1986, पृ 53

8 एस. गुहन, *फेडरलिज्म एंड द सेवेटी-थर्ड अमेडमट सम रिफ्लक्शस,* अप्रकाशित पाडुलिपि, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, नयी दिल्ली

9 निर्मल मुखर्जी, एस एन. माथुर द्वारा लिखित *न्याय पचायत्स एज इस्ट्रूमेट ऑफ जस्टिस* की अपनी भूमिका में, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज तथा कसेप्ट पब्लिशिग कपनी, नयी दिल्ली, 1997, पृ. 8

10 ए आई आर 1992, कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले मे उद्धृत, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज तथा नेशनल डेयरी डेवेलपमेट बोर्ड, नयी दिल्ली, 1992, पृ. 24-25

11 के शुभा, *कर्नाटका पचायत इलेक्शस 1995 प्रोसेस, इशूज एड मेबरशिप प्रोफाइल,* इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज तथा कसेप्ट पब्लिशिग कपनी, नयी दिल्ली, 1996, 'तमिलनाडु मे स्थानीय चुनाव की प्रक्रिया तथा चुनावी मुद्दे, 1996' पर प्रेस वक्तव्य, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, नयी दिल्ली, 20 नवबर 1996

12 एम एन. रॉय, लोकतत्र तथा दलगत राजनीति, *द रेडिकल ह्यूमनिस्ट,* 22 अप्रैल 1951

13 जॉर्ज मैथ्यू, कर्नाटक मे पचायत चुनाव, *हिंदुस्तान टाइम्स,* नयी दिल्ली, 9 फरवरी 1987

14 गिरीश कुमार तथा बुद्धदेव घोष, *वेस्ट बगाल पचायत इलेक्शस 1993 . अ स्टडी इन पार्टिसिपेशन,* इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज तथा कसेप्ट पब्लिशिग कपनी, नयी दिल्ली, 1996

15 जॉर्ज मैथ्यू तथा रमेश सी नायक, *पचायतें व्यवहार मे क्या लाभ है इनसे शोषित वर्गो को',* *इकॉनॉमिक एड पोलिटिकल वीकली,* मुबई, 6 जुलाई 1996. खड 31, सख्या 27, पृ. 1765-1771

16 ई एस वैकटरमैया, सासद क्षेत्र विकास योजना ' सविधान पर हमला, *इडियन एक्सप्रेस,* नयी दिल्ली, 13 फरवरी, 1997

17 *योजना के लिए जन अभियान एक दृष्टिकोण,* केरल राज्य योजना बोर्ड, तिरुवनतपुरम, 1996, पृ 1

18 ग्रामीण स्थानीय निकायो को अधिकारो का हस्तांतरण' पर राज्य योजना आयोग की पहली रिपोर्ट, राज्य योजना आयोग, तमिलनाडु सरकार, चेन्नई, 1997, पृ 9-10

3

गणराज्य और लघु गणराज्य

चौवन साल पूर्व जब हमने यानी भारत के लोगों ने देश के सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता तथा समानता सुनिश्चित करने के लिए भारत को 'सप्रभु लोकतात्रिक गणतंत्र' बनाने की प्रतिज्ञा की थी, उस समय हमारे गणतंत्र के गठन की परिकल्पना में एक गभीर खामी रह गयी थी। हमने इस बात पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया कि उसकी बुनियाद क्या होनी चाहिए। यानी, उस समय हमारे लगभग पॉच लाख गॉवो की पूरी तरह उपेक्षा कर दी गयी थी। सविधान के प्रवर्तनीय भाग मे किसी जिक्र के बजाय उनके बारे में सिर्फ नीति निदेशक तत्वों (अनुच्छेद 40) में ही चर्चा की गयी, जिनके अनुसार 'राज्य ग्राम पचायतों को सगठन करने के लिये कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियॉ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।' आश्चर्य यह है कि यह बुनियादी खामी इस दावे के बावजूद चली आ रही है कि स्वतत्रता आंदोलन का मकसद ग्राम स्वराज हासिल करना है। गाधी जी ने यह बात बार-बार दुहरायी थी कि 'स्वतंत्रता नीचे से शुरू होनी चाहिए। तभी प्रत्येक गॉव संपूर्ण अधिकार सपन्न पचायत अथवा गणराज्य होगा।'

दिल्ली मे ससद और राज्यों में विधान सभाओ के स्तर पर भारतीय गणतत्र का ऊपरी ढॉचा तो बना दिया गया, मगर गॉव, ब्लॉक और जिला स्तर पर लोकतत्र की पूरी तरह अनदेखी की गयी। इसी के परिणामस्वरूप हमारे गॉव आज भी लगभग उतने ही गरीब, जातिवाद से त्रस्त, देश-दुनिया से कटे हुए तथा अविकसित है जितने वे गणतत्र की नींव रखे जाने के समय थे।

भारत के ग्रामीण समुदाय प्राचीन काल से ही पंचायतों के रूप मे सगठित थे। यह कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की पहचान थी और इनमे मानवीय गतिविधि, विकास तथा प्रगति के जीवंत केंद्र बनने की सभावना इसी कोटि के पश्चिमी सगठनो से कहीं ज्यादा थी। रूस में ये संगठन 'मीर', जर्मनी मे 'मार्क' तथा मध्यकालीन

इग्लड मे मेनार कहलाते थे सामाजिक ओर राजनीतिक जीवन मे इन सबकी भूमिका सीमित थी। इसके विपरीत, हमारी पचायतें प्रशासन की धुरी, सामाजिक जीवन का केंद्र, राजनीतिक अर्थव्यवस्था की बुनियाद तथा, इन सबसे भी ऊपर, सामाजिक भाईचारे का केंद्र-बिंदु थीं। उनके कामकाज को देख कर ही 1830 में सर चार्ल्स मेटकॉफ जैसे सतर्क पर्यवेक्षक ने 'लघु गणतंत्र' कह कर उनकी तारीफ की थी। मेरा आशय कतई यह नही है कि ये लघु गणराज्य सभी लोगो की लोकतांत्रिक भागीदारी पर आधारित फल-फूल रहे आदर्श समुदाय थे। भारतीय समाज के जाति-ग्रस्त ओर सामंती ढॉचे के कारण डॉ. आबेडकर ने अपने निजी अनुभवो के आधार पर सविधान सभा में जो बयान दिया था, उसमें काफी सच्चाई है। उन्होंने इन ग्राम पंचायतों को भारत की बरबादी का कारण बताया था। यह बात तय है कि आंबेडकर को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण अथवा एक आदर्श पंचायती राज प्रणाली के द्वारा जनता को सत्ता देने के सिद्धांत से कोई आपत्ति नही थी, उनका आक्रोश तो ग्रामीण समाज में प्रचलित जातिगत भेदभाव के प्रति था।

हमारे तर्क की पुष्टि संविधान सभा मे मैसूर के माधव राव द्वारा दिये गये वक्तव्य से होती है। उन्होंने यह बात स्वीकार की थी कि कुछ गॉव अरसे से गुटबाजी से ग्रस्त हैं; वे अत्याचार के छोटे-छोटे तंत्र तथा छुआछूत के गढ है। पर उन्होने यह भी याद दिलाया कि यदि 30 प्रतिशत गॉवो को भी अच्छा कहा जा सकता है तो उनकी उपेक्षा नही की जानी चाहिए। उन्होंने इस क्षेत्र में मैसूर की लोकप्रिय सरकार द्वारा किये जा रहे कार्यो का उदाहरण भी दिया था।

पचायती राज के विचार की ओर जवाहरलाल नेहरू काफी बाद मे आकर्षित हुए थे। बलवंतराय मेहता समिति की रिपोर्ट के प्रकाशन तथा एस.के. दे से प्रभावित हो कर नेहरू ने यह राह पकड़ी थी। दे ने ग्राम सभा से लोक सभा तक सस्थाओं के जीवंत क्रमिक सिलसिले की कल्पना की थी। जवाहरलाल नेहरू को लिखे एक पत्र में गांधी जी ने कहा था कि सत्य एव अहिंसा सिर्फ ग्रामीण जीवन की सादगी मे ही प्राप्त किये जा सकते है। इस पर नेहरू की प्रतिक्रिया यह थी, 'मेरी समझ मे यह नहीं आता कि गॉंव अनिवार्य रूप से सत्य और अहिसा की प्रतिमूर्ति कैसे हो सकते है? आम तौर पर तो गॉव बौद्धिक तथा सास्कृतिक रूप से पिछडे हुए है तथा उलटे चल कर तरक्की नहीं की जा सकती। संकुचित सोच के लोगो के असत्यवादी एवं हिसक होने की सभावना ज्यादा रहती है।' लेकिन नये गणतत्र की खामियों तथा उसके शासन की तरह-तरह की समस्याओं को अनुभव करने के बाद जवाहरलाल नेहरू ग्रामीण लोकतत्र के सबसे बड़े समर्थक बन गये थे।

1959 में राजस्थान के नागौर कस्बे मे स्वतंत्र भारत की पहली ग्राम पंचायत का उद्घाटन करते हुए पंडित नेहरू ने उसे 'नये भारत के संदर्भ में सबसे ज्यादा क्रांतिकारी एव ऐतिहासिक कदम' बताया था।

पिछले पॉच दशको मे भारत में मूलभूत परिवर्तन आया है। इसके बावजूद हमारे गणतात्रिक संविधान ने समय की कसौटी पर खरा उतरते हुए अपनी मूलभूत खूबियो को बरकरार रखा है। इसके साथ ही, मूलभूत सिद्धातो के दायरे में ही परिवर्तन की माँगों के अनुरूप नयी व्यवस्थाएं विकसित करने के लिहाज से यह काफी लचीला भी साबित हुआ है। इसी प्रक्रिया में यह स्पष्ट हुआ कि संविधान एवं संघीय ढॉचे अथवा प्रशासनिक ढॉचे के अतर्गत गॉवों को दिये गये अस्पष्ट स्थान से गणतंत्र की नीव को मजबूत करने मे सहायता नही मिल सकती। इस दृष्टि से 1993 का वर्ष, जब पचायतो को सविधान के नौवे भाग में शामिल किया गया, ऐतिहासिक वर्ष था। अब सवैधानिक मान्यता के आधार पर जनता द्वारा निर्वाचित तीस लाख महिलाएँ और पुरुष हमारे सामने हैं। इन पर बहुत बडी तादाद मे—500 से ज्यादा जिला पंचायतों, लगभग 5100 ब्लॉक अथवा तालुक पंचायतों तथा लगभग 2,25,000 ग्राम पचायतो—स्थानीय स्तर की राजनीतिक संस्थाओं के संचालन का दायित्व है। नयी प्रणाली मे हमारे पास 89 नगर निगम, 1500 नगरपालिकाएँ तथा लगभग 1800 नगर पंचायते है। दुर्भाग्य से इन सस्थाओ के निर्वाचित प्रतिनिधियों को ससद तथा 27 राज्यो एव केद्र शासित प्रदेशो की विधान सभाओं के 4862 जन प्रतिनिधि अपने लिए खतरा मान कर चल रहे हैं।

उन्हे खतरा मानने की मानसिकता से दो परिस्थितियॉ बन गयी हैं। पहली परिस्थिति यह है कि 5000 से भी कम सख्यावाले ये जन प्रतिनिधि अपने आपको और अधिक अधिकारो, आर्थिक फायदों एवं विशेषाधिकारो से लैस करते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, सासद स्थानीय क्षेत्र विकास योजना कोष की राशि रातो-रात एक करोड़ रुपये से बढा कर दो करोड़ रुपये कर दी गयी है तथा राज्यों में विधायको के विवेकाधिकार से खर्च की जानेवाली राशि भी शीघ्र ही बढा कर दुगुनी कर दी जायेगी। यह प्रवृत्ति इसी तरह बढ़ती जायेगी; इसका कोई अंत नहीं है। दूसरी परिस्थिति यह है कि भारतीय संविधान के तकाजे के अनुरूप राज्य इन पचायतो को 'स्वशासन की सस्थाएँ' बनाने को तैयार नही हैं। यहॉ 'राज्य' से तात्पर्य राज्यों की विधान सभाओ तथा उनके सदस्यो से है। कुछ अपवादों को छोड़ कर, राज्यो ने ग्राम पचायतो अथवा उनसे ऊपर की सस्थाओ को स्वायत्तता एव स्वतन्त्रता से कार्य करने के अधिकारों एव औजारो से सुसज्जित नहीं किया है। लगभग सभी राज्यों ने संविधान की इबारत का तो पालन किया है, लेकिन उसकी भावना की अनदेखी कर दी है। ज्यादातर राज्य जिलो मे निर्वाचित जिला शासन के बजाय अब भी कलक्टर राज को ही बढ़ावा दे रहे है। विधायकों तथा राज्यों के मंत्रियो एवं किसी हद तक सांसदों को भी यह डर सता रहा है कि यदि जन प्रतिनिधि होने के अपने एकाधिकार को उन्होने किसी से बॉट लिया, तो उन्हे हासिल सामाजिक हैसियत एव अधिकारो मे कटौती हो जायेगी; इसलिए इसे रोकने के लिए नये पंचायती राज को खत्म करने की धीरे-धीरे, मगर

लगातार कोशिश चल रही है इसी षड्यंत्र के अंतर्गत पंचायत प्रतिनिधियो पर अयोग्यता, अक्षमता, भ्रष्टाचार तथा अन्य नकारात्मक प्रवृत्तियो का आरोप लगाया जा रहा है। पंचायती राज की सफलता के एक भी किस्से पर फोकस नही किया जाता। इस षड्यंत्र मे राज्यो के राजनीतिक नेतृत्व के साथ-साथ नौकरशाही ने भी सॉठ-गॉठ कर रखी है। षड्यंत्र यह है कि लोगो तथा जनमत निर्माताओं के मन मे इन संस्थाओं के प्रति संदेह का बीज बो कर ग्रामीण जनता की सत्ता को नष्ट कर दिया जाये तथा सारे अधिकार अपने तक सीमित कर लिये जाये।

भारतीय गणतंत्र की पचासवी वर्षगॉठ सिर्फ एक वर्ष दूर है। क्या गॉवो को सचमुच 'लघु-गणराज्य' बनाने के लिए इस अवसर का उपयोग किया जा सकता है? सौभाग्य से हमारे पास पंचायतो का संविधान प्रदत्त उपकरण भी मौजूद है। लेकिन विस्तृत अधिकारों एव दायित्वो के साथ पंचायतो के संविधान के नौवं भाग का अंग बनने संबंधी जानकारी एव जागरूकता लोगों में बहुत कम है। निहित स्वार्थ के लोग यह नही चाहते कि नये विचारो से जनता मे जागरूकता आये, इसलिए लघु गणराज्यो के अस्तित्व की स्थापना के लिए बड़े पैमाने पर जन जागरण अभियान चलाया जाना चाहिए। यह अभियान इस नारे पर केंद्रित होना चाहिए : *गणराज्य के पचासवे वर्ष मे हर गॉव बने एक लघु गणतंत्र*।

पंचायती राज को मजबूत बनाने के लिए कार्यरत स्वयसेवी संगठनों को देश भर की 2,25,000 ग्राम पंचायतों को लघु गणराज्य बनाने के लिए इस विषय पर सभाएँ एवं भाषण आयोजित करने चाहिए। विधायकों और मंत्रियो को जनता के सामने यह शपथ दिलायी जानी चाहिए कि वे पंचायतों को संविधान के अनुरूप संपूर्ण अधिकार तथा वित्त देने की राह मे रोडा नही बनेगे। विद्यालयो और महाविद्यालयों मे हमारे गॉवों के महत्व तथा लोकतान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा उनकी स्वतत्रता तथा स्वायत्तता के विचार पर पदयात्रा, वाद-विवाद एवं निबंध लेखन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इससे महिलाओं की भागीदारी, सूचना के अधिकार, चुनाव के मूल्यों तथा जाति, धर्म अथवा जन्म को भूल कर सभी नागरिकों की समानता तथा ग्राम स्तरीय लोकतंत्र से जुडे ढेर सारे मुद्दों को सामने लाने मे मदद मिलेगी। गॉवो मे इन विषयो पर नारो, परदों, पोस्टरों, दीवार लेखन आदि का अभियान चलाना चाहिए। विद्यालयो, महाविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओ के माध्यम से जन संगठनो, व्यापारियों, लघु उद्यमियों आदि को इन कार्यक्रमो का प्रायोजन करना चाहिए। लघु गणराज्यों के विचार का प्रसार करने के लिए गॉवो मे रह रहे बुजुर्ग और सेवानिवृत्त लोग वैचारिक योगदान और समर्थन दे सकते हैं।

भारतीय गणतंत्र का पचासवॉ वर्ष नयी सहस्त्राब्दि के साथ शुरू हो रहा है। यह हमारे समकालीन इतिहास मे गणतंत्र के संस्थापकों के सपनों को सच बनाने की राह मे रोडे अटकानेवाली ताकतो से दो-चार होने का सबसे बढिया अवसर है।

अपने नेताओ पर भरोसा करते हुए लोगो ने अपने सपनो और आदर्शो को अमली जामा पहनाने का जिम्मा उन्ही पर छोड दिया था, लेकिन उनके सपने सच नही हो पाये। इसलिए इस उद्देश्य को पाने के लिए लोगो को पंचायतों के माध्यम से गॉवो के नवीकरण एव उन्हे नये सिरे से खड़ा करने के आदोलन मे शरीक हो कर यह जिम्मा अब अपने कंधों पर लेना होगा। हरेक राज्य के हिसाब से इस आदोलन की स्थानीय कार्यप्रणाली तय की जा सकती है। संचार क्राति के ग्रामीण क्षेत्रो मे पहुँचने से गॉवो को लघु गणराज्य बनाने के विचार का प्रसार आज काफी आसान हो गया है।

हमारा प्रतिनिधिक लोकतंत्र अभी तक कार्य करता रहा है, लेकिन कभी-कभी आश्चर्य होता है कि यह सिर्फ ढॉचा ही है या इसके भीतर किसी आत्मा का भी निवास है। यह हम सभी के लिए अपने लोकतत्र मे जान डालने का अवसर है। यह जान सिर्फ प्रत्यक्ष लोकतत्र से ही पड सकती है। 73वे संविधान सशोधन तथा पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रो तक विस्तार) अधिनियम, 1996 ने ग्राम सभा के जरिये प्रत्यक्ष लोकतत्र के लिए अनुकूल कानूनी खाका तैयार कर दिया है। भारत के प्राचीनतम निवासियो के क्षेत्र यानी सभी आदिवासी गॉवों (पॉचवीं अनुसूची मे वर्णित क्षेत्रो) मे ग्राम सभा की स्थापना को इस आधार पर अनिवार्य कर दिया गया है कि समुदाय को ही स्वशासन की बुनियादी इकाई होनी चाहिए। इन ग्राम सभाओ को काफी अधिकार दिये गये हैं।

इसी किस्म का प्रत्यक्ष लोकतंत्र लघु गणराज्यो की आधारशिला है। भारत का गणतंत्र इन्ही लघु गणराज्यो के बल पर फल-फूल सकता है—क्योकि यही उसकी जडे है। इसलिए गणतत्र के पचासवे वर्ष में प्रत्येक गाँव को लघु गणराज्य बनाने में हमे कुछ भी उठा नहीं रखना चाहिए। अगली सहस्त्राब्दि में इस देश मे लाखों लघु गणराज्यों को फलने-फूलने दीजिए।

4

खाद्य सुरक्षा एवं पंचायती राज

खाद्य सुरक्षा की अवधारणा का जन्म हुए बहुत अधिक समय नहीं हुआ है। सर्वप्रथम 1974 में विश्व खाद्य सम्मेलन के दौरान इस विषय पर ध्यान दिया गया।[1] विश्व बैंक के अनुसार खाद्य सुरक्षा से तात्पर्य है, 'भौतिक एवं आर्थिक रूप मे सभी व्यक्तियो को उनकी आवश्यकतानुसार भोजन मुहैया करना।'[2] विश्व खाद्य सम्मेलन कार्य-योजना (1996) मे इस विषय की सर्वाधिक सटीक परिभाषा प्रस्तुत की गयी, 'खाद्य सुरक्षा का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति को हमेशा ऐसे भौतिक एव आर्थिक अवसर उपलब्ध रहे जिनसे पर्याप्त, सुरक्षित एवं पोषक भोजन पाने के साधन एवं सक्रिय एव स्वस्थ जीवन जीने के लिए उसकी भोजन सबंधी आवश्यकताएँ उसकी खाद्य रुचियो के अनुसार पूरी हो सके।'[3]

खाद्य सुरक्षा के तीन मुख्य अग है : खाद्य पदार्थो की उपलब्धता, उनका वितरण तथा आम नागरिक तक पहुँच।[4]

उपलब्धता का अर्थ है जनसख्या के अनुपात में खाद्य पदार्थो का पर्याप्त मात्रा मे सुलभ होना तथा जनसख्या के प्रत्येक वर्ग को उत्पादन का हिस्सा मिलना। इसके लिए जरूरी है, उचित वितरण व्यवस्था। खाद्य पदार्थो की सुलभता के भौतिक एव आर्थिक दोनों ही पहलू है। भौतिक सुलभता को प्रभावकारी वितरण प्रणाली से हल किया जा सकता है। कितु आर्थिक सुलभता के लिए व्यापक स्तर पर काम करना होगा। इसका तात्पर्य है प्रत्येक परिवार की व्यय करने की क्षमता की सीमा मे उचित मूल्य पर खाद्य पदार्थो का उपलब्ध होना।

पंचायतें एवं खाद्य सुरक्षा

गॉव, तहसील तथा जिला स्तर पर स्थानीय स्वशासी निकायों के रूप मे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में पचायतो की अहम भूमिका है। स्थानीय स्वशासी व्यवस्था खाद्य सुरक्षा के उपर्युक्त वर्णित तीनो अगो–उपलब्धता, विरतण और पहुँच–के सक्षम

कार्यान्वयन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

खाद्य उत्पादन

आज देश में पर्याप्त खाद्य उत्पादन हो रहा है। आम जनता की भोजन संबधी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यह उत्पादन पर्याप्त भी है। फिर भी कुछ क्षेत्रो मे उत्पादन की दर अत्यत ही निम्न है। जहॉ भी पचायतें शक्ति-संपन्न है, कृषि उत्पादन बढाने मे उनकी विशिष्ट भूमिका रही है।

ग्यारहवी अनुसूची के अनुसार कृषि उत्पादन संबंधी महत्वपूर्ण क्षेत्र पचायतो को सौपे गये है। ये क्षेत्र इस प्रकार है :

(1) कृषि एवं कृषि विस्तार

(2) भूमि का उन्नयन, भूमि सुधार कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, चकबदी एव मृदा-संरक्षण

(3) लघु सिंचाई, जल प्रबंधन तथा जल संरक्षण विकास कार्यक्रम

(4) पशुपालन, डेयरी एवं मुर्गी पालन

(5) मत्स्य पालन

इसके अतिरिक्त पंचायतो को इन क्षेत्रो मे सामाजिक न्याय एव आर्थिक विकास के लिए योजनाओं के निर्माण का दायित्व भी सौपा गया है। स्पष्ट है कि इन क्षेत्रो से जुड़ी परियोजनाओ एवं योजनाओं के कार्यान्वियन की जिम्मेदारी भी पचायतों को ही निभानी है।

कृषि के लिए नयी तकनीक हासिल करने तथा उसका उपयोग करने मे भी पचायते एक प्रभावकारी संस्था के रूप मे कार्य कर सकती है। चूँकि उन्हें स्थानीय वस्तुस्थिति की जानकारी होती है, इसलिए वे स्थानीय जरूरतों को पूरा करने मे अधिक कारगर रूप से काम कर सकती हैं। कृषि विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थाओ को क्षेत्रीय जरूरतों के अनुसार तकनीक के विकास में सहयोग दे सकती हैं। उन्हे आवश्यक तथ्य मुहैया करा सकती है।

उत्पादकता की उच्च दर सुनिश्चित करने मे भूमि सुधारों का महत्व तथा खाद्य सुरक्षा मे उनका योगदान कम करके नहीं ऑका जा सकता। भूमि सुधारो के कारण गरीब गॉववालो (छोटे एव सीमात किसानों की) आमदनी बढ़ी है, जिसके फलस्वरूप उनकी व्यय करने की क्षमता मे भी वृद्धि हुई है।

इस सबध मे पश्चिम बंगाल सबसे अच्छा उदाहरण है। जाना-माना 'ऑपरेशन बरगा' बंगाल मे इसीलिए सफल हो सका, क्योकि इसके लिये पंचायतों ने भरसक प्रयास किया। पश्चिम बंगाल में तृणमूल स्तरीय दबाव के चलते भूमि सुधारों को जारी रखने मे वर्ष 1978-1983 में पंचायतो की निर्णायक भूमिका रही। भूमि सुधारो के परिणामो का आकलन इस तथ्य से किया जा सकता है कि पश्चिम बंगाल के

पास देश की कृषि योग्य भूमि का केवल 3.5 प्रतिशत हिस्सा है, किंतु देश की कुल अधिशेष भूमि वितरण में उसका योगदान 20.77 प्रतिशत रहा।

कृषि के विकास मे भूमि सुधारो का योगदान 1980 के दशक में हुए कृषि विकास की वृद्धि दर से जाहिर होता है। 1983 के बाद के कालखड में पंचायतो ने मजबूती से काम करना आरंभ कर दिया था। 1950-60 के दौरान पश्चिम बंगाल मे चावल के उत्पादन की वृद्धि दर सिर्फ 1 01 प्रतिशत थी, जो 1980-81 में 6 41 प्रतिशत हो गयी।[5] पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों मे घूम कर देखा जाये तो कृषि वृद्धि दर, पंचायतो की भूमिका, जानकारी का उपयोग तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण जनता और जागरूक पंचायती व्यवस्था के बीच का गहन सबंध स्पष्ट हो जायेगा। सरकार द्वारा विभिन्न विभागो द्वारा किये जानेवाले कार्यो को पचायतो की परिधि में लाया गया, जिसके कारण स्थानीय सामुदायिक समस्याओ को ध्यान में रखते हुए रचनात्मक कार्य के लिए स्थान बन सका।

खाद्य वितरण

देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा खाद्य सामग्री की वितरण प्रणाली का सर्वाधिक उचित माध्यम सार्वजनिक वितरण प्रणाली है। लक्षित जन वितरण प्रणाली 1997 मे लागू की गयी थी। इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाले परिवारो को कम मूल्य पर चावल एव गेहू उपलब्ध करवाना था। यह वह वर्ग है, जिसकी खाद्य सुरक्षा अनिश्चित रहती है। चूँकि जन वितरण प्रणाली मे भ्रष्टाचार व्याप्त है और ऐसे बिदु अनेक हैं जहाँ से अनाज दूसरी जगह ले जाया जाता है, प्रधान मंत्री को हाल ही मे स्वयं स्वीकार करना पडा कि जन वितरण प्रणाली अनेक स्थानों पर अपने लक्ष्य को पूरा नही कर पा रही है। जिन राज्यो के अधिकाश लोग गरीब है, वहॉ अनाज का सीमित उठाव व्यवस्था मे व्याप्त प्रशासकीय अक्षमताओ की ओर संकेत करता है। प्रधानमत्री ने राज्य सरकारो से आग्रह किया कि इस स्थिति से निपटने के लिए शीघ्र ही कोई हल निकाला जाये तथा पचायतों के योगदान के लिए राह बनायी जाये, ताकि 'सबके लिए भोजन' अभियान को सफल बनाया जा सके।[6]

जन वितरण प्रणाली में पंचायतो की भागीदारी से जरूरतमंदों को भोजन मिलना और अधिक सुनिश्चित होगा। इसीलिए 11वी अनुसूची में जन वितरण प्रणाली को शामिल किया गया है।

इस प्रावधान को अमली जामा पहनाने के लिए उड़ीसा के क्योझर जिले मे किये गये प्रयोगों के समान ही और भी नये कदम उठाने की जरूरत है। उडीसा ग्राम पचायत अधिनियम, 1965 की धारा 44(1) (एक्स-3) के तहत जन वितरण प्रणाली ग्राम पंचायत का दायित्व है। ग्राम पंचायतो का यह कर्तव्य है कि वे वित्तीय स्थिति के अनुरूप, गॉवो में जन वितरण प्रणाली का संचालन करे तथा उस पर नियत्रण

रखे। साथ ही जन वितरण प्रणाली की कार्य कुशलता के लिए भी पचायतें ही उत्तरदायी होगी। इस प्रावधान के अनुसार क्योझर में पचायतो को जन वितरण प्रणाली के द्वारा खाद्य पदार्थों की बिक्री का दायित्व सौपा गया है। इस प्रकार निजी विक्रेताओं को इस क्षेत्र से हटा दिया गया। ऐसा माना जाता है कि इससे पंचायतों की वित्तीय स्थिति में सुधार होने के साथ भ्रष्टाचार में भी कमी आयी है। वितरण व्यवस्था अधिक पारदर्शी हो गयी है। जिम्मेदारी की भावना बढी है।[7]

राजस्थान में राज्य सरकार समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाले लाभार्थियो के चयन के लिए ग्राम सभा का प्रयोग एक सार्वजनिक मच के तौर पर कर रही है। 'अन्नपूर्णा परियोजना' के तहत ग्राम पचायतो को लाभार्थियो का चयन करना होता है। उनकी सूची तैयार कर सभी के द्वारा अवलोकन हेतु प्रदर्शित करना होता है। आम तौर पर यही देखा गया है कि ग्राम सभा की चयन प्रक्रिया निष्पक्ष तथा कार्यक्रमों की मार्गदर्शिका के अनुरूप होती है।

हाल ही मे पचायती राज सस्थाओ को दायित्व एवं सत्ता के हस्तांतरण के सदर्भ मे कार्य दल की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट मे पचायती राज के विभिन्न स्तरों पर किये जानेवाले अनेक दायित्वो की पहचान की गयी है।[8] रिपोर्ट में ठोस ढग से बताया गया है कि जन वितरण प्रणाली के तहत पचायतें कौन-कौन-से कार्य कर सकती है। ये कार्य इस प्रकार हैं · (1) आवश्यक पदार्थो की उपलब्धता एव वितरण तथा जन वितरण प्रणाली कार्यक्रम के तहत माँग का अनुमान लगाना; (2) यातायात, भंडारण तथा आपूर्ति प्रणाली; (3) निरीक्षण तथा नियमों का प्रवर्तन; तथा (4) जन वितरण प्रणाली को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमो से जोडना।

पचायती राज के प्रत्येक स्तर पर किये जानेवाले कार्यो का ब्यौरा भी रिपोर्ट मे दिया गया है।[9] जिला पंचायतों को समग्र रूप से आकलन तथा नियोजन का दायित्व निभाने के उपयुक्त समझा गया है। उदाहरण के लिए जिला पंचायतो को जन वितरण प्रणाली केंद्रों का जिला स्तरीय नक्शा तैयार करने तथा नयी दुकानें खोलने की जिम्मेदारी दी गयी है। मध्य स्तरीय पंचायतें इन कार्यो की योजना बनाने, अपने क्षेत्रो मे कार्यान्वयन की दिशा तैयार करने तथा ग्राम पंचायतो एवं जिला पचायतों के बीच संबंध सूत्र की भूमिका निभा सकती हैं। ग्राम पंचायतो का कार्य है उचित मूल्य की दुकानों की कार्य प्रणाली का निरीक्षण करना तथा उन पर नियत्रण रखना, फर्जी राशन कार्डधारियो के नाम सूची से हटाना तथा उचित लाभार्थियो को इस प्रणाली का लाभ पहुँचाना।

कार्य दल की रिपोर्ट मे कोई चकित करनेवाली बात नहीं हैं। जनवरी 2002 में उपभोक्ता मामलों तथा सार्वजनिक वितरण के मंत्रालय ने एक छह सूत्री कार्ययोजना बनायी थी। इस योजना का उद्देश्य था, ग्राम पचायतों को उचित मूल्य की दुकानो की कार्य प्रक्रिया का निरीक्षण करने, उसके लिए नियम बनाने और उन नियमो को

लागू करने का अधिकार देना। बहरहाल, कार्य दल की रिपोर्ट इस मामले में ज्यादा विस्तृत है कि इसमे पचायती राज सस्थाओं की गतिविधियों को एक मुसंगत स्वरूप दिया गया है तथा उन अधिकारों एव वित्तीय स्रोतो को रेखाकित किया गया है जो प्रत्येक गतिविधि को सपन्न करने के लिए आवश्यक हैं। इस अर्थ में यह नवीनतम रिपोर्ट कई स्तरो पर पूर्व-उल्लिखित पहलो और प्रयोगों तथा इस महत्वपूर्ण क्षेत्र मे स्थानीय स्वशासन की निर्णायक भूमिका के आधार पर अर्जित देश की सामूहिक बुद्धिमत्ता का प्रतिनिधित्व करती है।

भोजन की उपलब्धता

खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को सुनिश्चित करने के लिए ग्रामीण निर्धन वर्ग की आय के साधन बढ़ाना आवश्यक है। यदि जनता के पास व्यय करने का साधन होगा तब ही वह अपनी भोजन संबंधी आवश्यकताओ को पूरा कर सकेगी। हाल ही मे उडीसा के काशीपुरा मे भूख से हुई मृत्यु की घटनाएँ ग्रामीण निर्धन जनता की अपर्याप्त क्रय क्षमता का प्रमाण हैं। यह पंचायतो की उपेक्षा कर जनता पर ऊपर से लादी गयी विकास-मूलक तथा कल्याणकारी परियोजनाओ की असफलता का भी प्रमाण है। पंचायते परियोजनाओ के कार्यान्वयन मे बेहतर जिम्मेदारी और पारदर्शिता ला कर समाज के कमजोर एव उपेक्षित वर्गो को सशक्त कर सकती हैं। वे गॉव के प्रभुत्वशाली वर्गों तथा भ्रष्ट अधिकारियो के बीच की सॉठ-गॉठ को समाप्त कर सकती है। सामाजिक अकेक्षण का प्रयोग कर तथा जानकारी के अधिकार को भली भॉति लागू कर जन वितरण प्रणाली तथा उचित मूल्य की दुकानो को जनता के प्रति जवाबदेह बना सकती हे। यह सर्वविदित है कि पचायतो मे समाज के हाशिये के लोगो की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी हासिल करने की अतर्निहित क्षमता है।

पूर्व वित्त मत्री पी. चिदबरम ने जन वितरण प्रणाली को समाप्त कर पचायतो द्वारा 'काम के बदले भोजन' जैसे कार्यक्रमों के पक्ष मे दलील दी थी।[10] इस प्रकार के कार्यक्रम निर्धन लोगों (जिनके पास न काम है न भोजन) के लिए भोजन मुहैया कराने की दिशा में बहुत महत्व रखते हैं। इसके साथ ही चिदबरम ने पचायतो की अब तक की सीमित भूमिका को विस्तृत करने का भी आह्वान किया था। उनका कहना था कि सूखा-ग्रस्त क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा मे गेहूँ एवं धान पचायतों को सोप दिया जाये। पंचायते निश्चित करे कि उनके क्षेत्रो में कौन-से काम होने चाहिए। कार्य के अनुपात मे गेहूँ और धान देने की मात्रा भी वे ही तय करे। इस प्रकार पचायतो के द्वारा ग्रामीण विकास तथा खाद्य सुरक्षा दोनों ही लक्ष्यो को पाना सभव होगा।

योजना का विकेंद्रीकरण

खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य की पूर्ति की दिशा मे पंचायते अनेक प्रकार से योगदान कर सकती है, यह अब तक की चर्चा से स्पष्ट है। किंतु यदि तृणमूल स्तर पर जनता को सही अर्थों मे सशक्त नहीं किया जायेगा तो इस लक्ष्य को पाना या तो असभव होगा अथवा दीर्घकाल में इसका कोई लाभ नही होगा। जहॉ स्थानीय निकायों को स्वायत्तता प्राप्त है, विकास सबधी प्राथमिकताऍ तय करने, प्रकल्प बनाने तथा उनके कार्यान्वयन का अधिकार है, वहॉ भूख के कारण मृत्यु होगी—ऐसी कल्पना भी नही की जा सकती। कोई भी संवेदनशील समुदाय आज अपने सदस्यों को भूख से मरते हुए नही देख सकता। इस प्रकार तृणमूल स्तरीय लोकतंत्र के माध्यम से स्थानीय जनता का सशक्तीकरण तथा विकेद्रित योजना निर्माण खाद्य सुरक्षा की सबसे बड़ी गारटी है। गत पॉच वर्षो मे केरल राज्य का अनुभव इस बात का प्रमाण है कि यदि लोगों की भागेदारी के आधार पर नीचे के स्तर से वैज्ञानिक योजना निर्माण किया जाये, तो विकेद्रीकरण जनता के विकास तथा खाद्य सुरक्षा का सबसे अनुकूल तथा उचित तरीका है।

देश में सर्वप्रथम केरल राज्य सरकार ने 1996 मे नौवीं राज्य पचवर्षीय योजना के तहत बजट का 35-40 प्रतिशत भाग स्थानीय निकायों को देने का निर्णय किया था। इसके अतिरिक्त स्थानीय निकायो को और अधिक स्वायत्तता देने के लिए 75 प्रतिशत निधि बंधनरहित अनुदान राशि के रूप में देने का भी निर्णय किया गया। शर्त केवल एक ही रखी गयी थी कि प्रदत्त निधि का 40 प्रतिशत भाग उत्पादक क्षेत्र (कृषि तथा संबधित गतिविधियॉ, उद्योग, स्व-रोजगार आदि) पर व्यय करना होगा।

जन योजना अभियान के माध्यम से योजना निर्माण मे विकेंद्रीकरण की अवधारणा जिस रूप मे की गयी, उसके माध्यम से जनता अपनी जरूरतो और प्राथमिकताओ को जिस रूप मे देखती है और केंद्रीकृत नौकरशाही द्वारा देखा जाता है, उनके बीच के फर्क को भी सामने रखने का प्रयास किया गया। इसके पूर्व राज्य द्वारा बनायी गयी योजनाओं और पचायतों द्वारा बनायी गयी योजनाओ का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि दोनों की प्राथमिकताओं में कितना बड़ा फासला है। स्थानीय निकायों ने राज्य की तुलना में कृषि को काफी ज्यादा तरजीह दी। उन्होने स्थानीय बजट का 19 प्रतिशत कृषि के लिए रखा, जबकि राज्य सरकार की योजना में यह मात्र 10.5 प्रतिशत था।[11]

इसी तरह पशु पालन को 7.57 प्रतिशत अंश दिया गया। यह तथ्य अपने आपमे महत्वपूर्ण है, क्योंकि केरल में डेयरी का काम बहुत बड़े व्यावसायिक स्तर पर नही किया जाता।[12] आम तौर पर यह देखा गया कि डेयरी एवं पशुपालन से

छोटे किसानो की आय मे बढोत्तरी हुई। अनेक अध्ययनो से ज्ञात होता है कि पचायतो द्वारा किये गये प्रयासों से कृषि क्षेत्र की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए कॉजीकुझी पचायत (अलाप्पुज्हा, केरल) ने पारंपरिक सब्जी उत्पादन को सफलतापूर्वक पुनर्जीवित किया। कृषि भवन ने तकनीकी जानकारी दी तथा उनका मार्गदर्शन किया। वित्तीय पहलू पंचायतों का दायित्व था। पंचायतों ने जन जागरूकता और जन सपर्क अभियान चला कर स्थानीय लोगों को अभिप्रेरित भी किया। इस कार्यक्रम की सफलता नि स्सदेह उल्लेखनीय रही। फसल कटाई के दौरान तीन महीनों तक सब्जियो की कीमतो में 20-30 प्रतिशत की गिरावट आ गयी। इसी प्रकार लघु सिंचाई परियोजना तथा कृषि के लिए अन्य सरचनागत सुविधाओ को बढ़ाने पर अधिक ध्यान दिया गया। इससे ज्ञात होता है कि जनता के लिए खाद्य सुरक्षा का क्या मूल्य है। यदि लोगो को अवसर दिया जाये, तो वे स्थानीय समुदाय के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में जुट जायेगे, बशर्ते उनकी जरूरतों तथा प्राथमिकताओं के मुताबिक योजना बनाने एव उन्हे लागू करने के लिए स्थानीय सरकारों को अधिकार सपन्न बनाया जाये।

कार्यान्वियन के स्तर पर, जिम्मेदारी एव पारदर्शिता के लिए अनेक कदम उठाये गये, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार मे भी कमी आयी। अनाज का गायब होना भी कम हुआ। विकेद्रीकरण से न केवल विकास कार्यक्रमो ने जनता की प्राथमिकताओ को बहुत हद तक पूरा किया, अपितु आम जनता की क्षमता एवं कौशल में भी इजाफा हुआ। इससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि खाद्य सुरक्षा आम जनता की सर्वोच्च प्राथमिकता है--विशेषकर ग्रामीण जनता की।

निष्कर्ष

उपर्युक्त चर्चा इस तथ्य को रेखांकित करती है कि पंचायती राज संस्थाओं मे असमर्थ व्यक्तियो को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने की कितनी क्षमता है। 73वे सविधान सशोधन एव 11वी अनुसूची ने खाद्य सुरक्षा हेतु पंचायती राज सस्थाओ द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए काफी गुजाइश बनायी है—चाहे वह उत्पादन मे बढोत्तरी का मामला हो या सुचारु वितरण के द्वारा उपलब्धता को सुनिश्चित करने का। इस सभावना को वास्तविकता मे बदलने के लिए पश्चिम बगाल ने, जहाँ पहले पर्याप्त खाद्य उत्पादन नही होता था, और बाद में एक हद तक केरल ने कुछ पहल की है। लेकिन अभी बहुत कुछ करना शेष है। इस दिशा में दो-सूत्री रणनीति बनाने की जरूरत है। प्रथम, यह सुनिश्चित करना होगा कि पचायतो को वित्तीय अधिकार, दायित्व और कर्मचारी दिये जाये। द्वितीय, पचायतें ग्राम स्तरीय योजनाएँ प्रभावकारी ढंग से बनायें। राज्य सरकारें इन योजनाओं को मान्यता दें तथा स्थानीय निकायों को इन योजनाओ के कार्यान्वियन की पूर्ण स्वतंत्रता भी दे। इस प्रकार की व्यवस्था में जनता के प्रति जवाबदेही

अतर्निहित है। केरल का अनुभव इस रणनीति के सकारात्मक परिणामों का साक्षी है। इस दोहरी रणनीति को अपनाने से पचायते खाद्य सुरक्षा के सबसे मजबूत तत्र के रूप मे सामने आयेंगी।

संदर्भ

1 विश्व खाद्य सम्मेलन (1974) की रिपोर्ट, संयुक्त राष्ट्र सघ का प्रकाशन, 5-16 नवबर, रोम, इटली

2 विश्व बैक, *गरीबी और भूख विकासशील देशो मे खाद्य सुरक्षा के विकल्प एव मुद्दे*, 1968, वाशिगटन डी सी , सयुक्त राज्य अमेरिका

3 *विश्व खाद्य सम्मेन (कार्य योजना)*, 1996, विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन, 13-17 नवबर, रोम, इटली

4 फूड *सिक्यूरिटी एड पचायती राज (1997)*, (सपादित) प्रदीप चतुर्वेदी, कसेप्ट, नयी दिल्ली, पृ 267-269

5 डी बद्योपाध्याय, पश्चिम बगाल मे भूमि सुधार, *इकॉनामिक एड पॉलिटिकल वीकली*, 27 मई 2000

6 *फाइनेंशियल एक्सप्रेस*, 25 अप्रेल 2001

7 सौरभ गर्ग, *जन वितरण प्रणाली की वस्तुओं के विक्रेता के रूप मे पचायते*, कंपास, मानसून अक, 2000-2001

8 *पचायती राज सस्थाओं को अधिकार तथा प्रकार्य सौपने पर कार्य दल की रिपोर्ट*, भारत सरकार, कृषि भवन, नयी दिल्ली, अगस्त 2001

9. उपर्युक्त, पृ 81-82

10 पी चिदबरम, प्राचुर्य की समस्या, *इडिया टुडे*, 24 सितबर 2001

11. टी.एम थामस आइजक एव रिचर्ड डब्ल्यू फ्राक *लोकल डेमोक्रेसी एड डेवलपमेट पीपुल्स कैंपेन फॉर डीसेंट्रलाइज्ड प्लानिग इन केराला, लेफ्टवर्ड बुक्स*, नयी दिल्ली, 2000, पृ. 205

12 उपर्युक्त पृ 206

5

जनसंख्या स्थिरता के लिए जन सत्ता

सत्ता यदि केवल दिल्ली या अन्य राज्यो की राजधानियो तक ही सीमित रही तो राष्ट्रीय समस्याओ का हल नही ढूँढा जा सकता . यह तर्क आजकल काफी लोकप्रिय हो रहा है। इतना ही नहीं, यह भी लोगों के सामने स्पष्ट होता जा रहा है कि ये समस्याएँ नौकरशाही अथवा सरकारी विभागो द्वारा भी नही सुलझायी जा सकती। देश के सामने मुँह बाये खडी प्रमुख समस्याओ का एकमात्र जवाब सत्ता का विकेंद्रीकरण एव विकेंद्रित नियोजन ही है।

आजादी के बाद से विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया मे पचायतो और शहरी स्थानीय निकायों को सवैधानिक दर्जा देनेवाले दिसंबर 1992 के दो संविधान सशोधन (73वॉ एव 74वॉ) मील का पत्थर साबित हुए है। 'भारत मे शासन और प्रशासन को लोगो की देहरी तक ले जाने के लिए गॉवो मे भारत की 76 प्रतिशत आबादी के लिए पचायते तथा 26 प्रतिशत शहरी आबादी के लिए स्थानीय निकाय महत्वपूर्ण उपकरण बन गये है।'[1]

जनसख्या स्थिरता अपने आपमे कोई अलग मुद्दा नही है। यह गरीबी मिटाने, पर्यावरण की गुणवत्ता, महिलाओ की बेहतर स्थिनि, शिक्षा तथा रहन-सहन की उन्नत परिस्थितियो पर निर्भर है। दूसरे शब्दो मे कहे तो गरीबी उन्मूलन, सुचारु खाद्य आपूर्ति, कुपोषण का नाश, उत्तम आवास सुविधा, महिलाओ की स्थिति मे सुधार, साक्षरता और सभी के लिए प्रारभिक शिक्षा जनसख्या स्थिरता के लिए आवश्यक परिस्थितियॉ है।

गॉव या शहर मे लोगो के जीवन की उपर्युक्त सभी जरूरतो को पूरा करने के लिए ग्यारहवी अनुसूची मे 29 विषयो तथा बारहवीं अनुसूची में 18 विषयों का उल्लेख किया गया है। ग्यारहवीं अनुसूची मे उल्लिखित, पचायतों के प्रकार्यो मे यह स्पष्ट कहा गया है कि जनसंख्या स्थिरता सबधी दायित्व पंचायतों पर है। ग्यारहवीं अनुसूची में जो 29 विषय सुझाये गये है, उनमे 24वॉ विषय है परिवार कल्याण।

इस सूची के सांकेतिक होने के बावजूद राज्यो ने इसमे उल्लिखित विषयो को तीन स्तरीय पचायतों के अनिवार्य दायित्वो के रूप में अपने अनुपालन-अधिनियमो मे ज्यो का त्यों शामिल कर लिया है।

जनसंख्या नियोजन का विकेंद्रीकृत मॉडल

सरकारी नीति के हिसाब से योजना आयोग की नौवीं पचवर्षीय योजना (1997-2002) के दृष्टिकोण पत्र का परिवार नियोजन एवं कार्यान्वयन प्रक्रिया पर काफी प्रभाव पड़ा है। इस दस्तावेज में परिवार कल्याण के बारे में भी एक खंड है। इसके अनुसार, परिवार कल्याण सेवाओं का दायरा तथा उनकी गुणवत्ता बढाने के लिए प्रयास तेज करने के साथ ही इस कार्यक्रम में 'पचायती राज संस्थाओं को शामिल किया जायेगा, ताकि अतरक्षेत्रीय समन्वय बन सके और नियोजन, निगरानी एवं प्रबधन मे सामुदायिक भागीदारी भी हो पाये।'[2] इस कार्यक्रम को दो अन्य वर्गो की भागीदारी के साथ जोडा गया है। ये वर्ग हैं स्वैच्छिक तथा संयुक्त क्षेत्र मे कार्यरत चिकित्सक तथा सगठित और असंगठित क्षेत्रो के उद्योग तथा श्रमिक प्रतिनिधि। मेरे विचार से योजना आयोग पचायतो की भूमिका को सवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझ पाया। यदि तीन स्तरीय पचायतो को सवैधानिक रूप से निर्वाचित जन प्रतिनिधियो द्वारा सचालित 'स्वशासन की संस्थाओं' के रूप में प्रतिस्थापित किया जाना है, तो पंचायतों और नगर परिषदों के साथ सामान्य सस्थाओं जैसा व्यवहार करने के बजाय उन्हें शीर्षस्थ महत्व देना होगा। किसी जिले या ब्लॉक अथवा गॉव के जन समूह में जनसंख्या नियत्रण मे सहायता करने के लिए चिकित्सकों को कौन प्रोत्साहित करेगा? उद्योगो, श्रमिक सगठनों आदि को परिवार कल्याण कार्यक्रम मे शामिल होने के लिए प्रोत्साहन और सुविधाएँ कौन देगा? यह कार्य केवल स्थानीय स्वशासी संस्थाओ द्वारा ही किया जा सकता है, क्योंकि वे जनता के काफी नजदीक है और उसके विचारों, संस्कृति और समस्याओं को समझती है।

परिवार नियोजन सवेदनशील मुद्दा है और इसे किसी निदेशक, कलक्टर अथवा बीडीओ द्वारा थोपा या लागू नहीं किया जा सकता। अफसोस यह है कि हमारे नीति निर्धारक आज तक इस सच को गहराई से समझ नही पाये हैं। यही कारण है कि देश मे परिवार कल्याण कार्यक्रमों के कई दशकों से चलते आने के बावजूद आबादी के मोर्चे पर कई बातें अभी तक ज्यो की त्यों चली आ रही हैं (अ) दुनिया मे हर साल बढ़नेवाली मनुष्यों की कुल आबादी में सबसे ज्यादा हिस्सा भारत का ही है; (ब) दुनिया में सबसे प्रतिकूल लिंग अनुपातवाले देशो मे भारत भी शामिल है, (स) असमान विकास टिकाऊ नही हो सकता; (द) आजादी के समय देश की कुल आबादी जितनी थी, उतने ही लोग आज भारत मे गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।

डॉ एम एम. स्वामीनाथन की अध्यक्षता मे राष्ट्रीय जनसख्या नीति का प्रारूप बनाने के लिए गठित विशेषज्ञ समूह ने अपनी रिपोर्ट मे इन तथ्यों का ध्यान दिया है। साथ ही, जनसख्या को स्थिर करने के लिए उसने विकेंद्रित संस्थाओ के महत्व पर विशेष बल दिया है। इस विशेषज्ञ समूह ने मई 1994 मे सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी थी।

विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट मे 'ऊपर से नीचे की ओर जारी वर्तमान परिवार कल्याण कार्यक्रम' के बजाय 'पंचायतों, नगरपालिकाओ एवं राज्यों की विधान सभाओ के जरिये विकेंद्रित लोकतांत्रिक नियोजन' पर जोर दिया गया है।[3] रिपोर्ट मे लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रक्रिया के जरिये गठित पंचायती राज तथा नगरपालिका सस्थाओ को यह दायित्व सौपने की सिफारिश की गयी है, क्योकि 'विकेंद्रित कार्रवाई को बढ़ावा देने के लिए ये सस्थाएँ नये अवसरों का झरोखा प्रदान कर रही है।'[4]

विशेषज्ञ समूह के अनुसार बुनियादी स्तर के लोकतात्रिक ढॉचे (यानी पचायतो और नगरपालिकाओं) को 'गर्भनिरोधक उपायो को अपनाने में वर्तमान लिंगगत असतुलन को दूर करने के नये अवसर' प्रदान करने के साथ ही साथ अपने गॉव, कस्बे या शहर के लिए सामाजिक-जनसाख्यिक घोषणापत्र बनाना चाहिए। गॉव/कस्बा स्तर के घोषणापत्र मे उस क्षेत्र के लोगो के बीच विचार-विमर्श के बाद तैयार किये गये, जनसंख्या स्थिरता के स्पष्ट लक्ष्य शामिल होने चाहिए। घोषणापत्र मे मानव आबादी तथा भूमि एव जल ससाधनो के बीच सतुलन बनाने की तरफ विशेष रूप स ध्यान दिया जायेगा। इसके साथ ही, दहेज, बाल विवाह, मादाभ्रूण एवं शिशु हत्या, महिलाओं-पुरुषों की निरक्षरता आदि सामाजिक बुराइयो को दूर करने के लिए स्थानीय लोगो द्वारा किये जानेवाले उपायो का योजनाबद्ध विवरण भी घोषणापत्र मे दिया जायेगा। यह जीवन स्तर बेहतर बनाने के लिए दिशा निर्देशों का निर्धारण भी करेगा। ऐसे घोषणापत्र मे कार्रवाई का स्पष्ट खाका रहेगा, जिसमें वित्तीय एव तकनीकी सहायता की आवश्यकताओ का विवरण शामिल होगा।[5]

स्वामीनाथन रिपोर्ट में स्थिर एवं उचित जनसख्या के लिए बनाये गये कार्यक्रमो क संवर्धन के लिए पंचायतो एव नगरपालिकाओ से स्थानीय संसाधन, विशेषकर सामान के रूप मे, जुटाने का भी सुझाव दिया गया है।

रिपोर्ट में कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिला स्तर पर जनसंख्या एवं सामाजिक विकास समितियों तथा राष्ट्रीय स्तर पर जनसख्या एवं सामाजिक विकास आयोग के गठन का सुझाव दिया गया था। केंद्रीय सरकार द्वारा विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट की अस्वीकृति एव इन सिफारिशो को किसी न किसी रूप में लागू करने पर विचार न किया जाना एक दयनीय स्थिति है। इस सिलसिले मे यह उल्लेखनीय है कि केरल द्वारा शुरू किया गया नौवीं योजना के लिए अभियान, जो अब 'पीपल्स प्लान' के रूप मे सफलतापूर्वक चल रहा है, विशेषज्ञ समूह द्वारा प्रस्तावित सबद्ध

गाँव, कस्बे या शहर के लिए सामाजिक जनसांख्यिकी घोषणापत्र तैयार किये जाने के कार्यक्रम के काफी नजदीक है।[6]

यहाँ मैं उन दो महत्वपूर्ण उपायों की चर्चा करूँगा, जिनके द्वारा जनसख्या को स्थिर करने में काफी सफलता प्राप्त की जा सकती है, बशर्ते पंचायतों और नगरपालिकाओ को सवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप सुदृढ़ बना दिया जाये। ये उपाय हैं (क) स्थानीय शासन मे महिलाओ की भागीदारी तथा (ख) शिक्षा।

स्थानीय शासन में महिलाओं की भागीदारी

पचायतो और नगरपालिकाओं के तीनों स्तरो पर महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित किये जाने से इन सस्थाओं के जनसंख्या को स्थिर करने के लिए प्रभावी उपकरण बनने में काफी सहायता मिलेगी। मोटे तौर पर पंचायती राज एव नगरपालिकाओ में तीनों स्तरों पर अनुमानतः 30 लाख निर्वाचित जन प्रतिनिधि होने चाहिए। इनमें 10 लाख महिलाएँ होंगी, जो अपने आपमें बहुत बडी ताकत बन सकती है। यदि वे अपेक्षित गभीरता के साथ जनसख्या से संबद्ध मुद्दों को उठायें तो वे महिलाओ के जीवन की गुणवत्ता सुधारने के साथ ही पूरे परिवार एव समाज का जीवन स्तर सुधारने के लिए आवश्यक उपायो की महत्वपूर्ण शुरुआत कर सकती हैं। लेकिन लगातार उठता प्रश्न यह है कि कई राज्यो में, जहाँ पुरुष वर्ग का वर्चस्व अभी भी कायम है, क्या महिलाएँ अपेक्षित दायित्वों के न्यायपूर्ण निर्वहन मे सफल हो पायेंगी, क्योंकि महिलाओ के लिए आरक्षण के बावजूद पचायती राज संस्थाओ में पुरुष सदस्यों की दो-तिहाई संख्या यानी पुरुष-बहुमत तो रहेगा ही। क्या परिवार में मौजूद पुरुष वर्चस्व पचायतों तक फैल जायेगा? इसके साथ ही, हमारे देश में बालिकाओं की उपेक्षा, महिलाओ की घटती संख्या, बालिका शिशु की ऊँची मृत्यु दर, महिला मजदूरो की अधिक सख्या, महिलाओं की अल्प साक्षरता दर, बालिकाओ द्वारा विद्यालय बीच मे छोड़ देने की ऊँची दर, छोटी आयु मे विवाह, किशोरावस्था मे माँ बनने के जोखिम का ऊँचा अनुपात, उच्च प्रसूति एवं शिशु मृत्यु दर एव महिलाओ के प्रति बढ़ती हिंसा जैसे अनेक सामाजिक कारक महिलाओ के जीवन को प्रभावित कर रहे है। इन सामाजिक कारको के बने रहते हुए परिस्थितियाँ कैसे सुधरेंगी? यदि पंचायतें ऐसे ही समाज का आईना है, तो सुधार की क्या उम्मीद की जाये?

इस बारे मे मेरा कहना यह है कि यह तर्क सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रति अज्ञान की अभिव्यक्ति है, जबकि, इसके विपरीत, सच यह है कि दृढ़ संकल्प के साथ कोई पहल की जाये, तो परिवर्तन अवश्य होता है। स्वामीनाथन समिति की रिपोर्ट मे निर्वाचित महिला सदस्यों की महत्वपूर्ण भूमिका को यह कहते हुए रेखांकित किया गया है कि उन्हे 'स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण योजनाओं में स्त्री-पुरुष समानता समाहित करने की नयी शुरुआत तथा बालिकाओं की घटती सख्या पर रोक लगाने

म हमारी सहायता करनी चाहिए पचायतो म महिलाओ का विगत पाच छह वर्षो की भागीदारी से यह सिद्ध हो गया है कि लैगिक असतुलन मे सुधार तथा महिलाओ के हितो को प्रोत्साहित करने का वे सबसे प्रभावशाली एव सवेदनशील माध्यम है। पचायतो के माध्यम से समाज की जड़ता को तोड़ने में महिलाओ की सफल भूमिका के नये-नये किस्से आये दिन सामने आ रहे हैं।

अब यह माना जा चुका है कि देश भर में पंचायतों मे 10 लाख महिलाएँ राजनीतिक एवं सामाजिक सशक्तीकरण की लहर ला सकती हैं, बशर्ते निर्णय करने की प्रक्रिया मे महिलाओ को सक्षम किये जानेवाले उपायों को प्रोत्साहित किया जाये।

दो बच्चों का पंचायत विरोधी नियम

राजस्थान, हरियाणा और आध्र प्रदेश ने अपने पंचायती राज कानूनों में अधिकतम दो संतानवाले परिवार के नियम का उल्लघन करनेवाले लोगो पर पचायतों, जिला परिषदो एव नगरपालिकाओ के चुनाव लडने पर रोक लगा दी है। कुछ लोगो ने यह कहते हुए इन उपायों की प्रशसा की है कि इनसे इन तीनों राज्यों की राजनीतिक प्रतिबद्धता जाहिर हो रही है। नि:सदेह जन प्रतिनिधियो को ऐसा आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जिसका जनता अनुकरण करे। संसद से ले कर पचायतो तक जन प्रतिनिधियो को स्वय ही छोटे परिवार के नियम का पालन करना चाहिए। लेकिन सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि राज्यों एव केंद्र का राजनीतिक नेतृत्व क्या स्वयं भी इस सिद्धात का वास्तव मे पालन करेगा? इन राज्यो में हुआ यह है कि जिन लोगो की दो से अधिक सताने हैं, स्थानीय शासन तत्र में उनके हिस्सा लेने पर रोक लगा कर राजनीतिक नेतृत्व ने एक बड़े वर्ग पर अपनी इच्छा थोप दी है। यहाँ उठनेवाला एक स्वाभाविक प्रश्न यह है कि जब विधान सभाओ अथवा संसद जैसी उच्चस्तरीय संस्थाओं के लिए ऐसा कोई कानून नहीं है, तो फिर इस पंचायती राज पर क्यों आरोपित किया जाये?[8]

तीन राज्यो (राजस्थान, हरियाणा तथा आध्र प्रदेश) के पचायत प्रतिनिधियो के लिए दो संतान के नियमवाले इस कानून के अन्य परिणाम भी चिंताजनक ही है। उदाहरण के लिए हरियाणा राज्य को लिया जाये। यहा स्त्री-पुरुष अनुपात (874 1000) देश भर में न्यूनतम है। राजस्थान भी इस मामले में कोई पीछे नहीं है। इस राज्य मे स्त्री-पुरुष अनुपात प्रति 1000 पुरुषो के मुकाबले 913 महिलाओं का है। अलबत्ता आंध्र प्रदेश में प्रति 1000 पुरुषों के मुकाबले 973 महिलाएँ होने के चलते लैगिक अनुपात कुछ बेहतर है। इन तीनो राज्यों मे पंचायती राज्य के विभिन्न स्तरो की संस्थाओ के लिए लगभग 5,00,000 प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाता है। इनमे 1,50,000 से ज्यादा महिलाएँ होगी। यदि इन सीटो के लिए चुनाव में मुकाबला हो, तो कम से कम 10,00,000 उम्मीदवारों को मैदान में होना चाहिए।

ऐसे में इन राज्यो मे अपने गाँव, ब्लॉक अथवा जिला परिषद स्तर पर नेतृत्व की समुचित योग्यतावाले इतने सारे लोग कैसे उपलब्ध होंगे; क्योंकि अभी तक चलन बड़े परिवारो का ही है? क्या दो बच्चो का नियम बहुत-से दंपतियों को स्थानीय चुनाव मे उम्मीदवार बनने से नही रोकेगा? सदियो पुराने सामाजिक एव आर्थिक शोषण के शिकार लोगो को लोकतान्त्रिक संस्थाओ से इस तरह वंचित रखने की यह प्रक्रिया अलोकतान्त्रिक है। उन गरीब गॉववालों (महिलाओं के मामले में यह वात और भी गंभीर है) पर अचानक यह नियम थोप कर विधि निर्माताओ ने शहरी अभिजन के साथ मिल कर सामाजिक यथार्थ की अनदेखी की है। आध्र प्रदेश की जनसख्या वृद्धि दर 23.91 प्रतिशत है, हरियाणा की 26.27 प्रतिशत और राजस्थान की 28.07 प्रतिशत। आध्र प्रदेश और हरियाणा में शिशु मृत्यु दर 71 है और राजस्थान मे 84 है। राजस्थान मे इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज का वुनियादी अनुभव यह है कि पचायत सदस्यो के लिए अधिकतम दो सतान के नियम का खमियाजा महिलाओं को ही भुगतना पड रहा है। तीसरी सतान पैदा होने पर पंचायतो के बहुत-से पुरुष सदस्य अपनी सदस्यता बचाने के लिए अपने पितृत्व को नकार कर पत्नी को 'कागजी' रूप से तलाक दे देते है।[9]

शिक्षा ही कुंजी है

आबादी को स्थिर करने की कुजी है, शिक्षा। तिहत्तरवें संविधान सशोधन की ग्यारहवी अनुसूची मे पचायतो को विभिन्न प्रकार की शिक्षा की जिम्मेदारी सौपी गयी है

1. प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा,
2. तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा, तथा
3. प्रौढ एवं अनौपचारिक शिक्षा एवं पुस्तकालय।[10]

दुनिया भर मे अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि को रोकने का सर्वश्रेष्ठ उपाय महिलाओ की शिक्षा को माना गया है। साक्षरता दर के बारे में कहा जा सकता है कि हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्रों में यह सिर्फ 49.9 प्रतिशत है, राजस्थान की ग्रामीण आबादी में 69.6 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं एवं आध्र प्रदेश में यह दर 64.3 प्रतिशत है। इन राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रो मे (सात वर्ष एवं उससे अधिक उम्र की) महिलाओ की साक्षरता दर 1991 की जनगणना के अनुसार इस प्रकार है : राजस्थान 11 59 प्रतिशत, आध्र प्रदेश 23.92 प्रतिशत तथा हरियाणा 32.51 प्रतिशत।

इस लिहाज से पंचायतो की जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शिक्षा को पंचायतो के अंतर्गत लाने के लिए कोई असरदार उपाय नहीं किया गया है, जिसके कारण संपूर्ण साक्षरता की राह दिन पर दिन लबी होती जा रही है। इसका एक और दुष्परिणाम यह हो रहा है कि शिक्षा पर निर्भर अन्य मुद्दे भी पिछड़ रहे हैं, जिससे परिवार कल्याण को भारी नुकसान हो रहा है। कई अध्ययनो

से यह स्पष्ट हुआ है कि जहॉ-जहॉ प्राथमिक और उच्च स्कूली शिक्षा पचायतो के अतर्गत कर दी गयी है, वहॉ-वहॉ शिक्षण की गुणवत्ता तथा शिक्षको एवं छात्रों दोनो की ही कक्षा-उपस्थिति काफी हद तक सुधरी है।[11]

आइए, इन दो महत्वपूर्ण कारणो, महिलाओ की भागीदारी एव शिक्षा, के लिहाज से तीन राज्यों केरल, पश्चिम बगाल और उत्तर प्रदेश की स्थिति का जायजा ले। केरल को इसलिए चुना गया है कि वह इन दोनों क्षेत्रो मे उपलब्धियो के हिसाब से शीर्ष राज्य है। पश्चिम बगाल मध्यम तथा उत्तर प्रदेश न्यूनतम स्तर पर है।

केरल : भारत एवं केरल के उपलब्ध ऑकड़ों से यह एकदम स्पष्ट है कि जन्म दर पर प्रभाव डालनेवाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हैं साक्षरता, शिशु मृत्यु दर एव जीवन प्रत्याशा का स्तर।

रैटक्लिफ तथा अन्य विद्वानो के अध्ययनो से यह सिद्ध हुआ है कि गरीब परिवारो मे अधिक सतानो से होनेवाले लाभ से जुडी उनकी आवश्यकता घट रही है। बच्चों के पालन-पोषण पर बढते खर्च के साथ-साथ बेहतर स्वास्थ्य उपायो के द्वारा जीवित रहने की अधिक उम्मीद तथा वृद्धावस्था में सुरक्षा की आशा ने गरीब परिवारों को अधिक बच्चे रखने की जरूरत और प्रोत्साहन को कम कर दिया है।[12] जॉन रैटक्लिफ ने इस मुद्दे को इन शब्दों में रखा है : '(केरल में) सीधे और शुद्ध रूप से समता के सामान्य सरोकारो पर आधारित विकासकारी रणनीतियो के क्रियान्वयन के द्वारा विकास के लक्ष्य हासिल किये गये है। इनसे उभरी अधिक न्यायपूर्ण एव समतापरक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कारण केरल भारत के अन्य राज्यों से बेहतर दिखाई दे रहा है। उसी के कारण इसका जनसाख्यिक चरित्र भी अलग से दिख रहा है। केरल के अनुभव से यह सैद्धातिक अवधारणा सही सिद्ध हो रही है कि जनन क्षमता के उपयोग में कमी उन सार्वजनिक नीतियो से आती है, जिनसे पूरे समाज मे सामाजिक न्याय एवं आर्थिक समानता निर्णायक रूप से बढते हैं।'[13]

इसमे कोई सदेह नहीं है कि केरल ये उपलब्धियॉ जन आंदोलनों और सामुदायिक भागीदारी के बलबूते ही हासिल कर पाया है। केरल का यह विशिष्ट इतिहास है कि वहॉ सुधारवादी एवं राजनैतिक आंदोलनों के शुरू होने से पहले सामुदायिक सगठनो ने, वे चाहे जाति आधारित हों या धर्म आधारित, सामाजिक जागरूकता के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। ऐसे आदोलनो के कारण ही बीसवीं शताब्दी के 40, 50 और 60 के दशक में सामाजिक जागरूकता शीर्ष पर थी। इसी का परिणाम है कि 'केरल मे स्वास्थ्य की देखभाल जन अधिकार है। आम लोगो ने उसके लिए सघर्ष किया है। वे इसकी अपेक्षा करते है। वे इसकी मॉंग करते हैं। वे इसे बरकरार रखने, सुधारने एव बढाने के लिये सघर्षरत है।'[14] केरल के गॉवों मे पंचायतें 73वें सविधान संशोधन से पहले से ही सामाजिक जीवन मे काफी सक्रिय भूमिका निभा रही थी। कोचीन और ट्रावनकोर मे 1925 से पंचायतें सक्रिय है। जॉन मेंकर के

हवाले से पी.आर. गोपीनाथन नायर ने भी स्वास्थ्य एवं साक्षरता का काफी ऊँचा स्तर तथा निम्न जन्म दर हासिल करने मे स्थानीय समर्थन की बडी भूमिका पर जोर दिया है।[15] राज्य की जनता के सोच मे 73वें सशोधन के बाद रेडिकल परिवर्तन आया है।

केरल सरकार के स्वास्थ्य मंत्री ने 1997 में दिल्ली के एक भाषण मे कहा था, 'जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमो मे स्वयसेवी सस्थाओ तथा गैरसरकारी संगठनो की सेवाओं का प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया गया है। स्वास्थ्य शिक्षण की गतिविधियो तथा अभियानों एव सेवा शिविरों, मेलों आदि स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा आयोजन मे महिला समाजो, युवा क्लबो, खेल क्लबों एवं अन्य सामाजिक-सास्कृतिक सगठनो का सक्रिय रूप से शामिल किया गया है। वित्तीय दिक्कतों के बावजूद जन स्वास्थ्य सेवा में सुधार के लिए हमारी प्रतिबद्धता बरकरार है। हाल में सरकार ने नियोजन के विकेंद्रीकरण के लिए अभियान शुरू किया है। स्वास्थ्य सुविधाओं के प्रबंधन को भी विकेंद्रीकृत करने की योजना है। इससे आशा है कि स्वास्थ्य सेवाएँ लोगो की आवश्यकताओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनेंगी। इससे स्वास्थ्य सेवाओ में बचाव के बजाय उपचार के प्रति बढ़ रहे रुझान को संतुलित करने मे भी सहायता मिलेगी।'[16]

परिवार नियोजन को लोकप्रिय बनाने मे शिक्षा की प्रमुख भूमिका का उल्लेख करते हुए तथा जनसख्या स्थिरता के लिए अपने प्रयास जारी रखने की प्रतिबद्धता जताते हुए स्वास्थ्य मत्री ने आगे कहा, 'हम इस दिशा में अपने प्रयास और भी तेजी से जारी रखने के लिये प्रतिबद्ध है। केरल ने परिवार कल्याण को जनता के कार्यक्रम के रूप में स्वीकार किया है। अपने ससाधनो मे से शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए भारी राशियाँ उपलब्ध करा कर सरकार जनता की उम्मीदों को पूरा करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जता रही है।'[17]

केरल के 73वे सविधान संशोधन के बाद की स्थिति के अध्ययन के बाद सामाजिक स्वास्थ्य के पैरोकार डॉ. एन एच. अतिया ने ये विचार प्रकट किये थे, 'पंचायती राज इस अत्यंत किफायती एव मानवीय दृष्टिकोण के रूपायन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उपलब्ध कराता है, जिससे असली फायदा डॉक्टरो तथा स्वास्थ्य कार्यकर्ताओ को नही, बल्कि जनता को मिलता है। यह स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण है।'[18]

पश्चिम बंगाल : आम जनता एव उसके प्रतिनिधियों की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए पश्चिम बगाल में विभागीय कामकाज के लोकतंत्रीकरण के प्रयासों का प्रयोग चल रहा है। इस भागीदारी को औपचारिक रूप देने के लिए विभिन्न सलाहकार समितियाँ बनायी गयी है। राज्य स्तर पर स्वास्थ्य शिक्षा, दवाओ की खरीद एव वितरण आदि के लिए तकनीकी सलाहकार समितियाँ बनायी गयी हैं। प्रत्येक जिले में विभागीय गतिविधियों की निगरानी के लिए सभाधिपति की अध्यक्षता मे

अधिकार सपन्न जिला स्वास्थ्य समिति बनायी गयी है। स्वास्थ्य सबधी प्रत्येक नयी परियोजना को जिला स्वास्थ्य समिति ही स्वीकृति दे, इस व्यवस्था पर विचार किया जा रहा है। जिला परिषदो एव पचायत समितियो मे स्वास्थ्य संवधी स्थायी समितियॉ बनायी गयी हैं तथा ग्राम पंचायतो मे स्वास्थ्य सेवा एव स्वास्थ्य अभियान की जिम्मेदारी पचायत के ही एक सदस्य को सौपने की व्यवस्था की गयी है।[19]

राज्य मे 22 वर्ष के पचायती राज के वाद अब साक्षरता एव परिवार कल्याण दोनो ही मोर्चो पर सफलता मिलती दिख रही है। पश्चिम वंगाल मे इन मुद्दों के सबध मे स्थानीय निकायो के कार्यकलाप की दिलचस्प झलक डच विद्वान जी.के. लीटन द्वारा 1995 में किये गये अध्ययन में मिलती है। इस अध्ययन के अनुसार, 'जमीनी स्तर पर शोध के नतीजे जता रहे हैं कि गॉवों मे अधिकतर गरीव लोग यह महसूस कर रहे हैं कि गॉव के मामलो मे उनके अधिकार बढे है तथा विशेषकर ग्राम सभाओ के कारण ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में उनकी जानकारी बढी है।'[20] पश्चिम बंगाल मे पचायतो ने महिलाओ को समाज मे बेहतर स्थान दिलाया है। लीटन के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि देश के ग्रामीण इलाको मे पचायतें दूसरी क्राति ला सकती हे। ग्रामीण महिलाओ की परिस्थितियो में सर्वागीण सुधार के लिए पंचायतों के नये विधायी प्रावधान ठोस शुरुआत का माध्यम बन सकते है।[21] मेमारी जैसी पंचायतो की वर्तमान महिला सदस्यो ने दिखा दिया है कि मौका मिलने पर महिलाऍ भी अपनी योग्यता सिद्ध कर सकती है। शर्मीली और सीधी-सादी दिखनेवाली एक महिला सदस्य ने बताया कि 'पंचायतो और दूसरे मचों पर मै जरूर दखल देती हूँ। यदि मैं नही बोलूँगी, नो कौन वोलेगा?'[22]

साक्षरता एवं परिवार नियोजन के लिए दूरदराज के गॉवों (उदाहरण के लिए, मेमारी ही) में भी उल्लेखनीय अभियान चल रहे हैं। शिक्षा मे पचायतों की भूमिका पर नये सिरे से दिये जा रहे जोर के बारे में लीटन का कहना है, 'स्थायी आर्थिक विकास के लिए चूँकि बेहतर स्वास्थ्य स्तर एव शैक्षिक उपलब्धियॉ अत्यत आवश्यक हे, इसलिए गॉवो मे शिक्षा तथा प्रौढ शिक्षा कार्यक्रमों को पचायतो ने अपने हाथ मे ले लिया है। पश्चिम वंगाल सबको शिक्षित करने के लिए कमर कसता दिखाई दे रहा है, जिससे विकास की सभावनाऍ बढेगी।'[23] शिक्षा के माध्यम से परिवार नियोजन का संदेश धीरे-धीरे पश्चिम बगाल के गॉवो मे पहुँच रहा है।

उत्तर प्रदेश : केरल और पश्चिम वंगाल मे जो कुछ घटित हो रहा है, उसके ठीक विपरीत 13 9 करोड़ की आबादीवाले उत्तर प्रदेश मे परिवार कल्याण अथवा विकास संबधी मुद्दो को अभी तक स्थानीय निकायों द्वारा कोई प्राथमिकता नही दिया जाना चिंताजनक है। उत्तर प्रदेश के तीन जिलों—मुजफ्फरनगर, जौनपुर और रायबरेली—मे जी.के. लीटन और रवि श्रीवास्तव द्वारा 1990 से 1997 के बीच किये गये अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि इस इलाके में पचायतो को बहुत अधिक सामाजिक महत्व नही मिला है।

लीटन और श्रीवास्तव ने तीन क्षेत्रो मे अत्यत निर्धन, मध्यवर्गीय परिवारो की प्राथमिकताओ का अध्ययन किया था। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि सबसे निर्धन लोग परिवार नियोजन को विकास एव बढाने का माध्यम मानने को तैयार नहीं हैं। उनके परिवार बडे हैं, फि लिए परिवार कल्याण की कोई अहमियत नहीं है। अध्ययनकर्ता अतत. पर पहुँचे है कि सबसे गरीब तबके के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम है और परिवार नियोजन जैसे विकासमूलक कार्यक्रम उनकी प्राथमिकता 'गरीब और सबसे गरीब ग्रामीणो को परिवार नियोजन के परिणामो मे फायदा नही दिखाई देता। अत्यंत गरीब परिवारो तथा एक हद तक गरीब भी खास तौर पर सपत्ति के बँटवारे यानी भूमि सुधारो में ही अधिक लाभ ि

इन क्षेत्रो मे सरकारी तंत्र मे व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण ज्यादातर लोग एवं सही प्रशासन के पक्ष मे थे। उदाहरण के लिए, मुजफ्फरनगर एक है और वहाँ 240 लोगों के सर्वेक्षण (वर्ष 1994 के मध्य में) से ये उल्ले हासिल हुए :

मुजफ्फरनगर में विकास की प्राथमिकताएँ

हस्तक्षेप की किस्म	अत्यंत गरीब	गरीब	मध्यवर्गीय
परिवार नियोजन	-3.16	-2.00	-0.06
विकास के लिए अधिक वित्त	-2 84	-2.78	-2.20
भूमि सुधार	0.32	-0.63	-3.42
स्वच्छ एव निष्पक्ष प्रशासन	3 37	2.76	3.32
रोजगार का सृजन	2 32	2.52	2.38
बारंबारता (एन)	19	92	69

स्रोत - जी के लीटन एव रवि श्रीवास्तव, *अनइक्वल पार्टनर्स : पावर रिलेशस, f डेवलपमेंट इन उत्तर प्रदेश*, सेज पब्लिकेशस, 1999, पृ 249

ये निष्कर्ष दो अन्य जिलो, जौनपुर एवं रायबरेली, से कमोबेश हैं।

इस प्रकार, छोटे परिवार के आदर्श का महत्व उन लोगों की सम नही आता, जिनके लिए यह सबसे अधिक फायदेमद है—गाँवों के निर्धन

निर्धन। विकास की प्राथमिकताओं के पैमाने में लीटन एवं श्रीवास्तव द्वारा सर्वेक्षित तीनो जिलो के ग्रामीण समाज के विभिन्न तबको द्वारा परिवार नियोजन को दी गयी प्राथमिकता उनकी आवश्यकता के विपरीत अनुपात मे है—ऊँचे तबकों के लोगो की तुलना मे गरीब और अत्यत गरीब अपने जीवन पर इसके प्रभाव का बहुत कम फायदा समझते हैं। गरीबो द्वारा छोटे परिवार के आदर्श का समर्थन न करने के ठोस कारण हो सकते हैं लेकिन इस बात से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि उनके इस रवैये मे सुधारात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए पंचायते सर्वथा उपयुक्त हे, क्योंकि वे प्राथमिक स्तर पर लोकतात्रिक पद्धति से चुन कर बननेवाली संस्थाएँ हे और गॉववालो से उनका निरंतर और सीधा संपर्क रहता है।

निर्धन तथा अत्यत निर्धन व्यक्तियों द्वारा जनसंख्या स्थिरता को कम महत्व दिये जाने का कारण आम तौर पर आर्थिक मजबूरी माना जाता है। वे बच्चो मे आर्थिक संसाधन की गुंजाइश देखते है और उन्हें लगता है कि वे परिवार की जरूरतो को पूरा करने में हाथ बॅटा सकते है। ग्रामीण भारत के ज्यादातर गरीबो की आम तौर पर यही मान्यता है, मगर महिलाएँ विशेष रूप से इस प्रवृत्ति मे अपने लिए सहारा ढूँढती हैं। महिलाओ के पास चूँकि कमाई का कोई जरिया नहीं है, इसलिए वे ज्यादा बच्चो के होने पर उनके द्वारा अपने काम मे हाथ बॅटाने की आशा करती है, ताकि वे स्वय बाहर निकल कर किसी कामकाज के जरिये थोडा पैसा कमा सके। इसी से यह भी स्पष्ट होता है कि अत्यत गरीब और गरीब लोग भूमि सुधारो के जरिये सपत्ति के बँटवारे को परिवार नियोजन से ज्यादा अहम क्यो मानते हैं। उल्लेखनीय है कि तिहत्तरवें संविधान सशोधन में पचायतों को भूमि सुधार का कार्यान्वयन करने की भूमिका भी सौपी गयी है। यह भूमिका निभाने के साथ-साथ यह आवश्यक है कि पंचायते शैक्षिक एव परिवार कल्याण तथा बच्चों के जन्म मे अतर रखने जैसे अन्य कार्यक्रमो मे भी पूरी तरह भागीदार रहे।

उत्तर प्रदेश मे पचायते कमजोर है एव वहॉ अब तक किसी भी सरकार ने तिहत्तरवें संविधान सशोधन को मुकम्मल तौर पर लागू करने में कोई दिलचस्पी नही दिखायी है, इसी के नतीजे उपर्युक्त अध्ययन में परिलक्षित हो रहे हैं।

उपसंहार

अब मै जमीनी स्तर पर काम करने के दौरान हासिल अनुभवो से उपलब्ध कुछ अतर्दृष्टियों को रेखाकित करना चाहूँगा।

एक, स्थानीय सरकारी सस्थाएँ, पचायते तथा नगरपालिकाएँ जनसख्या स्थिरता कार्यक्रमो को चलाने का सबसे प्रभावशाली माध्यम हैं।

दो, किसी भी जनसख्या स्थिरता नीति की सफलता के लिये जनता की भागीदारी एव शिक्षा मुख्य तत्व हैं। यह महिलाओ के मामले मे विशेष रूप से सच है, क्योकि

परिवार कल्याण कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने मे उन्हे पूरी तरह अपने साथ जोड कर तथा उनकी प्रभावशाली हिस्सेदारी सुनिश्चित करके ही सफलता पायी जा सकती है।

तीन, स्थानीय निकायो को जनसख्या नियत्रण के आधुनिकतम उपायो एव उपकरणो की जानकारी लगातार हासिल करते रहना चाहिए। इसके साथ ही, परिवार कल्याण, पोषण, घरेलू आर्थिक प्रबंधन, श्रम बचाने की प्रौद्योगिकी तथा रोजगारपरक परियोजनाओं की भी जानकारी हासिल कर उसे सामूहिक बैठको अथवा निजी सपर्क के जरिये अपने क्षेत्र के लोगो तक पहुँचाते रहना चाहिए।

चार, पहले पचायतो को प्रजनन की आयुवाली महिलाओ को जनसख्या नियत्रण परियोजनाओ मे शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करने अथवा उनके तौर-तरीके बदलने मे बहुत कम सफलता मिलती थी। इसका एक कारण शायद यह था कि ग्रामीण महिलाओं के लिए पचायतो द्वारा किये जा रहे इन प्रयासो का कोई विशेष महत्व नहीं था। अतः पंचायत सदस्यों को ग्रामीण महिलाओं के लिए स्वास्थ्य एवं जनसख्या से संबंधित उच्च प्राथमिकतावाले क्षेत्रो की पहचान अवश्य करनी चाहिए। रणनीति यह होनी चाहिए कि उन्हे स्वास्थ्य के मुद्दों से जोड कर परिवार के आकार के मुद्दो की तरफ आकर्षित किया जाये।'

पॉच, पितृसत्तात्मक ग्रामीण परिवारों मे आम तौर पर औरतों की बात पंचायतो द्वारा नही सुनी जाती। इस बारे मे पुरुषों को अपना व्यवहार बदलने के लिए शिक्षित करना और मनाना आवश्यक है। यह कार्य ग्रामीण क्षेत्र मे छोटे परिवारों के फायदो का प्रचार करके किया जा सकता है। इस मामले में निर्वाचित पंचायते महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

छह, पुरातनपंथी रिवाजों, मान्यताओं एव रवैयों को खत्म करने के लिए अथक प्रयास करने की जरूरत है। नये विचारों का प्रसार करने के लिए सूचना की नवीनतम तकनीकों का उपयोग, वीडियो फिल्मों का प्रदर्शन, सांस्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन आदि का सहारा लिया जाना चाहिए।

सात, परिवर्तन के खिलाफ पारंपरिक प्रतिरोध को तोड़ने के लिए पंचायतो को जनसंचार कार्यक्रमों तथा प्रत्यक्ष सपर्क के द्वारा गाँवों मे जनजागरण अभियान चलाने चाहिए।

अतत , अकसर कहा जाता है कि बिना राजनैतिक इच्छाशक्ति के राष्ट्रीय महत्व का कोई भी कार्यक्रम सफलतापूर्वक नही चलाया जा सकता। मुझे ऐसा लगता है कि जनसंख्या स्थिरता कार्यक्रमों के मामले मे सरकार की राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ-साथ 'पचायती इच्छाशक्ति' अथवा स्थानीय निकायों मे निर्वाचित प्रतिनिधियो की प्रतिबद्धता एव दृढ संकल्प भी उससे ज्यादा नहीं तो कम से कम उतना ही आवश्यक है। क्या नयी सहस्राब्दि मे अनियत्रित जनसंख्या वृद्धि जैसी सर्वाधिक फौरी समस्या

के लिए 'पचायती इच्छाशक्ति' बन पायेगी? जनसख्या नियत्रण मे पचायतो की भूमिका पर केंद्रीय गभीर अभियान आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संदर्भ

1 आंध्र प्रदेश मे 1985 मे पचायती राज प्रणाली की दूसरी पीढी की शुरुआत करते हुए यह विचार तलुगु देशम पार्टी ने प्रचारित किया था।

2 *नौवी पचवर्षीय योजना, 1997-2000,* खड 2, थीमेटिक इश्यूज एड सेक्टोरल प्रोग्राम्स, योजना आयोग, भारत सरकार, पृ 207

3 जनसख्या नीति पर विशेषज्ञ समूह, भारत सरकार के स्वास्थ्य एव परिवार कल्याण मत्रालय को प्रदत्त *राष्ट्रीय जनसख्या नीति का प्रारूप* 21 मई, 1994, पृ 10

4 उपर्युक्त, पृ 3

5 उपर्युक्त, पृ 7-8

6 तिरुवनतपुरम में राज्य योजना बोर्ड ने इस विषय पर कई रिपार्टो एव शोध निष्कर्षो का प्रकाशन किया है।

7 उपर्युक्त, पृ 4

8 जॉर्ज मैथ्यू, द स्वामीनाथन ग्रुप रिपोर्ट, *द हिंदू,* चेन्नई और नयी दिल्ली, 26 अगस्त 1994

9 राजस्थान के अलवर जिले में 1997-1998 के दौरान इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज के रमेश सी नायक द्वारा किये गये अध्ययन पर आधारित। साथ ही देखें रमेश सी नायक, मेन वर्क अगेंस्ट द वीमेन *सरपच, द पायनियर,* नयी दिल्ली, 12 मई 1998

10 शिक्षा के प्रबधन के विकेंद्रीकरण के सदर्भ मे राज्यो के पचायती राज कानूनो के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखे, *रीस्ट्रक्चरिंग ऑफ एलीमेंटरी, प्राइमरी एड नॉनफॉरमल एजुकेशन इन द कॉन्टेक्स्ट ऑफ द न्यू पचायती राज कमीशन रिपोर्ट्स,* पाडुलिपि रिपोर्ट न 8, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, नयी दिल्ली, 1996, पृ 2

11 उदाहरण के लिए देखें, कर्नाटक सरकार, *रिपोर्ट ऑफ द जिला पचायत एड मडल पचायत इवैल्यूएशन कमेटी* (कृष्णमूर्ति कमेटी), 1989

12 रिचर्ड डब्ल्यू फ्राक तथा बारबरा एच चेसिन, की *केरल डेवलपमेंट थ्रू रेडीकल रिफॉर्म्स,* प्रामिला एड कपनी, नयी दिल्ली एव द इस्टीट्यूट फॉर फूड एड डेवलपमेंट पॉलिसी, सैन फ्रासिस्को, 1991 से उद्धृत

13 उपर्युक्त, पृ. 68

14 उपर्युक्त, पृ 69

15 पी आर गोपीनाथन नायर, *डायनॉमिक्स ऑफ डेमोग्राफिक ट्राजिशन इन केरल ए क्रिटिकल एनेलिसिस।* यह पर्चा 'फेक्टर्स अंडरलाइग द सक्सेसफुल परफॉरमेंस ऑफ द सेलेक्टेड स्टेट्स एड द डिस्ट्रिक्ट्स शेयरिंग ऑफ एक्सपीरियेंसेज विद अदर स्टेट्स एड डिस्ट्रिक्ट्स' शीर्षक से ज आर डी टाटा पुरस्कार अर्पण समारोह के अवसर पर नयी दिल्ली मे 13 नवबर 1997 को आयोजित सगोष्ठी मे पढ़ा गया था।

16 भारतीय जनसख्या प्रतिष्ठान द्वारा नयी दिल्ली मे 13 नवबर 1997 को आयोजित सगोष्ठी में ए सी षन्मुखदास का भाषण, पृष्ठ 5-6

17 उपर्युक्त, 5

18 एन एच अतिया, *द सोशल पाथ टु केरल्स हेल्थ,* फाउंडेशन फॉर रिसर्च इन कम्युनिटी हेल्थ,

मुबई, मिमिओ

19 गौरीपद दत्त, *ए प्ली फॉर प्रो-पीपल हेल्थकेयर,* राज्य योजना बोर्ड, कोलकाता, पृ 17

20 जी के लीटन, *डेवलपमेंट, डिवॉल्यूशन एड डेमोक्रेसी विलेज डिस्कोर्स इन वेस्ट बंगाल,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ 223

21 जी.के. लीटन, पूर्व उद्धृत, पृ 218

22 जी के लीटन, पूर्व उद्धृत, पृ 217

23 जी के लीटन, पूर्व उद्धृत, पृ 219

24. जी के लीटन और रवि श्रीवास्तव, *अनइक्वल पार्टनर्स पावर रिलेशस, डिवॉल्यूशन एड डेवलपमेंट इन उत्तर प्रदेश,* सेज पब्लिकेशस, नयी दिल्ली, 1999, पृ 248

6

परिवार कल्याण के उचित उपकरण

यह स्तब्ध कर देनेवाली बात है कि मौजूदा सरकार और उसके नीति निर्माता भारत की जनसख्या की असाधारण वृद्धि से पैदा होनेवाली स्थिति की गभीरता से तनिक भी चितित नही है। दुनिया की कुल भूमि के मात्र 2.4 प्रतिशत का स्वामी होते हुए भी भारत दुनिया की आबादी के 16.7 प्रतिशत लोगो का घर हो गया है (1991 से 2001 की दस वर्षो की अवधि मे भारत की आबादी मे 18.1 करोड की वृद्धि हुई है, जो कनाडा, फ्रास और जर्मनी तीनो की सम्मिलित आबादी के बराबर है), तब भी हमारे शासको ने देश की इस सबसे बडी समस्या का सामना करने के लिए कोई सचेत प्रयास किया हो, ऐसा दिखाई नही पड़ता।

जो दिखाई पडता है, वह यह है कि जनसख्या विस्फोट से जो भयावह सकट कभी भी पैदा हो सकता है, उसे रोकने के लिए क्या किया जा सकता है, इसका कोई सूत्र सरकार और उसके नीति निर्माताओ के पास नही है। विडबना यह है कि इस विषय पर देश मे विचारो का अभाव है, इसलिए नही, बल्कि इसलिए यह किकर्तव्यविमूढता बनी हुई है कि सरकार और उसके कर्ता-धर्ता इन विचारों पर अमल नही करना चाहते और जनसख्या वृद्धि को रोकने के लिए देश मे उपलब्ध ससाधनो का इस्तेमाल नही करना चाहते। इतनी ही कष्टपूर्ण बात यह है कि परिवार कल्याण और जनसख्या स्थिरता के नाम पर जो कदम उठाये जाते है, वे या तो आधे-अधूरे मन से उठाये जाते है या उनके पीछे जमीनी वास्तविकता की कोई समझ नही होती।

दुनिया के दो सबसे ज्यादा आबादीवाले देशो ने जनसख्या वृद्धि पर अकुश लगाने के लिए दो अलग-अलग और परस्पर-विरोधी रास्ते अपनाये थे। चीन ने सर्वसत्तावादी रास्ता अपना कर एक बच्चे का नियम लागू किया और वाछित लक्ष्य हासिल कर दिया। भारत ने दो बच्चों का नियम बनाया और इसे लोकतांत्रिक तरीको से लागू करने का प्रयास किया—जो ज्यादा कठिन और जटिलतर रास्ता है, और अभी तक लक्ष्य-प्राप्ति मे विफल रहा है।

कौन नही जानता कि परिवार कल्याण जैसे उपाय किसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे ऊपर से जारी आदेशों के माध्यम से कारगर नहीं हो सकते। यह मामला दरअसल दृष्टिकोण, व्यक्तिगत निष्ठा, सस्कृति और व्यवहार का होता है, जिसके परिणामस्वरूप समाज की बुनियादी इकाई यानी परिवार के स्तर पर एक मूल्य व्यवस्था का जन्म होता है। यह मूल्य व्यवस्था किसी भी सरकारी आदेश से ज्यादा प्रभावशाली होती है।

चूँकि परिवार स्थानीय समुदाय का एक आवयविक अंग है, परिवार नियोजन जैसे व्यक्तिगत और अतरग विषय पर गॉव या कस्बे के लोगों से बेहतर ढग से इसे कौन प्रभावित कर सकता है? यह काम सलीके से सपन्न करने की स्थिति मे और कौन है--सिवाय पंचायतो और नगरपालिकाओ के, जो लोकतान्त्रिक ढग से निर्वाचित और लोगो के सर्वाधिक करीब होती है?

इस दिशा में विचार और ढॉचागत सभावनाओ के स्तर पर पहला और बेहद असरदार हस्तक्षेप था तिहत्तरवॉ और चौहत्तरवॉ संवैधानिक सशोधन, जिनके माध्यम से पचायतो को 'स्वशासन की सस्थाएँ' बनाया गया और उन्हे परिवार कल्याण, महिला तथा बाल कल्याण, स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा औषधालय जैसे विषय सौपे गये। चूँकि जनसंख्या स्थिरता के लिए बहु-क्षेत्रीय कार्य योजना अपरिहार्य है, शिक्षा, विशेषत- स्त्री शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य और गरीबी उन्मूलन जैसे विषय, जो एक-दूसरे को प्रभावित करते है, पचायतो के अधीन कर दिये गये।

इन संविधान संशोधनों के बाद से ही, जनसख्या स्थिरता की दिशा में स्थानीय शासन के निकायों की निर्णायक भूमिका को भारत सरकार के प्रायः सभी नीति-दस्तावेजों मे बार-बार चिह्नित किया गया है। लेकिन क्या राजनेताओं या उनकी मातहती मे काम करनेवाले अफसरों ने दस साल बाद भी इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर संवैधानिक संशोधन की अर्थपूर्णता का कभी अहसास किया है? उत्तर है, नही।

इस सदर्भ में यह याद करना दिलचस्प होगा कि आठवीं पंचवर्षीय योजना से ही सरकारी चितन और दस्तावेजीकरण इस बात पर केंद्रित होने लगा था कि परिवार कल्याण के लक्ष्य को विकेंद्रित योजना निर्माण और कार्यान्वयन से ही हासिल किया जा सकता है। आठवीं योजना के दस्तावेज में कहा गया था कि चूँकि सामाजार्थिक तथा जनसांख्यिक दृष्टि से हर क्षेत्र अपने आपमें विशिष्ट है और देश भर मे काफी विविधता है, परिवार नियोजन के लक्ष्यो को निर्धारित करने के लिए पचायते ही आदर्श इकाइयॉ है। अतः जनसख्या स्थिरता के कार्यक्रमों का विश्लेषण, योजना निर्माण और प्रशासन पंचायत स्तर से ही शुरू होना चाहिए। 1994 मे, एम.एस. स्वामीनाथन विशेषज्ञ समिति ने जोर दे कर कहा था कि परिवार कल्याण कार्यक्रमों का जो मौजूदा स्तूपनुमा ढॉचा है, उसे हटा कर उसके स्थान पर पचायतो और नगरपालिकाओं के जरिये विकेंद्रित

कौन नहीं जानता कि परिवार कल्याण जैसे उपाय किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऊपर से जारी आदेशों के माध्यम से कारगर नहीं हो सकते। यह मामला दरअसल दृष्टिकोण, व्यक्तिगत निष्ठा, संस्कृति और व्यवहार का होता है, जिसके परिणामस्वरूप समाज की बुनियादी इकाई यानी परिवार के स्तर पर एक मूल्य व्यवस्था का जन्म होता है। यह मूल्य व्यवस्था किसी भी सरकारी आदेश से ज्यादा प्रभावशाली होती है।

चूँकि परिवार स्थानीय समुदाय का एक आवयविक अंग है, परिवार नियोजन जैसे व्यक्तिगत और अतरंग विषय पर गॉव या कस्बे के लोगों से बेहतर ढग से इसे कौन प्रभावित कर सकता है? यह काम सलीके से संपन्न करने की स्थिति मे और कौन है—सिवाय पचायतों और नगरपालिकाओं के, जो लोकतांत्रिक ढग से निर्वाचित और लोगो के सर्वाधिक करीब होती हैं?

इस दिशा में विचार और ढॉचागत सभावनाओ के स्तर पर पहला और बेहद असरदार हस्तक्षेप था तिहत्तरवॉ और चौहत्तरवॉ संवैधानिक सशोधन, जिनके माध्यम से पचायतों को 'स्वशासन की सस्थाऍ' बनाया गया और उन्हे परिवार कल्याण, महिला तथा बाल कल्याण, स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केद्र तथा औषधालय जैसे विषय सौंपे गये। चूँकि जनसंख्या स्थिरता के लिए बहु-क्षेत्रीय कार्य योजना अपरिहार्य है, शिक्षा, विशेषतः स्त्री शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य और गरीबी उन्मूलन जैसे विषय, जो एक-दूसरे को प्रभावित करते है, पचायतो के अधीन कर दिये गये।

इन संविधान सशोधनो के बाद से ही, जनसख्या स्थिरता की दिशा मे स्थानीय शासन के निकायो की निर्णायक भूमिका को भारत सरकार के प्रायः सभी नीति-दस्तावेजो मे बार-बार चिह्नित किया गया है। लेकिन क्या राजनेताओ या उनकी मातहती मे काम करनेवाले अफसरों ने दस साल बाद भी इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर संवैधानिक सशोधन की अर्थपूर्णता का कभी अहसास किया है? उत्तर है, नहीं।

इस सदर्भ में यह याद करना दिलचस्प होगा कि आठवीं पंचवर्षीय योजना से ही सरकारी चिंतन और दस्तावेजीकरण इस बात पर केंद्रित होने लगा था कि परिवार कल्याण के लक्ष्य को विकेंद्रित योजना निर्माण और कार्यान्वयन से ही हासिल किया जा सकता है। आठवीं योजना के दस्तावेज में कहा गया था कि चूँकि सामाजार्थिक तथा जनसांख्यिक दृष्टि से हर क्षेत्र अपने आपमे विशिष्ट है और देश भर में काफी विविधता है, परिवार नियोजन के लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए पचायतें ही आदर्श इकाइयाँ है। अतः जनसंख्या स्थिरता के कार्यक्रमों का विश्लेषण, योजना निर्माण ओर प्रशासन पंचायत स्तर से ही शुरू होना चाहिए। 1994 मे, एम एस. स्वामीनाथन विशेषज्ञ समिति ने जोर दे कर कहा था कि परिवार कल्याण कार्यक्रमों का जो मौजूदा स्तूपनुमा ढॉचा है, उसे हटा कर उसके स्थान पर पचायतो और नगरपालिकाओं के जरिये विकेद्रित

लोकतांत्रिक योजना निर्माण का चौरस ढांचा स्थापित किया जाना चाहिए, क्योंकि इन स्थानीय निकायों से विकेंद्रित कार्रवाई के लिए अवसरों का एक नया समवाय उपलब्ध हो गया है। इस विशेषज्ञ समिति ने सिफारिश की कि जनसंख्या स्थिरता के कार्यक्रम बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए जिला स्तर पर जनसंख्या तथा सामाजिक विकास समितियों की स्थापना की जानी चाहिए। इस सिफारिश पर कोई कार्रवाई नहीं हुई।

उसके छह साल बाद, 2000 में, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (राजनी, 2000) ने स्वास्थ्य योजनाओं के निर्माण और कार्यान्वयन में पंचायतों और नगरपालिकाओं की केंद्रीय रणनीतिक भूमिका को चिह्नित किया। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के दस्तावेज में कहा गया : 'चूँकि निर्वाचित पंचायतों की 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हैं, जनसंख्या स्थिरता के लिए स्त्री-पुरुष की हैसियत के प्रति संवेदनशील और बहुक्षेत्रीय एजेंडा के संवर्धन के लिए पंचायतों की प्रतिनिधिक समितियाँ (जिनकी सदारत कोई निर्वाचित महिला प्रतिनिधि करे) बनायी जानी चाहिए जो 'स्थानीय स्तर पर सोचेंगी, योजना बनायेंगी और काम करेंगी और राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग देंगी।' ये समितियाँ गर्भाधान और प्रजनन से संबंधित स्वास्थ्य सेवाओं के लिए अपने क्षेत्र की विशेष स्थितियों में उपेक्षित जरूरतों की पहचान करेंगी और गाँव के स्तर पर जरूरत-आधारित, माँग-प्रेरित सामाजिक-जनसांख्यिक योजनाओं का निर्माण करेंगी, जिनका उद्देश्य होगा गर्भाधान, प्रजनन तथा शिशुओं की बुनियादी स्वास्थ्य-सुश्रूषा के लिए संवेदनशील, जन-केंद्रित, आवयविक रूप में समन्वित तथा एकाग्र कार्य करना। जन्म, मृत्यु, विवाह और गर्भावस्था के अनिवार्य पंजीकरण, छोटे परिवार के मानक को व्यापक स्वीकृति दिलाने, सुरक्षित जचगी बढ़ाने, शिशु तथा मातृ मृत्यु दर की दरों में कमी लाने और चौदह साल की उम्र तक अनिवार्य शिक्षा का संवर्धन करने में जो पंचायतें आदर्श तथा अनुकरणीय उदाहरण पेश करेंगी, उन्हें राष्ट्रीय स्तर प मान्यता दी जा सकती है और सम्मानित किया जा सकता है।

राजनी 2000 ने कुछ लक्ष्य भी निर्धारित किये थे। तात्कालिक लक्ष्य था स्वास्थ्य सुविधाओं के बुनियादी ढाँचे का निर्माण, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की संख्य बढ़ाना, माँ-शिशु के लिए बुनियादी एकान्वित सुविधाएँ मुहैया कराना और गर्भनिरोधक की जरूरत पूरी करना। मध्यवर्ती काल का लक्ष्य था : अंतर-क्षेत्रीय कार्यक्रमों अ रणनीतियों के सशक्त कार्यान्वयन के माध्यम से 2010 तक समग्र उर्वरता दर व प्रतिस्थापन दर तक ले आना। दीर्घकालीन लक्ष्य था : 2045 तक जनसंख्या की स्थिरत सुनिश्चित करना। नवीनतम नीति दस्तावेज पर आये, तो दसवीं योजना के दस्तावे में भी जनसंख्या के स्थिरीकरण का लक्ष्य हासिल करने के लिए स्थानीय स्तर ' योजना निर्माण, परिवेक्षण तथा कार्यक्रमों को बीच अवधि में ही सुधारने की प्रक्रि में पंचायतों को शामिल करने के महत्व पर जोर दिया गया है।

नीति दस्तावेजो को स्वीकार करने के बाद सरकार को उन पर अमल करने के लिए दृढ और कठोर कदम उठाने चाहिए थे। लेकिन दुखद स्थिति यह है कि आज 2003 में भी ये सभी योजनाएँ कागज पर ही है।

वर्तमान स्थिति का निचोड़ दो सरोकारो मे व्यक्त होता है। एक, स्थानीय सरकार की संस्थाओ को मजबूत करना, निर्वाचित प्रतिनिधियो तथा पंचायत कर्मियो के क्षमता निर्माण और बुनियादी ढॉचे के विकास में विनियोग करना। दो, विशेषतः जनसंख्या स्थिरता से सबधित क्षेत्रो मे शिक्षा और चेतना के प्रसार, जागरूकता बढ़ाने की प्रक्रिया और कार्यक्रमो में विनियोग करना।

इन सरोकारों को कैसे चरितार्थ किया जा सकता है? इसके लिए सबसे पहले जरूरी यह है कि स्थानीय सरकार की संस्थाओ के पास करने के लिए कार्य, कार्य निष्पादन के लिए कर्मचारी और कोष तथा कार्यपद्धति मे स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लोगो की यह शिकायत दूर की जानी चाहिए कि केंद्रीय सरकार से ले कर राज्य सरकारो तक, जिनके पास भी कुछ ताकत है, वे सभी पचायतों और नगरपालिकाओ को कमजोर करने मे एक-दूसरे से प्रतिद्वद्विता कर रहे है। यह काम कभी बहुत बारीकी से और अकसर बहुत ही स्थूल ढग से हो रहा है।

दूसरे, मौजूदा स्थिति के सकेतों को समझते हुए, भविष्य की रणनीति इस तरह बनायी जानी चाहिए कि भविष्य मे देश के प्रत्येक गॉव को 'लघु गणराज्य' बनाने के लिए जनता को जाग्रत और लामबंद किया जाये और उसकी अंतश्चेतना को उभारा जाये।

यह उचित समय है जब शासन प्रणाली मे जनसाधारण की भूमिका के बारे मे जागरूकता तथा प्रतिबद्धता पैदा करने के लिए एक आक्रामक अभियान चलाया जाये। स्त्रियों और वंचित वर्गो को उनका प्राप्य मिल सके, इस दिशा में विशेष प्रयास की जरूरत है। इस अभियान का एक केंद्र-बिदु होना चाहिए पंचायतो के माध्यम से विकेंद्रित शासन, ताकि ग्रामीण विकास के केंद्रीय मुद्दों पर कारगर काम किया जाये और यहाँ स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए—साथ ही बरबादी और चोरी खत्म करने, संसाधनों को बनाये रखने और संपत्ति निर्माण करने के माध्यम से लोगों की गरीबी दूर करने और आय बढाने की भी कोशिश होनी चाहिए। परिवार कल्याण के उपायो का प्रचार-प्रसार करने में ग्राम सभा की भूमिका एक और महत्वपूर्ण सरोकार है।

यह अभियान जन सामान्य यानी गॉवो मे रहनेवालों के बीच सीमित नहीं रहना चाहिए। इसमें नीति निर्माताओ, विधायकों, सांसदो, राजनीतिक दलो के नेताओ, नोकरशाहों तथा जनमत निर्माताओं, जन सचार माध्यमों—खासकर प्रेस और टेलीविजन—और बुद्धिजीवियों को भी शामिल किया जाना चाहिए। ग्रामीण विद्यालयो के शिक्षकों और छात्रो, महिला संगठनों तथा अन्य गैरसरकारी संगठनों को इस अभियान

का वाहक बनाया जा सकता है।

सरकार नीतियों और कार्यक्रमो के लिए दिशा-निर्देश तैयार कर सकती है, पर योजना निर्माण और कार्यान्वयन मे दूसरे घटको को आगे आना चाहिए। फिलहाल देश मे 595 जिले है। मौजूदा वातावरण में सर्वोत्तम तरीका यह है कि औद्योगिक तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों, कंपनियों और सार्वजनिक ट्रस्टों, फाउंडेशनो, साख-संपन्न और सक्षम गैरसरकारी सगठनों तथा द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सस्थाओ को एक-एक जिला गोद लेने के लिए तैयार किया जाये। उचित कर सुविधाएँ दी जाये, तो व्यावसायिक घराने अपने प्रोफेशनल लोगों, कार्यक्रम अधिकारियो और विशेषज्ञो को पंचायतो को मजबूत करने और नवाचारपूर्ण कार्यक्रमो के जरिये उपर्युक्त सरोकारो को यथार्थ में बदलने मे लगा सकते है। वित्त मत्री ने अपने बजट भाषण मे कहा है कि भारत सरकार द्विपक्षीय साझीदारो को कुछ रियायते दे सकती है ताकि उनके ससाधन गैरसरकारी सगठनों को हस्तांतरित किये जा सकें। यह हस्तातरण पंचायतों को क्यों नहीं किया जा सकता?

7

ग्राम सभा और सामाजिक अंकेक्षण

पचायती राज प्रणाली में ग्राम सभा भारतीय लोकतत्र की बुनियादी इकाई है। यह गॉव मे रहनेवाले सभी मतदाताओ की सभा है। हालॉकि आबादी के आधार पर गॉव को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है, फिर भी इस पर कोई मत-विभिन्नता नही है कि लोकतत्र को सिर्फ ग्राम सभा द्वारा ही सीधे लागू किया जा सकता है। हमारे लोकतंत्र को जीवंत और जन भागीदारी पर आधारित प्रणाली बनाने में इसका विशेष महत्व है।

इस सदर्भ मे वर्ष 1999-2000 को ग्राम सभा वर्ष घोषित करने का वित्त मत्री का बयान काफी अहम हो जाता है। इससे इस महत्वपूर्ण विषय पर सभी का ध्यान खीचने में सहायता तो मिली है, लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि ग्राम सभा वर्ष को सार्थक बनाने के लिए अभी तक कोई उपयोगी पहल नही की गयी है। वित्त मत्री की घोषणा के अनुरूप उड़ीसा के अलावा अभी तक किसी भी राज्य ने इस विषय पर राज्य स्तरीय बैठक तक बुलाने के लिए कोई भी ठोस कार्रवाई नही की है।

यदि इस वर्ष को पंचायत वर्ष घोषित किया जाता तो वह शायद ज्यादा सार्थक साबित होता, क्योंकि पंचायत यानी ग्राम पचायत, पचायत समिति, जिला पंचायत—कार्यकारी संस्थाएँ तो यही है। अभी तक लोगों की सभा यानी ग्राम सभा को गॉव मे कोई कार्यकारी अधिकार हासिल नहीं हैं और वह सिर्फ जनता की आकांक्षाओ, विचार, आलोचना आदि की अभिव्यक्ति का मंच बनी हुई है।

विभिन्न राज्यों के कानूनों के अतर्गत ग्राम सभाओ को हासिल अधिकारों एव प्रदत्त कार्यकलाप के एक अध्ययन के अनुसार ग्राम सभा के कार्य क्षेत्र के मुख्य बिंदु इस प्रकार है - 1. खातो के सलाना विवरण एवं ऑडिट रिपोर्ट की जॉच, 2 पिछले वर्ष के प्रशासन की रिपोर्ट पर चर्चा, 3. चालू साल के लिए निर्धारित कार्यक्रमो की समीक्षा तथा नये कार्यक्रमो पर चर्चा; 4. नये करो के प्रस्तावों अथवा

वर्तमान करों मे वृद्धि पर विचार, 5. विभिन्न विकास कार्यों के लिए योजनाओ, लाभार्थियो एव स्थान का चयन; 6. सामुदायिक कल्याण कार्यक्रमो के लिए लोगो को स्वेच्छया श्रम, सामान तथा नकदी देने के लिए अभिप्रेरित करना, 7. विकास योजनाओं को लागू करने तथा गॉवों के लिए सेवाएँ प्रदान करने मे सहायता देना, 8 गॉव के भीतर प्रौढ़ शिक्षा, परिवार कल्याण आदि कार्यक्रम चलाना; 9. समाज के सभी वर्गो में परस्पर एकता एव भाईचारे को बढ़ावा देना; 10. किसी विशेष गतिविधि, योजना, आमदनी तथा खर्च के बारे मे ग्राम पचायत के मुखिया या सदस्यो से स्पष्टीकरण मॉगना; 11. पिछली ऑडिट रिपोर्ट एव उस पर दिये गये जवाब पर विचार, 12. ग्राम पंचायत द्वारा तैयार बजट एवं ग्राम सभा क्षेत्र के भविष्य के विकास की योजनाओं एव कार्यक्रमो पर विचार; 13. वर्तमान योजनाओं एवं पंचायतों की सभी तरह की गतिविधियों पर विचार एवं उनकी पड़ताल, 14. ग्राम पंचायत अथवा किसी अन्य सरकारी विभाग द्वारा किये गये विकास कार्यो का सपूर्ण विवरण रखना; 15 पूरे हो चुके कार्यो की पड़ताल; 16. पंचायत की गतिविधियों, आमदनी, खर्चो, योजनाओं एवं अन्य मामलो के बारे मे ग्राम पंचायत के सदस्यों तथा पंचों से पूछताछ।[1]

इस प्रकार कुल मिला कर ग्राम सभा की बैठक चर्चा एव आलोचना करने की सस्था है। लेकिन वर्तमान परिस्थिति मे 1999-2000 को ग्राम सभा वर्ष घोषित करने का प्रयास महज धोखे की टट्टी साबित हो सकता है और इससे स्थानीय शासन मे ग्राम सभा की प्रमुख भूमिका को मजबूती से स्थापित करने मे कोई खास मदद मिलने के आसार नहीं हैं। इस मामले में राज्य सरकारें भी आम तौर पर नाकाम साबित होती रही हैं, यद्यपि कुछ क्षेत्रो में सामाजिक संस्थाएँ एवं जन संगठन ग्राम सभा को गंभीरता से ले रहे हैं।

केरल सरकार ने 4 जुलाई 1996 को विकेद्रीकरण के लिए डॉ सत्यब्रत सेन की अध्यक्षता मे एक समिति बनायी थी। ग्राम सभाओं के बारे मे उस समिति की सिफारिशे शायद इस विषय मे पहला ब्यौरेवार विश्लेषण हैं। समिति ने यह साफ-साफ कहा है कि (क) ग्राम सभाओं को ज्यादा से ज्यादा बैठक करनी चाहिए और तीन महीने मे कम से कम एक बैठक तो करनी ही चाहिए; (ख) हरेक परिवार को लिखित निमंत्रण भेजा जाना चाहिए, ताकि दस प्रतिशत कोरम की शर्त पूरी हो सके; (ग) ग्राम सभाओं के अधिकार और कर्तव्य संबधी सरकारी आदेश की प्रति, ग्राम पचायत के अध्यक्ष के पत्र सहित, सभी सदस्यों को दी जानी चाहिए।[2]

सेन समिति ने ग्राम सभा के अधिकारों को भी विस्तार से परिभाषित किया था। समिति की सिफारिशों के मुताबिक ग्राम सभा को यह सब जानने का अधिकार है (क) अगले तीन महीने के लिए योजनाओं को लागू करने की कार्य योजना, (ख) प्रस्तावित कार्यों का विस्तृत पूर्व-आकलन; (ग) ग्राम सभा क्षेत्र में किये गये हरएक खर्च का विस्तृत मदवार विवरण; (घ) उस क्षेत्र के बारे में पंचायत द्वारा किये

गये हरएक फैसले का आधार; (ड) अगले तीन महीनों में अधिकारियो द्वारा दी जानेवाली सेवाओ एव उनके द्वारा किये जानेवाले कार्यो का विवरण; और (च) पचवर्षीय एव वाषिक योजनाओ को तैयार करने के लिए वरीयताओ का निर्धारण।[3]

ग्राम सभा को लाभार्थियो के चयन के लिए योग्यताएँ तथा नियम निर्धारित करने होते हैं एव उन्हीं के मुताबिक चयन करना होता है। ग्राम सभा के अधिकारो और कर्तव्यों के अनुरूप ही उपसमितियों को काम हाथ मे लेने चाहिए या उन पर निगरानी रखनी चाहिए।

ग्राम सभा के कर्तव्यों की सेन समिति द्वारा बनायी गयी सूची ऑख खोल देनेवाली है। ये जिम्मेदारियॉ हैं : विकास एव कल्याण कार्यक्रमों के बारे में सूचना का प्रसार; स्वास्थ्य, साक्षरता एवं ऐसे ही विकासात्मक अभियानों में हिस्सा लेने के लिए लोगों को तैयार करना, आवश्यक सामाजिक-आर्थिक ऑकडों का संग्रहण; विकास कार्यक्रमों की प्रगति के बारे मे सूचना देना; करों के भुगतान, ऋण वापस करने, पर्यावरण की स्वच्छता को बढावा देने, सामाजिक सद्‌भाव बनाये रखने आदि के लिए लोगो को नैतिक रूप से तैयार करना आदि। ग्राम सभा के संयोजक को हरएक बैठक मे किये गये फैसलो का रिकॉर्ड रखना चाहिए तथा उसे पंचायत के दफ्तर मे सदर्भ के लिए एव प्रतिलिपि लेने के लिए उपलब्ध कराना चाहिए।

केरल मे ग्राम सभा की बैठक बुलाने मे विफलता के लिए केरल पंचायत राज अधिनियम मे सजा की कार्रवाई का प्रावधान है। इस अधिनियम के प्रावधानों का लगातार दो बार उल्लघन करने पर सयोजक की सदस्यता भी रद्द हो सकती हे। पिछले दो वर्ष से ग्राम सभा एवं उससे निचले स्तर की इकाई अयाकुट्टगल (पडोसी समूह)-केरल की पचायती राज प्रणाली मे सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। केरल मे जन योजना ग्राम सभा की इन्ही नियमित बैठको के कारण सफल हो रही है।

केरल के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्राम सभा एव पचायतों का रिश्ता द्वद्वात्मक है। पंचायते तभी असरदार हो सकती हैं, जब ग्राम सभाएँ नियमित रूप से बैठक करें और लोग ज्यादा से ज्यादा तादाद में इन बैठकों में हिस्सा ले। इसी तरह, पंचायती राज संस्थाओं के मजबूत होने पर ही ग्राम सभाओ का असर बढेगा।

वर्तमान सदर्भ मे ग्राम पंचायतों को प्रभावी बनाने के लिए गहराई से यह महसूस किया जा रहा है कि इसके लिए सविधान में संशोधन किया जाना चाहिए। इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली ने 1999 की जनवरी के शुरू में 'संविधान (73वॉ एवं 74वॉ सशोधन अधिनियम, 1992) में सशोधन' विषय पर बगलूर में राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया था। उस सम्मेलन द्वारा की गयी सिफारिशें ध्यान देने योग्य हैं। सम्मेलन की राय यह थी कि संविधान में संशोधन कर ग्राम सभाओ को आवश्यक अधिकार देना राज्यों के लिए अनिवार्य कर दिया जाये। ग्राम पचायतों के कार्यकलाप

की निगरानी के लिए ग्राम सभा की अपनी समितियाँ होनी चाहिए। ग्राम सभाओ को योजना, बजट, लाभार्थियों की सूची, विभिन्न कार्यो के लिए उपयुक्त स्थान तथा पचायतो के खातो को मजूरी देने का अधिकार भी दिया जाना चाहिए।[4]

एक अन्य महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि सामाजिक अकेक्षण (ऑडिट) को भी ग्राम सभाओं का एक प्रमुख कार्य बनाया जाये। पंचायत से बाहर के कुछ सदस्यो को उसके खातो की जॉच करने तथा उनकी पुष्टि के लिए दस्तखत करने का अधिकार भी दिया जाना चाहिए।[5]

सामाजिक अंकेक्षण

सामाजिक अकेक्षण और ग्राम सभा के बारे आजकल काफी चर्चा हो रही है। यह सामाजिक अंकेक्षण है क्या? अकेक्षण अंग्रेजी शब्द ऑडिट का अनुवाद है, जो लातिनी मूल का शब्द है और इसका भावार्थ 'सुनना' है। पुराने जमाने में अपने साम्राज्य की स्थिति का जायजा लेने के लिए सम्राट ऑडिटर रखा करते थे। ये ऑडिटर महल के कर्मचारियों तथा स्थानीय अधिकारियो की छवि, सरकारी कर आदि प्रशासनिक मामलो के बारे मे जनता की राय जानने के लिए सार्वजनिक स्थलों पर घूमा करते थे, लेकिन ऑडिट का आधुनिक स्वरूप किसी संगठन द्वारा चलायी जा रही गतिविधियो और कार्यक्रमों का स्वतत्र मूल्यांकन करना है। मूल्यांकन आम तौर पर खाता अंकेक्षण के सर्वमान्य सिद्धान्तो के आधार पर मूल्य आधारित व्यवहार की परिधि में किया जाता है। इस प्रकार ऑडिट किसी गतिविधि के निष्पादन एवं तर्कसगत मानको के बीच तुलना किया जाना है। भारत में सरकारी ऑडिट व्यय-उन्मुख रहा है।

सामाजिक अकेक्षण की अवधारणा ज्यादा विस्तृत है। उसमें पारंपरिक अकेक्षण के मुकाबले ज्यादा गुंजाइश रहती है। चार्ल्स मेडोवर के अनुसार सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा इस सिद्धांत पर आधारित है कि लोकतत्र मे फैसला करनेवाले लोगो को अपने अधिकारों के प्रयोग के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। इसके साथ ही उनके अधिकारों का उपयोग, जहाँ तक संभव हो, सभी सबद्ध पक्षो की सहमति एवं समझ के साथ होना चाहिए।[6] सामाजिक अंकेक्षण किसी सगठन के कार्य निष्पादन का स्वतत्र मूल्याकन है, क्योकि उसका उद्देश्य सामाजिक जिम्मेदारी निभाना है। इसका सीधा-सा मतलब यह है कि यह किसी संगठन की सामाजिक जवाबदेही को ऑकने का उपकरण है। दूसरे शब्दों मे, सामाजिक अंकेक्षण को किसी भी सार्वजनिक संगठन के कार्यकलाप की उसके सामाजिक संदर्भ मे गहराई से जॉच एवं विश्लेषण के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।

सामाजिक अंकेक्षण से हमारा तात्पर्य जनता के नजरिये से प्रशासनिक प्रणाली का मूल्याकन करना है, क्योकि उसी के नाम पर तथा उसी के लिए प्रशासनिक प्रणाली विकसित की जाती है और वैधता हासिल करती है। प्रशासन के सामाजिक अकेक्षण

का तात्पर्य आम जनता के लिए उसकी भूमिका की दृष्टि से प्रशासनिक प्रणाली तथा उसकी अदरूनी गत्यात्मकता को इस दृष्टि से समझना है कि बहुतसंख्यक आम जनता के लिए उसका कार्य क्या है—आम जनता वह है जो सरकार या उसकी मशीनरी अथवा सत्तारूढ वर्ग का कल-पुर्जा नही है। सामाजिक ऑडिट को प्रभावशाली बनाने के लिए किसी कार्यक्रम के लाभो के प्रति लाभार्थी समूहो को जागरूक करना तथा कार्यक्रम के क्रियान्वयन मे रह जानेवाली कमियो को जानना; जनता पर प्रौद्योगिकीय चयन के असर की पडताल; सागठनिक ढॉचे एवं जनता के लिए नीतियॉ बनाने की उसके हितों, वरीयताओ एव आकाक्षाओं के अनुरूप पड़ताल; तथा तंत्र को लोगो के लिए खुला एव जवाबदेह बनाना आदि आवश्यक है।

सूचना तक पहुँच

सामाजिक अंकेक्षण को लागू करने के लिए आज पंचायतें सबसे उपयुक्त मच है। प्रभावशाली सामाजिक अकेक्षण के लिए केरल मे विकेंद्रीकरण पर समिति ने सुझाया था कि पंचायतो को विभिन्न स्तरों पर समितियॉ बनानी चाहिए। सामाजिक अकेक्षण समितियॉ सबसे पहले ब्लॉक पचायत एवं जिला पंचायत के स्तर पर बनायी जानी चाहिए। इन समितियो मे सम्मानित नागरिको एव पेशेवर लोगो को शामिल किया जाना चाहिए, ताकि वे जब उचित समझे विकास कार्यक्रमों की पडताल कर सकें। दूसरे, ग्राम पचायत एवं नगपालिकाओं के स्तर पर महिलाओ की विशेष निगरानी समितियॉ बनायी जानी चाहिए। इस समिति मे प्रत्येक ग्राम सभा अथवा वार्ड समिति के दो नामांकित प्रतिनिधि होने चाहिए। उनमे से एक प्रतिनिधि अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति से हो। ऐसी समितियों को भी सामाजिक अकेक्षण समितियो जैसे ही अधिकार दिये जायें। ये समितियाँ लागत, अनुमान, कार्य में प्रयुक्त सामग्री की यात्रा एव गुणवत्ता तथा चयन संबंधी नियमो के अनुपालन आदि की पडताल करेगी।[7]

सत्यब्रत सेन समिति ने सामाजिक अंकेक्षण को सुगम बनाने के लिए कई उपाय सुझाये है : (क) किसी भी नागरिक द्वारा जॉच के लिए सभी पूर्वानुमानो, लाभार्थियों की सूची, प्रत्येक योजना में दी गयी सहायता, मस्टर रोल, बिल, वाउचर, खातो आदि की फोटो-कॉपी उसकी वास्तविक लागत के भुगतान के बाद उपलब्ध करायी जाये, (ख) विभिन्न लाइसेसो, परमिटों, प्रमाणपत्रों आदि के लिए स्थानीय निकायों को दी जानेवाली अर्जियो पर एक क्यू नबर दिया जाना चाहिए और इस वरीयता क्रम का किसी भी हाल मे उल्लघन नहीं होना चाहिए; (ग) कर आँकने, छूट देने आदि से संबधित सभी दस्तावेज सार्वजनिक किये जाने चाहिए, ताकि कुछ लोगों के प्रति पक्षपात की शिकायते न आयें।[8] यदि इन दिशा निर्देशों का ठीक से पालन किया जाये, तो सामाजिक अंकेक्षण काफी असरदार सामाजिक सस्था बन जायेगा।

हमारी नयी लोकतांत्रिक सस्थाओ मे सामाजिक अकेक्षण के लिए ग्राम सभा शायद सबसे उपयुक्त इकाई है। सामाजिक अकेक्षण का आधार चूँकि जन हित के लिए समर्पित नागरिक और उनकी सामूहिकता ही है, इसलिए ग्राम सभा के सदस्य तथा प्रतिनिधि सस्थाओ के सभी स्तरो—ग्राम पंचायत, पचायत समिति तथा जिला परिषद—के सदस्य सामाजिक सरोकार तथा जनहित के मुद्दे उठा सकते है तथा उनका जवाब मॉग सकते हैं। विभिन्न सगठनों से, सेवानिवृत्त लोगों से, शिक्षकों एव बेदाग चरित्र के अन्य लोगो को मिला कर सामाजिक अंकेक्षण मच अथवा सामाजिक अकेक्षण समिति बनायी जा सकती है।

सामाजिक अकेक्षण मंच वार्षिक योजना के बजट प्रावधानो, परियोजनाओं के क्रियान्वयन आदि के बारे में पंचायतों की गतिविधियो की पडताल के लिए मासिक बैठक बुला सकता है। इस बैठक मे विभिन्न विभागों मे कार्यरत कर्मचारियो की ओर से प्रगति रिपोर्ट दी जा सकती है और हर महीने किये जानेवाले कार्यों की जानकारी भी दी जा सकती है। समस्याओ को चुन कर उनके हल का रास्ता ढूँढ़ा जा सकता है। इस विचार मंथन के आधार पर सबद्ध विभाग द्वारा प्रस्तावित कार्रवाई पर जोर देते हुए मासिक कार्रवाई रिपोर्ट बनायी जा सकती है। ग्राम सभा चूँकि लोगो की ऑखें और कान है, इसलिए उसकी बेठको मे भी इन मुद्दो पर चर्चा होनी चाहिए। हमे, दरअसल, जनमत निर्माण के द्वारा यह आम भावना पैदा करनी है कि कोई ग्राम सभा को धोखा नहीं दे सकता।

विभिन्न राज्यो में ग्राम सभाओ के कार्यकलाप की जॉच की जावे, तो दो तरह की परिस्थितियॉ सामने आती है। पहली परिस्थिति तो वह है जहाँ सामाजिक एव विकास से जुडी समस्याओ के प्रति सामाजिक अकेक्षण एक स्वस्थ, लोकतान्त्रिक, मानवीय नजरिया अपना रहा है। ग्राम सभा द्वारा गॉव की भलाई तथा ससाधनो के दुरुपयोग एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सामाजिक अंकेक्षण के उपयोग की कई सफलता कथाएँ है। दूसरी स्थिति उन ग्राम सभाओ की है जहाँ लोग परेशान करनेवाले सवाल पूछते है, जिससे हिसा भड़कती है।

उदाहरण के लिए, कर्नाटक में उत्तर कन्नड़ जिले के मुंडगोड तालुक की इदूर ग्राम पचायत की बैठक मे जनता पचायत की गतिविधियो के बारे में सचिव से सवाल पूछ रही थी।[9] सचिव से एक नाली के निर्माण के लिए खरीदे गये सीमेंट का ब्यौरा पूछा गया और उसके बिल भी मॉगे गये। सचिव ने कहा कि सीमेंट खरीदा गया है, लेकिन एक सदस्य ने इसका खंडन कर दिया। इससे यह संदेह पैदा हुआ कि इस मामले में पैसे का गबन हुआ है, इसलिए बहस छिड गयी। जॉच करने पर पता लगा कि सीमेट के बस्ते तो खरीदे गये थे, मगर कुछ सदस्यो ने सचिव पर दबाव डाल कर उस सीमेट को बेच दिया था।

उमी ग्राम सभा मे सचिव को विभिन्न योजनाओं के अतर्गत चुने गये लाभार्थियो के नाम पढने को कहा गया। उसने लोगों को बताया कि सूची बीडीओ के दफ्तर मे भेजी जा चुकी है। इस तरह वह सूची पेश करने से बच गया। इसके बावजूद लगातार मॉग उठने पर सचिव को लाभार्थियों के नाम सबको बताने पडे। 'भाग्य ज्योति' योजना के अतर्गत ट्यूबलाइट पानेवाले लोगो के नाम पढ़े जाने के बाद अनुसूचित जनजाति के एक सदस्य ने यह सवाल उठाया कि पच्चीस ट्यूबलाइटो मे से तेईस अनुसूचित जाति के लोगों को क्यों दी गयी है और अनुसूचित जनजाति के लोगो को सिर्फ दो ट्यूबलाइटें क्यो मिली हैं। इस पर काफी शोर-शराबा हुआ। स्पष्टत पंचायत क्षेत्र मे अनुसूचित जनजाति के लोगों की अच्छी-खासी सख्या होने के बावजूद उनकी उपेक्षा की गयी थी।

दूसरी परिस्थिति का उदाहरण मध्य प्रदेश की चौपाल बैठकें हैं, जिनमें हिसा की कई वारदातें हुई। नवंबर 1995 में रायगढ जिले मे सल्हौना गॉव की एक महिला पच को सरिया खड विकास अधिकारी के सामने ही निर्वस्त्र कर दिया गया, छतरपुर जिले मे कडकी गॉव की एक उपसरपच को सताया गया और नवबर 1995 मे रायसेन जिले के बरवतपुर गॉव मे एक दलित सदस्य को पीटा गया।

गॉवो मे इस तरह के असभ्य और हिसक व्यवहार के उदाहरण अकसर उजागर होते रहते है। यदि सरपंच, पच, बीडीओ तथा ग्राम सचिव सत्ता में जनता की भागीदारी सुनिश्चित कर सके, तो ग्राम सभाएँ कही ज्यादा प्रभावशाली एवं सशक्त बन पायेगी। अलवर के आसपास के गॉवो मे कभी ग्राम सभा की बैठक ही नहीं हो पाती। पाया यह गया कि बैठको में लोग छॉट कर बुलाये जाते है, ताकि प्रस्तावों को बिना किसी विरोध के पास कराया जा सके।

उपसंहार

देश में ग्राम सभा का कामकाज ठीक से चलाने के लिए हमें अभी लंबा सफर पूरा करना है। ग्राम सभा के अतर्गत आनेवाले क्षेत्र के सभी मतदाता हालाँकि उसके सदस्य होते हैं, फिर भी उसकी बैठकों मे बहुत कम लोग जुटते है। कई अध्ययनों से यह बात सामने आयी है कि ग्राम सभा की ज्यादातर बैठकों में कोरम भी पूरा नही हो पाता। संवैधानिक परिभाषा के अनुसार ग्राम सभा में गॉवो का समूह भी शामिल हो सकता है। राज्यों के कानूनो में इसी परिभाषा को आधार बनाया गया है, जिसके कारण किसी असरदार भागीदारी के लिहाज से ज्यादातर ग्राम सभाएँ बहुत बड़ी और दु:साध्य हो गयी हैं। ग्राम सभा की बैठकों के लिए काफी दूर से लंबा फासला तय करके आना पड़ता है, इसलिए महिलाओं एवं दलितो का उनमें भाग लेना और भी मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार पंचायतो में महिलाओं को मिले आरक्षण का फायदा ज्यादातर मामलों में मिट्टी मे मिल जाता है।

जहाँ ग्राम सभाओं की बेटकें होती है, वहाँ भी सारा समय लाभार्थियों की सूचियों पर विचार करने तथा निर्माण कार्यो एव ठेको से जुडे मामलों पर बहस मे ही निकल जाता है। ग्राम सभा के कार्यो एव अधिकारो के बारे मे सविधान मे कोई स्पष्ट प्रावधान नही किया गया है। यह मामला पूरी तरह राज्यो की विधान सभाओ पर छोड दिया गया है (अनुच्छेद 243ए) और राज्यो द्वारा बनाये गये कानूनो में इन्हे बहुत ही मामूली भूमिका दी गयी है।

पचायत प्रणाली में ग्राम सभा की भूमिका केंद्रीय महत्व की हो सकती ह। इसका अधिकार क्षेत्र राजस्व, नियमन कार्यो, ग्रामीण पुलिस व्यवस्था आदि शासन के विभिन्न पहलुओ पर ध्यान देने के लिए बढ़ाया जा सकता है। इसके साथ ही ग्राम सभा के सामाजिक चरित्र को बदलने के लिए काफी जोर लगाना पडेगा। हमे जनता मे निवेश करना होगा तथा उसकी शिक्षा तथा क्षमता बढाने के लिए विशेष उपाय करने होंगे। सामाजिक परिवर्तन की ताकतों को मजबूत बना कर समाज के बहिष्कृत तबकों को लोकतांत्रिक प्रणाली की मुख्य धारा मे लाना भी इतना ही महत्वपूर्ण है। 1999-2000 को 'ग्राम सभा वर्ष' घोषित कर सरकार को शायद इस दिशा मे अर्थपूर्ण कदम उठाने चाहिए थे तथा उनकी सफलता के लिए मानव एवं अन्य ससाधनो को संचारित करने के लिए आंदोलन एवं अभियान चलाना चाहिए था। दुर्भाग्य से सरकार अभी भी इस मामले मे वांछित गंभीरता के साथ कोई कदम नही उठा रही है।

संदर्भ

1. एस पी जैन, ग्राम सभा : जमीनी लोकतत्र का सिहद्वार, *जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेट*, एनआईआरडी हेदराबाद
2. विकेंद्रीकरण पर समिति, दूसरी अतरिम रिपोर्ट, केरल सरकार, तिरुवनंतपुरम, 1997, पृष्ठ 17
3. उपर्युक्त, पृष्ठ 17-18
4. एस.वी शरण (सपादित) 'संविधान (73वॉ व 74वॉ सशोधन अधिनियम, 1992) में संशाधन' पर राष्ट्रीय सम्मेलन की सिफारिशे, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, नयी दिल्ली, 1999 पृष्ठ 4
5. इस विषय पर विस्तृत बहस के लिए देखिए, महीपाल, पचायतों के लिए सामाजिक अकेक्षण एक पद्धतिशास्त्र, *मेनस्ट्रीम*, 31 अक्टूबर, 1998, नयी दिल्ली, पृष्ठ 29-30
6. महीपाल मे उल्लिखित, वही, पृष्ठ 29
7. सारा रस्किन्हा, ग्राम सभा : पचायती राज, उमा प्रचार, खड 4, अक 1, जनवरी-मार्च 1997
8. उपर्युक्त
9. जॉर्ज मैथ्यू एव रमेश सी. नायक, *पचायतें व्यवहार में क्या लाभ है इनसे शोषित वर्गो का,* इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली, ऑकेजनल पेपर सीरीज नबर 19, 1996

8

विकेंद्रीकरण, सरकार और स्वयंसेवी क्षेत्र

इस परचे मे जिला, ब्लॉक या तालुक और ग्राम तीनों स्तरों के पंचायती राज संस्थानो के साथ-साथ नगरपालिकाओं और नगर निगमों को राज्य और सरकार के विकेंद्रित सस्थानों के रूप में लिया गया है। स्वयंसेवी क्षेत्र में विकेंद्रित संस्थान समाज की पहल होते है, और लोगों के अधिकारो व सामूहिक सम्पत्ति की रक्षा करते है। इनमे जन सगठन और स्वयंसेवी संगठन भी शामिल है जो स्थानीय समुदायों की सामाजिक-आर्थिक हैसियत बढ़ाने के लिए प्रयास करते है। मोटे तौर पर कहा जाये, तो ये नागरिको द्वारा की गयी पहल और नागरिकों के संगठन होते हैं।

अधिकाश लोग स्थानीय स्तर पर ही (गाँवों, कस्बो और निगमो के वार्डो में) अपना दिन-प्रतिदिन का जीवन बिताते हैं। किसी भी रिहायशी इलाके में लगभग सभी के बीच आमने-सामने का संबध होता है। जब राज्य इस स्तर पर पहुँचता है, तो वह गहन छानबीन के दायरे मे आ जाता है। यहॉ नागरिको के समूह राज्य से क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं, यहाँ तक कि सरकार से मुठभेड भी करते है तथा व्यक्तियो के साथ-साथ समुदाय का जीवन स्तर बनाये रखने या सुधारने के अपने प्रयास मे स्थानीय सरकार के समर्थन की माँग करते है।

शुरू में ही यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि अपनी सख्या और कार्यगत पहुँच के कारण स्वयंसेवी एजेसियो की पचायती राज सस्थानो के साथ तुलना नही की जा सकती। बहुत-से गॉवों और छोटे कस्बो में स्वयसेवी एजेसियाँ हैं ही नहीं। मान्यता-प्राप्त स्वयसेवी सस्थाओ के कार्यक्रम भी राज्य के सभी जिलों को शायद ही कभी अपने दायरे में ले पाते हों। उदाहरण के तौर पर, जहाँ प्राकृतिक ससाधनो के प्रबध के लिए संयुक्त वन प्रबंध समितियॉ, जल उपयोगकर्ता समूहों आदि जैसे मजबूत स्थानीय समूहो की स्थापना हुई है, वहाँ उनका कार्यक्षेत्र कुछ ही पुरवो और गॉवो तक सीमित रहता है।

इसकी तुलना में, देश मे ढाई लाख से अधिक ग्राम पंचायतें, ब्लॉक या तालुक

स्तर पर पाँच हजार पंचायत समितियाँ और पाँच सौ से अधिक जिला स्तर की जिला पचायतें मौजूद है। इसलिए यह ध्यान रखना होगा कि स्थानीय स्वशासन संस्थानो के रूप में पंचायतें तो सर्वत्र है, लेकिन स्वयसेवी एजेंसियो की व्याप्ति सीमित हे।

पंचायतें

वैसे तो भारत के संविधान राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों में सघ और राज्य, दो-स्तरीय शासन को ही मान्यता दी गयी है, लेकिन सविधान के अनुच्छेद 40 मे 'स्वशासन की इकाइयों' का भी उल्लेख किया गया है, जो जिला स्तर और उससे नीचे की पचायतो का सूचक है। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद के 50 सालों मे प्रशासन, शासन और विकास की समस्याओं के साथ-साथ सत्ता में भागीदारी की जन आकाक्षाओं, जन संगठनों के बढ़ते दायरे और उनकी प्रासगिकता से सत्ता के विकेद्रीकरण की जरूरत महसूस हुई है। जिला व उससे निचले स्तरों पर इस विकेंद्रीकरण की विशेप जरूरत समझी गयी है।

आज हम सस्थानो और सत्ता के विकेंद्रीकरण का जो स्वरूप देख रहे है, वह 1950 के बाद के विविध घटनाक्रम का परिणाम है। इस सिलसिले मे निम्नलिखित विकास क्रम का विशेष उल्लेख करना होगा ·

1. गॉव, जिला, राज्य और केद्र--इस चार स्तभो पर टिके 'चौखंबा राज' की अवधारणा मजबूत हो रही है।

2. जिला शासन का विचार, विशेषकर 1983 के कर्नाटक पंचायत अधिनियम के प्रभाव से, जोर पकडा रहा है।

3. दो सविधान सशोधन (1992 का 73वॉ और 74वॉ), जिनमें जिला व उससे निचले स्तर पर स्थानीय निकायों को स्वशासन सस्थानो के रूप मे परिभाषित किया गया है।

इन बातों के तीन निहिताशय थे। अब तक 'स्थानीय स्वशासन' का जो विचार लॉर्ड रिपन के सरकारी प्रस्ताव (1882) के अनुसार केवल नागरिक सुविधाओं की देखभाल करनेवाले स्थानीय निकायों तक सीमित था, वह अप्रासंगिक हो गया।

दो, जो पंचायतें सीमित कार्यक्षेत्रवाली स्थानीय सस्थाएँ मानी जाती थीं, उनका स्वरूप अब 'पंचायती राज' को हो गया, जिसका अर्थ अधिक व्यापक ओर अधिक गतिशील था। ये पचायतें अब 'ग्राम सभा से लोक सभा तक' की राजनीतिक प्रक्रिया (ग्राम विधान सभा से ले कर राष्ट्रीय ससद) का एक अंग बन गयीं।

तीन, मौजूदा अर्थ-सघीय ढॉचे में क्रांतिकारी परिवर्तन आने शुरू हो गये, जिसका केंद्र-राज्य सबंधो के साथ-साथ राज्य-पचायत सबधों पर भी प्रभाव पड़ा। दूसरे शब्दों मे, इस क्षेत्र मे काफी अधिक परिवर्तन हो रहे हैं। संविधान की ग्यारहवी अनुसूची के तहत 29 विषय पचायतों को सौंपे गये हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि राज्य

के किसी एक स्तर पर सत्ता का केंद्रीकरण अब कठिन होता जा रहा है।

भारतीय सविधान के अनुच्छेद 243जी मे 'स्वशासन की मस्थाओं का उल्लेख है। इस अवधारणा की व्याख्या पिछले दशक के इस सपूर्ण सकारात्मक घटनाक्रम के मद्देनजर करनी होगी। दरअसल, 'स्वशासन की संस्थाओं' की परिभाषा कही भी नही दी गयी है। इसलिए व्यवहार के स्तर पर ही इस अवधारणा का विकास किया जा सकता है। सबसे पहले, इसके लिए स्वायत्तता का होना जरूरी है। स्वायत्तता, जो भारतीय संघ और सरकार के विभिन्न स्तरों के दायरे के भीतर हो। वैसे, स्वायत्तता की अवधारणा का अर्थ अत्यत लचीला होता है। सामान्यतया स्वायत्तता का अर्थ शासन की उस गुजाइश से होता है जो किसी स्तर विशेष पर सबद्ध पक्षो के बीच आपस में तय हो जाती है। लेकिन लचीलेपन का यह दायरा केंद्र द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर ही होता है। निचले स्तर पर, स्वाभाविक ही है कि, इसकी परिभाषा तय कर दी जाये। राज्यों को पता होना चाहिए कि उन्हे अपनी पंचायतो को कम से कम कितने और क्या अधिकार तथा कितनी सत्ता प्रदान करनी है, जिसके आधार पर स्वशासन की संस्थाओ के रूप में पंचायतो की पहचान बन सके।

सवैधानिक सशोधनो के बाद 'स्वशासन की सस्थाएँ' बन गयी पंचायतो ओर नगरपालिकाओ के पूरे अर्थ ओर मकसद को सही परिप्रेक्ष्य मे समझना बहुत जरूरी है। हालाँकि अनुच्छेद 243डी, 243जी और 243पी(इ) मे पचायतों और नगरपालिकाओ को स्वशासन की संस्थानों के रूप में परिभाषित किया गया है, लेकिन कहीं भी इन सस्थानो के दायरे को स्पष्ट नहीं किया गया है। इसके बावजूद, भारत के संघीय ढॉचे में ये संस्थाएँ दूरगामी परिणामोंवाले क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं। सवैधानिक सशोधन के पारित होने के तुरत बाद निर्मल मुखर्जी ने लिखा था : 'संशोधित सविधान के अनुसार राज्यो को न केवल गाँवो के लिए, बल्कि मध्यवर्ती और जिला स्तर पर भी पचायतो को स्वशासन की संस्थाएँ बनाना होगा। परिणामस्वरूप, भविष्य मे सरकार अब तीन स्तरो पर होगी—संघ, राज्य और पचायत। इससे अधिक क्रांतिकारी परिवर्तन की कल्पना कठिन है। इसके परिणाम दूरगामी हैं।'[1]

अगर हम पंचायतों की मिसाल लें, तो तीनों स्तरो—ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद—की पचायतें उन्हे सौपे गये दायित्वो के सदर्भ मे अपने-अपने क्षेत्राधिकारो में स्वशासन की सस्थाएँ है। 'वे सीमित क्षेत्र और सीमित कार्यो के लिए अपने आपमे एक तरह से सरकारें है...पचायते स्वशासन की प्रतिनिधिक सस्थाएँ हैं।'[2]

संविधान मे 'स्वशासन' की जिस अवधारणा की गारटी दी गयी है, उस पर किसी समझौते की गुंजाइश नही है। पचायतो और नगरपालिकाओ के अधिकारो तथा कार्यो को दो श्रेणियों में बॉटा जा सकता है : (1) मूल कार्य और (2) सौपे गये कार्य। मूल कार्य 'आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार

करने' का है। सौप गय कार्यो में ग्यारहवीं अनुसूची म शामिल मामलो सहित आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की उन योजनाओं का क्रियान्वयन शामिल है जो पचायतो को सौपी गयी है।

एक और भी दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार 1992-93 म जो कुछ भी हुआ, वह 'प्रशासनिक संघवाद' को मजबूत करने के सिवाय और कुछ नहीं था। 73वे संशोधन के प्रावधान राज्यो के कुछ प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार स्थानीय निकायो को सोपे जाने में मदद करने और वढ़ावा देने के लिए 'प्रशासनिक सघवाद' को मजबूत करते है। स्थानीय निकायों के प्रशासनिक अधिकार व दायित्व तथा इन अधिकारो के प्रयोग और इन दायित्वों को पूरा करने के लिए वित्तीय ससाधनों का प्रबध उन कानूनो के जरिये किया जायेगा, जो सबद्ध राज्य सरकारो को पारित करने होंगे। इस विचारधारा के अनुसार, इन निकायों के पास कोई स्पष्ट कार्यकारी, विधायी, वित्तीय या क्षेत्रीय अधिकार नहीं है, और मात्र सवैधानिक दर्जा हासिल कर लेने या नियमित चुनावो से उन्हे शासन के तीसरे स्तर का दर्जा प्राप्त नही हो जाता। इस विचारधारा के प्रतिपादक एस. गुहन डेनियल इलाजर का हवाला देते हुए प्रतिपादित करते हैं कि विकेंद्रीकरण कोई संघीय गुण नहीं है, क्योंकि विकेद्रीकरण से तात्पर्य एक केंद्रीय प्राधिकार का अस्तित्व होना है।[3]

चूँकि इस विचारधारा में हमारे राजनीतिक ढाँचे मे शुरू हुई लोकतांत्रिक ओर राजनीतिक प्रक्रिया के स्वरूप और प्रभाव को सकुचित व सीमित दृष्टिकोण से देखा गया है, इसलिए इसके तर्को से सहमत नही हुआ जा सकता। यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिन देशो मे स्थानीय निकाय है, वहॉ उन्हे बजट, उपनियमों और विनियमो जेसे प्रत्यायुक्त (डेलीगेटेड) अधिकार दिये हुए है। उन्हे विनियमों से संबधित कई अधिकार भी प्राप्त हैं, जो उनकी कामकाजी जिम्मेदारियों से जुड़े होते हैं। इसलिए भारत निश्चित रूप से प्रशासनिक सघवाद से हट कर बहुस्तरीय सघवाद की ओर बढ रहा है।[4]

भारत में स्वशासन की संस्थाओ के रूप मे स्थानीय निकायों के काम करने के लिए कुछ आवश्यक पूर्व-शर्ते ये हैं (क) क्षेत्राधिकार के बारे मे निर्धारित स्पष्ट सीमाएँ; (ख) दायित्वो से मेल खाते पर्याप्त अधिकार व सत्ता; (ग) अपना कामकाज करने के लिए आवश्यक कर्मचारी व वित्तीय संसाधन, और (घ) सघीय ढाँचे के भीतर कार्यकारी स्वायत्तता। इन सबके लिए सवैधानिक सशोधनों मे प्रावधान किया गया हे।

सशोधनो के साथ-साथ संविधान में जोड़ी गयी ग्यारहवीं और बारहवी अनूसूचित मे 29 विषय पंचायतों को और 18 विषय नगरपालिकाओं को सौपने का सुझाव दिया गया है। राज्य अनुपालन अधिनियमो मे इन्हे कमोवेश शामिल भी कर लिया गया है। जब इन पर पूरी तरह से अमल होने लगेगा, तव कहा जा सकेगा कि जिला

स्तर तथा उमसे निचले स्तरों पर स्थानीय निकाय सही मायनो में भारतीय सघीय ढॉचे का तीसरा स्तर बन गये हैं और इससे भारतीय सध को एक नया अर्थ मिल गया है। नि सदेह इन स्थानीय निकायो को कोई वैधानिक शक्तियॉ प्राप्त नहीं है, न ही इनके पास कानून-व्यवस्था की मशीनरी (पुलिस) या न्यायिक शक्तियॉ है। कुछ राज्यों ने अपने राज्य अनुपालन अधिनियमों मे स्थानीय अदालनो (न्याय पचायतो) की स्थापना की वात जरूर कही है। नीति निर्माताओं और बुद्धिजीवियो में एक ऐसा वर्ग है, जो पचायतो को पुलिस व अदालती शक्तियॉ दिये जाने का जोरदार हिमायती है।

स्थानीय शासन के लिए नौकरशाही का भी अत्यत महत्व है। अतर्वर्ती व्यवस्था चाहे जैसी भी की जाय, अततः पचायती राज का कामकाज चलानेवाले एक अलग सवर्ग की जरूरत पड़ेगी ही। इमका स्वरूप क्या होगा? इसकी सरचना क्या होगी? यह आनेवाले वर्षों में क्रमशः विकसित होगा।

मौजूदा राज्य अधिनियमो और अर्ध-सरकारी निकायों के बारे मे इस घटनाक्रम के अर्थ महत्वपूर्ण है। लगभग 53 केंद्रीय और राज्य अधिनियम संविधान के 73वे और 74वे सशोधन के अनुपालन की राह मे बाधक का काम करेंगे। बिजली बोर्ड, जल और जल-मल बोर्ड, लोक निर्माण विभाग, विकास निगम जैसे अर्धसरकारी निकायो का ढॉचा केंद्रीकृत है; ये नये विकेंद्रित ढॉचे से कैसे तालमेल बैठायेंगे, यह एक अहम सवाल है। दूसरे शब्दों मे, हमारी नजर में राज्य की जो भूमिका है और उसका हमे जो अनुभव होता है, उनमें आमूल परिवर्तन आ जायेगा।

सामुदायिक प्रयास

नयी पंचायती राज प्रणाली के तहत, नागरिक समाज की अवधारणा को नया अर्थ और स्वरूप देने की काफी अधिक गुजाइश है। राज्य के निरकुश ऐतिहासिक स्वरूप की तुलना में जहॉ उसकी शक्ति काफी कमजोर है, वहॉ भी नागरिक समाज में स्थानीय स्तर पर स्वशासन के लिए आवश्यक प्रयास स्वयसेवी सस्थाओं द्वारा सुनिश्चित किय जाते है। भारत मे यह स्थिति खास तौर से मौजूद रही है। किसी भी उदार समाज में जमीनी स्तर पर नागरिक व्यवस्था को नागरिकों की निरतर गतिविधि के बिना बनाये नही रखा जा सकता। नागरिक समाज एक तरह से सत्तावादी प्रवृत्तियों का तोड है, क्योंकि लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के जरिये जनमत का अनौपचारिक दबाव तानाशाही की नयी व्यवस्थाओ को रोकता है। सभ्य समाजो की बहुलता और विविधता से ही ऐसी विशेषताऍ सुनिश्चित की जा सकती है, जो स्वशासन का प्रतीक है।

लोगों के प्रयास कई तरह से सामने आते है। नागरिक समूह, पड़ोसियो के संगठन, सामुदायिक हितों और संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए बनायी गयी समितियॉ, सस्थाएं आदि तथा दबाव समूह आम तौर पर लोगों के सामान्य हितो

तथा खास तौर पर दुर्बल एव सीमांत वर्गो के हितों की रक्षा करनेवाले स्वयसेवी संगठन, मजदूर सघ, सहकारिता सगठन—इनके कुछ उदाहरण है। गैरसरकारी सगठनो और स्वयसेवी सस्थाओ का आधार अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या स्थानीय हो सकता है। स्थानीय सस्थाएँ आम तौर मे समुदाय आधारित होती है। ऐसे भी संस्थाएँ हैं, जो किसी जिला प्राधिकरण के अधीन जिला या राज्य स्तर पर पजीकृत होती है। (उदाहरण के तौर पर जिला अंधता नियत्रण समितियॉ, जल सग्रहण विकास समितियाँ, सयुक्त वन प्रबध समितियॉ, जल उपयोगकर्ता समितियॉ आदि)। सामान्यतः प्रशासन, पेशेवर व्यक्ति और उपयोगकर्ता इन संगठनो से जुडे होते है। यहॉ 'स्वयंसेवी संस्थाओं' से हमारा अभिप्राय स्वयसेवी क्षेत्र के प्रयासो के सपूर्ण दायरे से है।

हाल तक सरकार का रवैया स्वयंसेवी क्षेत्र, जन सगठनों और कार्रवाई समूहो द्वारा लोगो के सशक्तीकरण के लिए किये गये प्रयासों के प्रति अनुकूल नहीं था, इस क्षेत्र मे सिर्फ परोपकारी संगठनों को सहन किया जाता था। स्वयसेवी संस्थाओ को ले कर नौकरशाही और राजनीतिक नेतृत्व के मन मे काफी सदेह था, क्योकि इनमे से कई संस्थाओ ने बेहतर ढग से काम किया था और इसके माध्यम से लोगो का विश्वास जीता था। इन्होने गरीबो या वचित वर्गो को संगठित किया, ताकि उन्हे उनके अधिकार दिलाये जाये। इससे स्थानीय स्वार्थो का प्रतिनिधित्व करनेवाले राजनीतिक वर्ग को असुरक्षा महसूस होने लगी थी, नौकरशाही भी इन स्वार्थो के साथ थी। राजनेताओं और नौकरशाहो के इस गठजोड़ से स्थानीय तथा राष्ट्रीय स्तर के जन संगठनों के प्रति प्रतिकूल जनमत तैयार किया गया। गैरसरकारी सगठनो और स्वयसेवी सस्थाओ को भ्रष्ट और राष्ट्रविरोधी करार दे दिया गया, क्योंकि इनमे से कई को अंतरराष्ट्रीय संगठनो से सहायता मिल रही थी।

लेकिन, इसके समानातर ही एक और विचारधारा पनप रही थी, जिसके अनुसार गरीबी हटाने, बुनियादी जरूरतो को पूरा करने तथा साक्षरता, महिला एव बाल विकास, जनजातीय विकास आदि से जुड़े बड़े आकार के कार्यक्रमो मे स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर काम करने, योजना बनाने और भागीरदारी करने में स्वयंसेवी सस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्वयंसेवी सस्थाएँ जटिल मुद्दों से निपटने के अभिनव तरीके खोज सकती हैं, परियोजनाओ को लागू करने की किफायती योजना बना सकती हैं तथा लोगो की कारगर व सक्रिय भागीदारी प्राप्त करने मे अहम भूमिका अदा कर सकती हैं। उनके पास अपने कार्य क्षेत्र की विशेषज्ञता और सक्षमता मौजूद है।

जैसा कि बधोपाध्याय कहते हैं, इन भारी-भरकम राष्ट्रीय कार्यक्रमो में 'स्थानीय पहलो, नवीन कार्यक्रमो तथा कल्पनाशील योजना की काफी गुंजाइश है, जो ठस और यात्रिक क्रियान्वयन निर्देशोंवाली किसी भी केंद्र प्रायोजित योजना मे संभव नहीं हो सकती। अतः प्रशासन द्वारा संचालित सेवा प्रणाली की कमियो के बोध से स्वयंसेवी संस्थाओं की पूरक भूमिका को स्वीकार करने मे मदद मिली।'[5]

सातवी योजना के दस्तावेज में स्वयंसेवी क्षेत्र के सकारात्मक योगदान को स्वीकार करते हुए कहा गया था कि भविष्य मे 'विभिन्न विकास कार्यक्रमो मे स्वयंसेवी संस्थाओ को शामिल करने' के गंभीर प्रयास किये जायेगे। इस दस्तावेज मे निम्नलिखित क्षेत्रो मे स्वयसेवी सस्थाओ की भूमिका को स्वीकार किया गया था :

1. ग्रामीण गरीबो को विकल्प और चयन के अवसर उपलब्ध कराने मे सरकारी प्रयासो के पूरक के रूप में काम करना;

2. ग्राम स्तर पर लोगो के ऑख व कान के रूप मे काम करना,

3. उदाहरण प्रस्तुत करना। स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए ऊपरी खर्चो में कटौती ओर समाज की अधिकाधिक भागीदारी से अपने सीमित संसाधनो के भीतर अधिक से अधिक लोगो तक पहुँचने के लिए सरल, अभिनव, लचीले और कम खर्चीले उपाय अपनाना संभव है;

4. जनता को विभिन्न सेवाएँ प्रदान करनेवाली व्यवस्था को सक्रिय बनाना और निर्धनतम लोगों द्वारा महसूस की जानेवाली जरूरतो के प्रति इस व्यवस्था को ग्रामीण स्तर पर कारगर बनाना;

5. सूचना का प्रसार करना;

6. समुदायों को यथासंभव आत्मनिर्भर बनाना;

7. यह प्रदर्शित करना कि अपने विकास के लिए ग्रामीण व घरेलू संसाधनो का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है, मानव ससाधनो, ग्रामीण कलाओं और स्थानीय जानकारियो को कैसे काम मे लाया जा सकता है, जिनकी अभी काफी उपेक्षा की जा रही है;

8. प्रौद्योगिकी की रहस्यमयता को समाप्त करना और इसे गॉव में रहनेवाले गरीबो तक सरल रूप मे पहुँचाना;

9. उन जमीनी कार्यकर्ताओ को प्रशिक्षित करना, जो यह मानते हैं कि स्वयंसेवी कार्य पेशेवर स्तर पर किया जा सकता है;

10. समुदाय को आत्मनिर्भर बनाने के लिए समुदाय के भीतर से ही वित्तीय ससाधन जुटाना;

11. गरीबो को सगठित तथा सक्रिय करना तथा उनमें बढिया सेवाओं की मॉग करने के लिए जागरूकता उत्पन्न करना। गाँव के स्तर पर सरकारी कर्मचारियो के कामकाज पर जबाबदेही की सामुदायिक प्रणाली को लागू करना।[6]

आठवीं पचवर्षीय योजना (1992-97) के दस्तावेज[7] में इस अवधारणा को यह कहते हुए और आगे बढाया गया : 'विकास को जनादोलन बनाना जरूरी है. . समाज के प्रति जवाबदेह जन सस्थानो का गठन कर शिक्षा (विशेषकर साक्षरता), स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, भूमि सुधार, कुशल भू-उपयोग, लघु सिंचाई, जलस्रोतो का प्रबध, ऊसर भूमि का विकास, वन विकास, पशु पालन, डेयरी, मछली पालन, रेशम उत्पादन

आदि के क्षेत्र में काफी प्रगति की जा सकती है।' जोर स्वयसेवी क्षेत्र की विशाल सभावनाओं के इस्तेमाल से सेवा प्रदान प्रणाली को सुधारने के लिए विभिन्न सस्थाओ के बीच चुनाव का अवसर उपलब्ध कराने पर था। योजना में ऐसे 'उपयोगकर्ताओ/पैसा लगानेवालों, निर्माताओ या लाभार्थियो' को जन संस्थानो के महत्व को रेखाकित किया गया, जो स्थानीय समाज के प्रति जिम्मेदार हो और जिनमे स्थानीय प्रशासन के साथ मिल कर जरूरत स्थानीय योजनाएँ बनाने और उन्हे लागू करने की क्षमता हो।

दस्तावेज में जमीनी स्तर पर अधिकतम लाभ हासिल करने के लिए उन कार्यो के विकेद्रित स्थानीय-स्तर नियोजन के लिए एक नये परिप्रेक्ष्य पर जोर दिया गया है, जो बुनियादी तौर पर जन सस्थानों के सहयोग तथा सरकार के समर्थन से स्वयसेवी सस्थाओ तथा गैरसरकारी सगठनो द्वारा किये जाते है। राष्ट्रीय विकास परिषद की 'लघु स्तर पर नियोजन पर समिति' की रिपोर्ट (1994) मे भी इस बात पर जोर दिया गया है। रिपोर्ट मे कहा गया है, 'अच्छे कामकाज के रिकॉर्डवाले ख्याति प्राप्त गैर-सरकारी सगठनों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कार्यो को अन्यत्र भी दोहराये ओर लोगों मे संस्था निर्माण की प्रक्रिया को मजबूत करे। साथ ही, उनसे लघु स्तर पर नियोजन करनेवाले निकायो को तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान करने की अपेक्षा भी की जा सकती है।'

यहॉ यह बता देना जरूरी है कि स्वयंसेवी सस्थाओ तथा गैरसरकारी सगठनो की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। उनमें से अधिकांश एक नेता पर आधारित सगठन है और उनका कार्यक्षेत्र सीमित है, जो अकसर कुछ गाँवो, एक ब्लॉक या जिले के एक हिस्से तक ही होता है। कानूनी नौर पर वे स्थानीय लोगों के प्रति जवाबदेह नही होते। कइयो में तो अंदरूनी लोकतत्र भी नही होता और वे धन के लिए सरकार या अंतरराष्ट्रीय सहायता एजेंसियों पर निर्भर रहते हैं।

पंचायतें और स्वयंसेवी संस्थाएँ

1992 के सवैधानिक सशोधनों के बाद पंचायतों और नगरपालिकाओं की नयी भूमिका को स्वयंसेवी सस्थाओ द्वारा पहचाना जाना चाहिए। चूँकि वे स्वशासन के प्रतिनिधिक सस्थान होते हैं, इसलिए स्वयसेवी सस्थाओं को उनकी सर्वोच्चता को स्वीकार करना होगा। बद्योपाध्याय के अनुसार, 'स्वयंसेवी सस्थाओं को भूल से भी पंचायतों को अपनी स्थिति, सत्ता व शक्ति का प्रतिद्वंद्वी नहीं समझना चाहिए। प्रतिनिधिक शासन प्रणाली के विभिन्न स्तरो के रूप में पचायतो के प्रभुत्व को बिना किसी ना-नुकच के स्वीकार करना ही होगा।' इस बुनियादी पृष्ठभूमि के दायरे के भीतर ही स्वयंसेवी सस्थाओ तथा पंचायतों, नगरपालिकाओं के बीच संबंध की समस्याओं और संभावनाओ पर चर्चा की जानी चाहिए।

चुनावों के माध्यम से नयी पंचायतों के अस्तित्व मे आने के बाद चार तरह

की स्थितिया लक्षित की जा सकती ह '

(क) पचायतों या स्थानीय प्रयासो के अभाव में जो स्थान खाली था, उस कार्यक्षेत्र मे जन सगठनों और स्वयसेवी संस्थाओं ने अपनी जडे जमा ली है। वे पंचायतो को अपने क्षेत्र पर अतिक्रमण करनेवाले नवोदित सस्थानों के रूप में देखती है।

(ख) नवगठित पचायतें सामुदायिक प्रयासो और स्वयंसेवी संस्थाओं या गैरसरकारी सगठनो दोनों ही को अपने क्षेत्राधिकार मे काम करनेवाले प्रतिद्वंद्वियो के रूप मे देखती हैं।

(ग) तीसरी स्थिति यह है कि पंचायते और स्वयसेवी सगठन दोनो ही अपनी-अपनी भूमिकाओं को समझते हैं तथा एक-दूसरे के काम में पूरक बनने के लिए आपसी तालमेल और सहयोग से काम करते हैं।

(घ) कई इलाको में स्वयसेवी सस्थाएँ पंचायत चुनावों में हिस्सा लेती हैं और अपने उम्मींदवार खडे करती हैं। स्वयसेवी क्षेत्र के उम्मीदवारों को या तो राजनीतिक दलों से टिकट मिल जाता है या वे निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लडते है। निचले स्तर पर ये उम्मीदवार अधिक सफल होते हैं तथा देखा गया है कि स्थानीय निकायो मे उन लोगो का कार्य निष्पादन बेहतर होता है, जिन्होंने या तो स्वयंसेवी सगठनो के साथ काम किया है या उनसे प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

स्वयसेवी संस्थाओं और पंचायतो का एक-दूसरे के प्रति रवैया कैसा है? कई राज्यो में पचायतो के प्रति स्वयसेवी सस्थाओ का रवैया 'परवाह नही' करने का है। पचायतो के प्रति जन सगठनो का दृष्टिकोण अवहेलनापूर्ण होता है और वे पंचायतो को अप्रासंगिक और निष्प्रभावी मानते है। इसलिए वे पचायतो के साथ किसी तरह के आदान-प्रदान या अंतर्क्रिया की जरूरत महसूस नहीं करते।

चूँकि कई इलाको में पंचायतें काम नही कर रही होतीं और उनकी नियमित बैठके नहीं होती, इसलिए स्वयंसेवी संस्थाएँ उन्हे गभीरता से नही लेती। वे समझती है कि पंचायतें क्षुद्र राजनीति के अखाडे है और इसलिए उनके साथ जितनी दूरी बनाये रखी जाये, उतना ही बेहतर है।

अधिकाश मामलों में, पंचायते लोगो में स्वशासन की संस्थाओ के रूप मे विश्वास नहीं जमा पाती है। अकसर तो पंचायत सदस्यो को अपनी शक्तियो व दायित्वो का ही पता नही होता। जाति तथा वर्ग की दृष्टि से हीन स्थिति, अल्प शिक्षा और वित्तीय शक्तियो के अभाव की वजह से भी उन्हे तिरस्कारपूर्ण व्यवहार का सामना करना पडता है। और फिर, आरक्षण के जरिये चुन कर भारी संख्या में आयी महिलाएँ भी अपने तौर पर कामकाज करने में समर्थ नहीं होती। वे परिवार के पुरुष सदस्यो की 'छाया' के रूप में काम करती है। दिन-प्रतिदिन के पचायत कार्यो मे राजनीतिक

दखल स भा पचायतो के विकास मे रुकावट आती हे। इसलिए प्रशिक्षण. विचार-विनियम कायक्रमो, सफल पचायतों की यात्राओं तथा जानकारी के आदान-प्रदान के माध्यम से क्षमता निर्माण बहुत ही जरूरी है। अपनी विशेषज्ञता और विशिष्ट ज्ञान के जरिये स्वयसेवी संस्थाएँ इस मामले में पंचायतो की मदद कर सकती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ज्ञान और आधुनिकतम प्रौद्योगिक विकास तक पहुँच की दृष्टि से स्वयंसेवी सस्थाओं और गैरसरकारी सगठनों का पलडा पंचायती राज सस्थाओ की तुलना में भारी है। इनमे से बहुत-से सगठन सूचना के प्रसार और जागरूकता उत्पन्न करने के कामो में लगे हुए है। उदाहरण के लिए कई ऐसे संगठन है, जो ग्रामीण इलाकों के लिए वैकल्पिक नवीकरणीय ऊर्जा प्रणालियो के विकास मे लगे है।

कई स्वयसेवी संस्थाओं तथा गैरसरकारी संगठनों ने महिला सशक्तीकरण कार्यक्रमों और भूमि सुधार के कार्यान्वियन जैसे जमीनी मुद्दो मे विशेषज्ञता हासिल कर ली है। इन विषयों के अलावा पचायतें जल प्रबंध, वन प्रबध, मछली पालन तथा समुदाय के सदस्यों की आय बढ़ानेवाली आय अर्जक परियोजनाओं के क्षेत्र मे स्वयंसेवी संस्थाओ का सहयोग ले सकती है।

इस चर्चा में स्वसहायता समूहो, पानी पचायतों, जल सभर संस्थाओं, जल उपयोगकर्ताओ की संस्थाओ, सामुदायिक सिचाई समूहों और सयुक्त वन प्रबंध, वन सरक्षण समितियों और उनके स्थायित्व के मुद्दे का विशेष उल्लेख जरूरी है। स्वसहायता समूह (सेल्फ-हेल्प ग्रुप) लघु बचत, लघु ऋण तथा ऐसे ही अन्य क्षेत्रो में कार्यरत है, जो ग्रामीण गरीबों के वित्तीय सहारे का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। यहाँ 'सेल्फ-इम्प्लायड वीमेन्स एसोसियेशन' (सेवा) की सफलता की चर्चा की जा सकती है। वनो के ह्रास, भू-क्षरण में वृद्धि, जल स्तर में गिरावट आदि के कारण जल संभर और जल उपयोगकर्ताओ की सस्थाएँ अस्तित्व में आयी है। इन सस्थाओ को जवाहर रोजगार योजना और रोजगार आश्वासन योजना की निधियो का 50 प्रतिशत तक प्राप्त करने की अनुमति है। एनआईआरडी के एक अध्ययन के अनुसार जल सभर समितियो और उपयोगकर्ता समूहों में लाभार्थियों की भागीदारी उत्पादन पैकेजों के चयन और श्रम तक सीमित थी। अत जल सभर समितियो ने नियोजन और क्रियान्वयन प्रक्रियाओ मे पिछलग्गू की भाँति काम किया। काम करने के इस तरीके में भागीदारी की गुंजाइश बहुत थी।[8]

विश्व बैंक ने इन चार जल संभर परियोजनाओं को समर्थन दिया है हिमालय जल संभर प्रबंध परियोजना, वर्षा सिंचित क्षेत्रों के लिए जल सभर विकास, समन्वित जल संभर विकास परियोजनाएँ (मैदानी) और समन्वित जल सभर विकास परियोजनाएँ (पर्वतीय)। इन परियोजनाओं की समीक्षा से पता चलता है कि ये परियोजनाएँ लबी अवधि तक नहीं चल सकतीं।

आध्र प्रदेश में लगभग 10 हजार जल उपयोगकर्ता संस्थाओं और वितरक समितियों का गठन किया गया, ताकि कारगर व भरोसेमंद जलापूर्ति और वितरण के लिए सिंचाई प्रणाली के प्रबध व रख-रखाव में किसानों की भागीदारी हासिल की जा सके। पानी पंचायतें देश के विभिन्न हिस्सो मे खेती के लिए पानी की गंभीर कमी को देखते हुए गठित की गयी है। महाराष्ट्र में नवगॉव प्रयोग पानी पचायत का एक शानदार उदाहरण है। पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में वनो को फिर से लगाने मे वन सरक्षण समितियो की सफलता के साथ ही सामुदायिक भागीदारी से वन भूमियो के संरक्षण व प्रबंध पर अधिकाधिक ध्यान केंद्रित हुआ है। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार ने जून 1990 में एक अधिसूचना जारी की, जिसके जरिये वन भूमि को बहाल करने में ग्राम समितियों और स्वयंसेवी संस्थाओं की भागीदारी को बढावा दिया गया। संयुक्त वन प्रबंध का उद्देश्य समुदाय-आधारित निर्णय प्रक्रिया ओर आम सहमति द्वारा पारंपरिक वन प्रबंध प्रणाली को फिर से वापस लाना है।

इन सभी प्रयासों मे महत्वपूर्ण मुद्दा उनके स्थायित्व का है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि जब तक इन्हें पंचायतों, जो स्थायी होती हैं, की पूर्ण निगरानी व भागीदारी मे लाया नहीं जाता, वे कारगर ढग से काम नहीं करतीं। पंचायतों के अलावा और कोई भी स्थानीय निकाय ऐसा नहीं है जो उनका स्थायित्व सुनिश्चित कर सके। जल संभर समितियों के बारे में एनआईआरडी के एक अध्ययन से पता चला है कि जल विकास दलों का गठन पंचायत समिति और ग्राम पंचायत सतरों पर जरूरी है, क्योकि तभी इनकी कार्यकुशलता व निरतरता सुनिश्चित हो सकेगी। उत्तर प्रदेश मे सयुक्त वन प्रबध को पंचायतो के दायरे में लाने के बारे मे एक विधेयक पारित हुआ है। इस बारे में एक और सफल उदाहरण पश्चिम बंगाल का है। पश्चिम बंगाल सरकार ने 1985-86 में कुएँ खोदने, उथले और गहरे नलकूप लगाने और नदी लिफ्ट सिचाई के लिए विश्व बैंक की मदद से एक व्यापक योजना शुरू की, जो मार्च 1994 में पूरी हुई। लघु कमान क्षेत्र और आसान प्रबंध की वजह से सभी उथले और निम्न कार्यक्षमतावाले नलकूप पंचायत समितियों को हस्तांतरित करने का निर्णय किया गया। प्रत्येक जिला परिषद के सभाधिपति ने स्थल चयन समिति से विचार-विमर्श कर विभिन्न पंचायत समितियों को ये नल कूप हस्तांतरित कर दिये। पंचायत समिति स्तर पर कृषि, सिंचाई और सहयोग की स्थायी समिति ने नल कूप ग्राम पंचायतों को आवटित कर दिये। कमान क्षेत्र में आनेवाले सभी किसानो से यह वचन लिया गया कि वे पचायत नल कूपो से दिया जानेवाला पानी खरीदेंगे। नल कूपों की रोजमर्रा की देखभाल का काम लाभार्थी समिति द्वारा किया जा रहा है जो पश्चिम बंगाल के पंचायती राज की एक अनूठी विशेषता है। सभी नल कूप ऑपरेटर इस समिति के सदस्य भी है।

अपने नियामक कार्यो और नीतिगत मामलो पर जोर के साथ-साथ पंचायते अपने कार्यक्रमों और योजनाओ के क्रियान्वयन का काम जन संगठनों को सौंप सकती

है। इस संदर्भ में, कई ऐसे कार्य, जो अब तक राज्य द्वारा किये जाते थे, जन संगठनो द्वारा बेहतर ढग से किये जा सकते हैं--ये कार्य चाहे ऋण के क्षेत्र मे हो या कृषि विपणन अथवा विभिन्न विकास गतिविधियो के क्षेत्र में। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड की डेयरी सहकारी संस्थाएँ इस दिशा में एक ठोस उदहारण हैं। स्व-सहायता के आधार पर काम करनेवाली पंजीकृत सोसायटियो को और भी काम सौंपे जा सकते है, जिसका एक ज्वलंत उदाहरण पश्चिम बंगाल के बॉकुरा जिले मे स्थित झिलमिली मे ग्रामीण महिला श्रमिक उन्नयन समिति है। यही नही, लाभार्थियों की अनौपचारिक संस्थाओ को भी नल कूपों को चलाने और उनके रख-रखाव का जिम्मा सौपा जा सकता है, जिससे विभागीय कार्यकर्ताओ की जरूरत से बचा जा सकता है।[9] नयी स्थानीय शासन प्रणाली के तहत स्वयंसेवी क्षेत्र और जन सगठनो की भूमिका को वढाने की दिशा मे यह एक निश्चित प्रयास होगा।

कई स्वयंसेवी संस्थाएँ स्थानीय जैविक ससाधनो पर जनजातियो तथा अन्य स्थानीय समुदायो के अधिकारों के संरक्षण तथा जडी-बूटियों आदि के बारे में उनके ज्ञान को संरक्षित करने के लिए भी कार्य कर रही हैं। ये कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें स्वयंसेवी संस्थाओं ने शानदार काम किया है। पंचायती राज सस्थाएँ अब जनजातीय इलाकों मे भी काम करने लगी हैं। ये संस्थाएँ इन मुद्दों पर काम करने के लिए स्वयसेवी सस्थाओ को आमत्रित कर सकती हैं, जिससे जनजातियों और वनवासियो की बेहतरी के लिए पंचायतें इनके अनुभवो से सीख सकेंगी तथा उनकी विशेषज्ञता का फायदा उठा सकेंगी।

लोकतात्रिक संस्थाओं के निर्माण की राजनीतिक प्रक्रिया मे सामाजिक वदलाव लाने के लिए जन संगठन उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं। ये संगठन भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के प्रति अधिक संवेदी होते हैं और संकट प्रबधन मे अधिक कुशल होते है। नागरिक समाज का स्वास्थ्य कारगर जन संगठनो के अस्तित्व को भी तय करता है और उनके प्रति संवेदनशीलता भी विकसित करता है।

मौजूदा संविधान मे ग्राम सभा को कार्यकारी निकाय का दर्जा प्राप्त नहीं है। ग्राम सभा गाँव या वार्ड के सभी मतदाताओ का प्रतिनिधित्व करती है तथा उसे मुद्दे उठाने, स्पष्टीकरण माँगने और क्रियान्वयन के लिए कार्यक्रम सुझाने के अधिकार है। ग्राम सभा, ज्यादा से ज्यादा, सामाजिक निगरानी की भूमिका अदा कर सकती है। स्वयंसेवी क्षेत्र के साथ अपने अनुभव के आधार पर, ग्राम सभाएँ स्वंयसेवी संस्थाओ मे से अच्छी संस्थाओं और कम अच्छी संस्थाओ की पहचान करने की भूमिका अदा कर सकती हैं।

स्वयंसेवी संस्थाएँ पंचायतों की सदस्यता के लिए नहीं होनी चाहिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वे चुनावो में निर्दलीय उम्मीदवार खडे कर सकती हैं। लेकिन जिला नियोजन समितियों में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। अपने कार्य

निष्पादन के आधार पर य इन समितियो मे नामजद की जा सकती हे। ग्राम नियोजन, ससाधनो की पहचान, सेवानिवृत्त अधिकारियो और कर्मचारियों के स्वयसेवी तकनीकी दल गठित करने मे उनका स्थान महत्वपूर्ण हो सकता है। वे बेहतर सहयोग और समन्वय सुनिश्चित कर सकती हैं। इस प्रकार पचायतें एव स्वयंसेवी संस्थाएँ आवश्यकता होने पर, विशेषकर तब जब वे एक-दूसरे को विकेद्रीकरण और विकास की प्रक्रिया मे प्रतिद्वद्वी न समझ कर साझेदार समझें, आपस में मिल कर कारगर ढंग से काम कर सकती हैं।

इस संदर्भ में, हमें राजनीतिक दलो की भूमिका पर भी गौर करना होगा। भारत ने बहुदलीय ससदीय प्रणाली अपनायी है और लोकतान्त्रिक सस्थानो की सबसे निचली इकाइयों में भी बहुदलीय प्रणाली की झलक देखने को मिलती है। इसलिए राजनीतिक पार्टियॉ गाँवों, वार्डो और कस्बो मे अपनी जड़े जमाने के लिए एक-दूसरे से होड करती है और अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए जान लड़ा देती हैं। वे अपने जन सगठनो या पार्टी मचों से जन समस्याओं को उठाती है। जहॉ भी यह मशीनरी मजबूत होती है, वहाँ देखने मे आता है कि जन संगठन अधिक मजबूत नही होते और न ही बडी संख्या में होते है और अगर थोड़े-से होते भी हैं, तो उनका स्थान उतना महत्वपूर्ण नही होता। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पश्चिम बंगाल है।

जिन राज्यो में जन सगठनों का आधार मजबूत है, उनके पास समर्पित कार्यकर्ता है, प्रासंगिक कार्यक्रम हैं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण है और काम करने पर जोर है, वे स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की क्षमता बढ़ाने मे रचनात्मक भूमिका निभा सकते है। विचार और काम, दोनों ही के जरिये ये सस्थान मार्ग प्रदर्शन कर सकते है और स्थानीय निकायो की मदद भी कर सकते है। नियोजन प्रक्रिया के लिए जन अभियानो के माध्यम से पचायतों को नया रास्ता दिखाने मे केरल शास्त्र साहित्य परिषद की भूमिका इसका बेहतरीन उदाहरण है। महाराष्ट्र में, जहॉ सहकारी आदोलन काफी मजबूती से चल रहा है, ये संस्थाएँ राज्य में पंचायती राज को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

विकेंद्रित संस्थाओं को मजबूत करने (या कमजोर बनाने) मे विधायको, राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों और सरकारी अधिकारियो का बडा हाथ रहता है। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद से प्रशासन और सरकार की प्रवृत्ति केंद्रीकरण के पक्ष मे रही है। 1990 के दशक के आरभ से विकेद्रित सस्थाओ के प्रति उनके रुख मे सकारात्मक परिवर्तन आया है। लेकिन अभी उन्हें शासन और प्रशासन के नये स्वरूप के बारे मे उभरते सोच के अनुरूप अपने को ढालने मे समय लगेगा।

औपचारिक और अनौपचारिक, दोनों ही क्षेत्रो में गतिशील विकेंद्रित सस्थान किसी भी नागरिक समाज की नींव होते हैं। केवल वास्तविक लोकतांत्रिक माहौल मे ही, समाज अपनी भूमिका अदा कर सकता है और नागरिको को पहल करने के

लिए प्रेरित कर सकता है। सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि पड़ोस के स्तर से गाँव कस्बा, ब्लॉक और जिले के स्तर तक जिम्मेदार, पारदर्शी, भ्रष्टाचार-मुक्त और कुशल स्थानीय स्व-शासन प्रणाली के लिए सक्रिय नागरिक समाज का होना अति आवश्यक है।

संदर्भ

1 निर्मल मुखर्जी, तीसरा पाया, *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 1 मई 1993, पृष्ठ 856-62

2 डी बंदूपोपाध्याय, *स्वयसेवी संगठन और पचायत, मेनस्ट्रीम,* 29 मार्च 1997

3 एस गुहन, सघवाद तथा तिहत्तरवाँ सशोधन कुछ विचार, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, नयी दिल्ली की दसवीं वर्षगाँठ पर सितबर 1995 मे प्रस्तुत परचा। गुहन हालाँकि यह स्वीकार करते है कि नयी घटनाएँ सघवाद को मजबूत कर रही है, लेकिन उनका कहना है कि सीमित स्तर पर, क्योंकि ससाधन, उत्तरदायित्व, शक्तियां जेसी इसकी अधिकाश विषय सामग्री राज्य की इच्छा पर है।

4 जॉर्ज मेथ्यू, भारत मे स्वशासन की सस्थाएँ बहुस्तरीय सघवाद की ओर, *डेवलपमेंट एड चेंज,* खड 2 स. 2, जुलाई-दिसबर 1997, मद्रास इस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, पृष्ठ 276-93

5. उपर्युक्त (2)

6 भारत सरकार, सातवीं पचवर्षीय योजना 1985-90, खड 2, योजना आयोग, पृष्ठ 66

7 भारत सरकार, आठवी पचवर्षीय योजना, 1992-97, खंड 1, योजना आयोग, पृष्ठ 17

8. के जयलक्ष्मी और वी. अलामलाई, *डीसेंट्रलाइज्ड इस्टीट्यूशन्स इन द फॉर्मल एड इनफॉर्मल सेक्टर्स,* राष्ट्रीय ग्रामीण विकास सस्थान, हैदराबाद

9. उपर्युक्त (1)

9

पंचायतों के लिए स्वयंसेवक

क्या पचायतें गॉवों में छुपी प्रतिभाओं को आकर्षित कर सकती हैं? क्या स्थानीय निकाय इस विशाल देश के कोने-कोने में उपलब्ध मानव संसाधनो का उपयोग करने मे समर्थ हैं?

हॉ, वे कर सकती है। केरल के प्रयोग से तो यही इशारा मिलता है। विकेंद्रित नियोजन के लिए जन अभियान की सफलता के बाद केरल ने वॉलटरी टेक्नीकल कोर (वीटीसी) के नाम से एकदम नया प्रयोग शुरू किया है। कोर में हर एक ब्लॉक एव नगरपालिका के अतर्गत 50 से 60 विशेषज्ञो की टीम बनायी गयी है। यह टीम स्थानीय निकायों के लिए नौवीं योजना मे तैयार परियोजनाओ के मूल्यांकन मे मदद करेगी। स्थानीय प्रशासन प्रणाली को मजबूत बनाने की राह पर यह मील का पत्थर है।

वॉलटरी टेक्नीकल कोर की उत्पत्ति एवं महत्व को समझने के लिए उसे विकेंद्रित नियोजन के लिए जन अभियान के साथ जोड कर देखना होगा। यह अभियान राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुआ है। जन अभियान के जरिये सबसे कम समय में गॉव, ब्लॉक तथा जिला स्तर पर नियोजन क्षमता बटोरने मे सफलता मिली है। केरल में नोवी योजना का 35 से 40 प्रतिशत हिस्सा पंचायतों में लोगों द्वारा स्वयं बनायी गयी योजनाओ का है।

अभियान का पहला चरण लोगों की आवश्यकताओ एव स्थानीय विकास की कमियों को चिह्नित करने के लिए चलाया गया था। इस मकसद के लिए ग्राम सभा तथा नगरपालिका वार्ड स्तर पर सम्मेलनो एवं परिचर्चाओ का आयोजन किया गया था। केरल मे 990 ग्राम पंचायतो तथा 58 नगरपालिकाओ मे 14,000 वार्ड है। एक अनुमान के अनुसार इस अभियान में 30 लाख लोगों ने हिस्सा लिया। दूसरे चरण मे सभी पचायतों एवं नगरपालिकाओं मे विकास संगोष्ठियाँ आयोजित की गयी थीं, जिनमे निर्वाचित प्रतिनिधियों, अधिकारियों एव विशेषज्ञो ने हिस्सा लिया था। उन्होने

ग्राम सभाओं तथा वार्ड स्तरीय सम्मेलनों में चुनी गई समस्याओं के लिए समेकित हल भी ढूँढे।

पहली बार संसाधनों का नक्शा (विकास में सहायक प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों का निष्पक्ष आकलन) भी बनाया गया। इस [illegible] अनुभवजन्य आंकड़ों, त्वरित मूल्यांकन तकनीकों तथा चालू कार्यक्रमों की [illegible] समीक्षा के जरिये बनाया गया था। इन विकास रिपोर्टों मे एक लाख से ज्यादा [illegible] हैं, जिनमें स्थानीय इतिहास, संसाधन, विकास की समस्याएं एवं संभावनाएं दर्ज की गयी हैं और ये अब सभी पंचायतों मे उपलब्ध हैं।

अभियान के तीसरे चरण के अंतर्गत योजना में शामिल करने के लिए समाधानों के समेकित ज्ञापनों को परियोजनाओं अथवा योजनाओं में बदला गया था। पंचायत/नगरपालिका स्तर पर इस कार्य के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कृषि जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर कार्यबल बनाये गये थे। पंचायतों/नगरपालिकाओं की योजनाएँ बनाते समय कार्यबल द्वारा तैयार परियोजनाओं में से प्राथमिकता के आधार पर योजनाएँ छाँटी जा रही हैं। अगले चरण मे ब्लॉक एवं जिला स्तर की योजनाओं में स्थानीय योजनाओं को मिलाने के लिए जिला और ब्लॉक स्तर पर विकास संगोष्ठियों का आयोजन किया जायेगा। वॉलंटरी टेक्नीकल कोर की भूमिका इसी [illegible] बढ़ जाती है। उल्लेखनीय है कि नौवीं योजना के लिए जन अभियान का उद्घाटन केरल की स्थापना की 40वीं जयंती के अवसर पर राज्यस्तरीय महासम्मेलन में किया गया।

केरल मे सरकारी अधिकारियों ने जन अभियान पर शुरू में तो कोई ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब आम जनता का उत्साह सामने आया और उसे आगे बढ़ाने मे पंचायतो मे आत्मविश्वास दिखा तो उन्हें इसका लोहा मानना पड़ा। इसी बीच इस अभियान को शुरू करनेवाली 'राज्य नियोजन परिषद' ने अधिकारियो के लिए व्यवस्थित आचार एव प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये और, धीरे-धीरे ही सही, उनका रवैया बदलने लगा। इतना जरूर था कि ऐसे लोकाधार में भी हर एक जिले मे अधिकारियो के शामिल होने का फैसला जिला अधिकारी को ही करना था। कुछ स्थानों पर बैंक कर्मचारियो एव अफसर के संगठनों ने पंचायतों के लिए परियोजनाएँ बनाने के लिए अपने सदस्यो के प्रशिक्षण के जरिये इस अनूठे प्रयोग में हिस्सा तो लिया, मगर आंशिक रूप से। कॉलेज एवं अन्य अकादमिक केंद्र अभी तक इससे दूरी बनाये हुए हैं। उनकी तरफ से सामाजिक जिम्मेदारी की कमी इस उच्च साक्षरतावाले राज्य मे उच्च अध्ययन के केंद्रो के रवैये को परिलक्षित करती है।

जन अभियान के प्रति जनता का रुख शुरू में असमान था। कई क्षेत्रो में ग्राम सभाओं मे जहाँ हजारों लोग इकट्ठा हो रहे थे, वहीं कुछ अन्य जगहों पर कोरम पूरा करना भी भारी पड़ जाता था। शहरीकृत गाँवों में ज्यादा लोग अभियान की सभाओं मे नहीं आते थे, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों का उत्साह देखते ही बनता

था। सार्वजनिक जीवन मे जहाँ-जहाँ महिलाएँ आगे आ रही थी, उन ग्राम सभाओ मे भीड ज्यादा होती थी। इसके साथ ही पहले से ही चलाये गये प्रचार एवं जागरूकता अभियानों से भी कार्यक्रम मे भागीदारी अच्छी रहती थी। पंचायतो मे अभियान की बेहतर सफलता का सबक यह है कि प्रत्येक गाँव में राजनीतिक वफादारी और दलगत मतभेद तो रहेगे, मगर विकास की गतिविधियो के संवर्धन के लिए लोग सामुदायिक स्तर पर अपने मतभेद भूल कर एकजुट होने को तैयार है।

जन अभियान की प्रक्रिया के जरिये केरल मे पचायतो द्वारा करीब 1.5 लाख परियोजनाएँ सुझायी जा चुकी है। इन परियोजनाओ के दो वर्ग थे (1) वर्ष 1997-98 की वार्षिक योजना में शामिल करने के लिए सुझायी गयी परियोजनाएँ और (2) नौवीं योजना की बाकी अवधि के लिए सुझायी गयी योजनाएँ। इन योजनाओं के लिए राज्य सरकार ने चालू वर्ष के बजट मे 1025 करोड़ रुपए का प्रावधान किया है। नौवीं योजना मे स्थानीय निकायों का हिस्सा 40 प्रतिशत है, जो 4400 करोड रुपये बैठता है। इस पूरे कार्य व्यापार में एक बड़ा मुद्दा यह था कि स्थानीय निकायो द्वारा प्रस्तावित सैकडों परियोजनाओं की तकनीकी संभाव्यता, वित्तीय क्षमता तथा सामाजिक स्वीकार्यता का परीक्षण कौन करेगा, ताकि उनके लिए समुचित तकनीकी एव अन्य स्वीकृतियॉ आसानी से हासिल की जा सके?

इसी बिंदु पर 'वॉलंटरी टेक्नीकल कोर' (वीटीसी) का विचार उत्पन्न हुआ। वीटीसी के अंतर्गत केरल भर मे करीब 10,000 विशेषज्ञ छाँटे जायेगे। उन्हें केरल के सभी गॉवो एवं ब्लॉको में बड़ी संख्या में उपलब्ध सेवानिवृत्त एवं गैरसरकारी विशेषज्ञो मे से चुना जायेगा। उसके पास स्नातकोत्तर अथवा व्यावसायिक उपाधि के साथ ही साथ विकास के क्षेत्र में न्यूनतम अनुभव आदि निर्धारित योग्यता होना आवश्यक है। अनुभवी लोगो को शैक्षिक योग्यता की शर्त मे ढील मिल सकती है। पंचायतो को स्वैच्छिक सहायता देने के लिए उन्हें हफ्ते में कम से कम एक दिन कार्य करना होगा। ब्लॉक मे काम करने से पहले प्रत्येक जिले में उन्हें परिचयात्मक प्रशिक्षण दिया जायेगा है। ये स्वयंसेवी विशेषज्ञ ब्लॉक स्तर पर कार्यशालाओ के जरिये परियोजनाओ का मूल्यांकन करेगे।

इस नयी पहल के प्रति व्यावसायिक विशेषज्ञो का रुख काफी उत्साहजनक है। राज्य योजना परिषद द्वारा वॉलंटरी टेक्नीकल कोर मे शामिल होने के आह्वान से प्रभावित हो कर तिरुवनंतपुरम में हाल मे करीब 200 सेवानिवृत्त विशेषज्ञों ने बैठक की थी। उनमें इंजीनियर, डॉक्टर, विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजो के प्रोफेसर, तकनीशियन, बीडीओ, सैनिक, नक्शानवीस, वैज्ञानिक आदि कई सेवानिवृत्त विशेषज्ञ शामिल हुए। बैठक में आम सहमति यह बनी कि इस क्रांतिकारी व्यवस्था के जरिये पंचायतों के लिए तकनीकी, वित्तीय तथा सामाजिक दृष्टि से टिकाऊ परियोजनाएँ बनाने में इतनी बड़ी सख्या में जमा विशेषज्ञो से मुफ्त तकनीकी सलाह लेने में सहायता मिलेगी।

पचायत क्षेत्रा मे स्वास्थ्य निरोधक कायक्रमा का लागू करने म सेवानिवृत्त डाक्टर ओर स्वास्थ्य कार्यकर्ता काफी बडी भूमिका निभा सकते हैं। वीटीसी के रूप मे हुई इस पहल को पंचायतों और नगरपालिकाओ की परियोजनाओ एव योजनाओ के क्रियान्वयन के समय भी जारी रखा जा सकता है। पंचायती राज के अंतर्गत विकास योजनाओ एवं कार्यक्रमो मे सेवानिवृत्त व्यावसायिक विशेषज्ञो की भागीदारी के कई अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

भारत की आबादी मे वृद्धो (60 वर्ष से अधिक) का अनुपात धीरे-धीरे बढ रहा है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार यह अनुपात 6.3 प्रतिशत था, जबकि 60 के दशक मे यह 5.7 प्रतिशत था। केरल मे यह अनुपात अप्रत्याशित रूप से ज्यादा है। वर्ष 1961 मे यह अनुपात जहॉ 5.8 प्रतिशत था, वही 1991 मे बढ़ कर 8.10 प्रतिशत (देश मे सबसे ज्यादा) एवं 1996 में और भी बढ कर 9.5 प्रतिशत हो गया था। शताब्दी के अंत तक इस अनुपात के 10.2 प्रतिशत तथा 2021 तक कुल आबादी में वृद्धों का प्रतिशत बढ कर 16 प्रतिशत हो जाने के आसार हैं। केरल के गॉवो मे अनुभव एवं योग्यता से भरपूर लोगो की भरमार है। इसका कारण शिक्षा का ऊँचा स्तर, लबी जीवन अवधि तथा विदेशो अथवा राज्य से बाहर काम कर रहे लोगो मे सेवानिवृत्ति के बाद बसने के लिए अपनी मातृभूमि मे वापस लौटने की प्रवृत्ति है। इसके बावजूद इनकी योग्यता का शायद धार्मिक संगठनो के अलावा कोइ भी उपयोग नही कर रहा। पचायती राज संस्थाओं को सुदृढ करने के लिए मानव ससाधन की इस विराट सपदा के सदुपयोग की यह सचमुच नयी शुरुआत है।

इसका एक अर्थ स्थानीय प्रशासन के दक्ष संचालन मे नागरिक समाज द्वारा सहायता किया जाना भी है। जनता एवं नागरिक समूहों के बडे पैमाने पर शामिल होने अथवा उनके समर्थन के बिना न तो पंचायतें और न ही नगरपालिकाएँ स्वशासन की सस्थाऍ बन सकती हैं। विकास मे जनता की भागीदारी एस.के. दे सामुदायिक विकास के समय से ही महत्वपूर्ण जुमला बना हुआ है, लेकिन आज तक यह सपना साकार नहीं हो पाया। केरल का यह अभिनव प्रयोग अन्य राज्यों के लिए भी एक उदाहरण है।

पचायत कार्यक्रमो के तकनीकी पहलुओ मे तकनीकी पकड़वाले लोगो को शामिल करने से इन स्थानीय निकायो के काम-काज मे सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए समाज के दूसरे लोगो को भी आगे आने की प्रेरणा मिलेगी। अच्छे शासन की यह पक्की राह है। इस प्रकार वॉलटरी टेक्नीकल कोर के सुधी-प्रबुद्ध लोगों, विशेषज्ञो तथा नागरिकों का एक अनूठा अभियान बन जाने की खासी अच्छी सभावना है।

केरल मे यह सब राज्य योजना परिषद तथा सत्तारूढ़ दलो द्वारा शुरू से ही नीचे से ऊपर की ओर नियोजन को पूरी गंभीरता से अपनाये जाने के कारण सभव हो पाया है। इससे लोगों के लिए योजना भवन अथवा राज्य योजना परिषदों द्वारा

योजनाएँ तैयार किये जाने के रिवाज से अलग हट कर नियोजन के नये अध्याय की शुरुआत हुई है। इस नयी पहल से लोगों मे अपनी पंचायतो तथा नगरपालिकाओ से खुद योजनाएँ बनाने की क्षमता पैदा हुई है। अब राज्य के सरकारी नियोजको को सिर्फ उन पर विचार करके उन्हे स्वीकृति देनी होती है। अधिकारियों द्वारा बनायी गयो योजनाओ तथा जनता द्वारा तैयार योजनाओं में आज जबरदस्त अंतर परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए केरल में पहले योजना राशि में से सबसे ज्यादा पैसा लोक निर्माण तथा प्रशासन पर खर्च होता था। आज जनता द्वारा तैयार योजना मे सबसे ज्यादा यानी 40 से 50 प्रतिशत राशि कृषि एवं उत्पादन क्षेत्रों, 30 प्रतिशत सेवा क्षेत्र तथा बाकी 30 प्रतिशत सडको एवं प्राथमिक सेवाओ के लिए मॉगी जा रही है। इसके साथ ही स्वैच्छिक योगदान एव श्रमदान के रूप में गॉवो में योजनाओ के लिए काफी हद तक ससाधन भी खुद ही जुटाये जा रहे है। लेकिन दुर्भाग्य से केरल में पंचायतों द्वारा तैयार परियोजनाओं की आर्थिक संभाव्यता के प्रति बैकों द्वारा 45 16 के नीचे ऋण वसूली अनुपात के कारण (दिसंबर 1996 मे केरल में बैको की जमा राशि 21,340 करोड़ रुपये थी, जबकि बैको ने ऋण कुल 9,636 करोड रुपये का ही दिया हुआ था) उपेक्षा का रुख अपनाया जा रहा है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण सवाल यह है : यदि केरल यह कर सकता है, तो अन्य राज्य क्यों नही कर सकते? यदि पंचायतो को निर्धारित अधिकारों के साथ उनका मुनासिब संवैधानिक दर्जा दे दिया जाये और दूरदृष्टि-सपन्न लोग हाथ बॅटाने को आगे आयें तो यह जरूर हो सकता है। केरल के इस प्रयोग का असर अन्य राज्यो मे भी फैलना चाहिए और पंचायतों में स्वयंसेवी समूहो की भागीदारी बड़े पैमाने पर बढनी चाहिए। दुर्भाग्य से ज्यादातर राज्यों में पचायतो का गठन, उन्हे गॉवों मे परिवर्तन अथवा लोगो के जीवन की गुणवत्ता सुधारने या लोकतात्रिक आधार को सुदृढ करने का औजार बनाने के बजाय, महज 73वें सविधान संशोधन की इबारत पर अमल करने के लिए किया गया है। इसके लिए सभी राज्यों में जनहित की भावनावाले नागरिको, अधिकारियो तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों को आगे आ कर अभिनव कार्यक्रमो के जरिये पचायतो तथा नगरपालिकाओ को आवश्यक आधार देने की आवश्यकता है।

10

मानवाधिकारों के रू-ब-रू

भारत ने प्राचीन काल से ही स्थानीय मसलों के समाज-आधारित प्रबधन के लिए अनेक पद्धतियो का विकास किया था। देश के अधिकांश हिस्सो मे इन सस्थाओं को 'पचायत' के रूप मे जाना जाता था, जिसका शाब्दिक अर्थ है—पॉच व्यक्तियो की परिषद। इनका काम कृषि चरण के दौरान अन्य देशो में विकसित स्थानीय शासन की तरह था—चाहे वह रूसी 'मीर' हो, जर्मन 'मार्क' हो या इंग्लैंड का मध्यकालीन 'मेनॉर'। भारत के अधिकाश भागों मे पचायत व्यवस्था युगों से चली आ रही जाति व्यवस्था, सामाजिक प्रतिष्ठा और परिवार पर आधारित थी। भारत मे ब्रिटिश शासन के दौरान उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे स्थानीय स्वशासन की अवधारणा पहले शहरी क्षेत्र मे और बाद मे गॉवों मे लागू की गयी।[1] तब से स्थानीय स्वशासन निकायो को भारतीय सविधान का अग बनने मे सौ साल से भी अधिक का समय लग गया। इन निकायो को 'पचायत' कहा गया, लेकिन अब ये नये सारतत्व के साथ लोकतांत्रिक सस्थाएँ हैं।[2] 90 के शुरू मे पचायतों की नयी पीढी के आने के साथ ही व्यापक रूप से ऐसा माना जाने लगा है कि इससे विकेंद्रीकरण, विकास, सामाजिक न्याय, जन सहभागिता और जमीनी लोकतंत्र की संभावनाओं के द्वार खुल गये है। प्रश्न यह है कि विकेंद्रीकरण का नया दौर भारत में मानवाधिकारों की स्थिति को किस तरह प्रभावित करता है?

मानवाधिकार एक व्यापक विचार और अवधारणा है, जिसकी जड़े पश्चिमी राजनीतिक चितन में हैं। ऐसे कई चार्टर और समझौते है, जिन पर सरकारो ने अपने-अपने देश में नागरिको के अधिकारों की सुरक्षा के लिए दस्तखत किये हैं। मानवधिकारों की वैश्विक घोषणा के मुताबिक, मानवाधिकारों मे नागरिक और राजनीतिक दोनों ही अधिकार (अनुच्छेद 1 से 21) तथा आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद 22 से 28) समाहित है। असल में, यह वैश्विक घोषणा युद्ध के तुरत बाद मानवाधिकारों को ले कर बनी सहमति को प्रदर्शित करती है,

जो राष्ट्रपति रूजवेल्ट की 'चार स्वतत्रताओं' सबधी व्याख्या पर आधारित थी। इनमें अभाव से स्वतत्रता भी शामिल थी। रूजवेल्ट इन्हें अंतरराष्ट्रीय अधिकार पत्र मे शामिल करना चाहते थे। मानवाधिकारो पर 1993 मे वियेना में हुए दूसरे राष्ट्र सघ सम्मेलन मे एक व्यापकतर सहमति बनी थी, जहॉ विकास के अधिकार को सार्वभौमिक और अविच्छेद्य अधिकार तथा मौलिक अधिकारों का हिस्सा माना गया।[3] लेकिन कुछ समय के लिए भारतीय राज्यो के चरित्र पर इनका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नही पड़ा।

भारत मे मानवाधिकारो का अध्ययन तीन स्तरों पर किया जाना चाहिए—पहला, शासन द्वारा मानवाधिकारो का उल्लघन, दूसरा, लोगों के अधिकारो पर आघात करनेवाले सामाजिक-आर्थिक कारण; और तीसरा, जीविका तथा बेहतर जीवन स्तर के अधिकार की अवहेलना से बडी सख्या में लोगो का अनादर तथा उनकी प्रतिष्ठा में कमी। एक से ज्यादा अर्थो मे भारत मे ग्राम पचायतों का यह नया चरण है, जिसमें मानवाधिकार के प्रश्नों को उपर्युक्त तीनों स्तरों पर एक से ज्यादा अर्थो मे उठाया गया है। इस अध्ययन मे उपलब्ध आँकडो तथा मानवाधिकार कार्यकर्ताओ और विकेंद्रीकरण एव पंचायत अध्ययन के विशेषज्ञो के विचारों के आधार पर इन सभी पहलुओ का विश्लेषण करने की कोशिश की गयी है।

1992 के संविधान संशोधन का महत्व

यद्यपि गॉव तथा उनकी स्वशासन प्रणाली महात्मा गाधी के नेतृत्व में लड़े गये भारतीय स्वतंत्रता सग्राम के केंद्र मे थी, लेकिन जब स्वतंत्र भारत का संविधान लिखा गया तो उसके मुख्य भाग मे इन्हें जगह नही मिली—सिर्फ राज्य के नीति निदेशक तत्वो मे इनकी चर्चा भर की गयी।[4] इसलिए राज्यो ने शहरी और ग्रामीण स्थानीय निकायो को गभीरता से नही लिया। भारतीय शासन सिर्फ दो स्तरों पर सघीय शासन के रूप मे काम कर रहा था—सघ और राज्य।[5] सघीय ढॉचे मे जिले से नीचे की प्रशासनिक इकाइयों पर विचार नही किया गया। कई साल बाद यह महसूस किया गया कि स्थानीय समुदायों को गंभीरता से लिए बिना और उन्हें शक्तिशाली बनाये बिना न तो लोगो का विकास हो सकता है और न ही उनका शासन संभव है। नागरिक समाज संगठनों, बुद्धिजीवियों और प्रगतिशील राजनेताओं के प्रयासों से संसद ने 22 और 23 दिसबर 1992 को दो सविधान सशोधन—ग्रामीण स्थानीय निकायों (पचायत) के लिए 73वॉं संविधान संशोधन और शहरी स्थानीय निकायो (नगरपालिका) के लिए 74वॉं संविधान सशोधन—पारित कर इन्हें 'स्वशासन की संस्थाएँ' बना दिया।[6] एक साल के भीतर सभी राज्यों ने संशोधित सवैधानिक प्रावधानों के अनुकूल अपने-अपने कानून पारित कर दिये।

संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा उठाये गये इन सवैधानिक कदमों के परिणामस्वरूप भारत 'बहुस्तरीय संघवाद' की ओर अग्रसर हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि इससे

भारतीय राजनीति के लोकतांत्रिक आधार का विस्तार हुआ। इन संभावना से पहले, भारत का लोकतांत्रिक ढॉचा निर्वाचित प्रतिनिधियो के लिये संसद के दो सदनों, 25 राज्य विधान सभाओं और दो संघ-शासित क्षेत्रो (दिल्ली और पांडिचेरी) तक ही सीमित था। इनमें सिर्फ 4963 निर्वाचित प्रतिनिधि थे। अब ग्रामीण भारत में लगभग 600 जिला पंचायतें, 6000 ब्लॉक पंचायते तथा 250,000 ग्राम पंचायतें हैं, जहॉ भारत की 72.2 फीसदी आबादी रहती है। शहरी भारत में 96 नगर निगम, 1700 नगरपालिकाएँ और 1900 नगर पचायतें है तथा भारत की 27.8 प्रतिशत जनसंख्या यहॉ रहती है। आज हर पॉच साल पर लोग लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत करीब 34 लाख स्थानीय प्रतिनिधि चुनते है, जिनमें करीब 10 लाख महिलाएं हैं। लगभग 175 जिला पंचायतो, 2000 से अधिक ब्लॉक पंचायतों और लगभग 85,000 ग्राम पचायतों का नेतृत्व महिलाओं के हाथ में है। इसके अलावा, महिलाएं 30 नगर निगमो और करीब 600 नगरपालिकाओं की अध्यक्ष हैं। वंचित समूहों और समुदायों को एक बडी सख्या अब इन फैसला लेनेवाली संस्थाओं मे शामिल है। भारत की कुल आबादी मे 14.3 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 8 प्रतिशत जनजातियां हैं तथा लगभग 6,60,000 निर्वाचित सदस्य इन्ही जातियो का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह संख्या ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों के सदस्यो की कुल संख्या का 22.5 प्रतिशत है।

नयी स्थानीय सरकारों के मुख्य लक्षण

स्थानीय शासन के संस्थानो को जरूरी पद और प्रतिष्ठा देने के लिए संविधान में कुछ बुनियादी और जरूरी प्रावधान किये गये। इनमे नियमित चुनाव, अनुसूचित जातियों और जनजातियो, महिलाओं जैसे समाज के कमजोर वर्गो को प्रतिनिधित्व तथा इन सस्थानों को मजबूत बनाने के लिए सत्ता और वित्तीय ससाधनो का नियमित एवं निश्चित उपलब्धता शामिल है।[8] इस नयी व्यवस्था के मुख्य लक्षण हैं : प्रत्येक गांव या गाँवों के समूह के लिए एक 'ग्राम सभा' का प्रावधान, जिसमें सभी वयस्कों को मतदाता के रूप मे शामिल किया जायेगा, कुल सीटो तथा अध्यक्ष पदों का एक-तिहाई हिस्सा महिलाओं के लिए आरक्षित होना चाहिए; अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए उनकी आबादी के अनुपात में सीटो और अध्यक्ष पदों का आरक्षण होना चाहिए (इनमे एक-तिहाई स्थान इन्हीं वर्गो की महिलाओं के लिए आरक्षित होगा।); पिछडे वर्गो के हित मे सीटों और अध्यक्ष पदो के आरक्षण के लिए राज्य विधान सभाओ को स्वतंत्रता, 11वी अनुसूची में वर्णित विषयों में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाओ के निर्माण के लिए विशेष उत्तरदायित्व; तथा वित्तीय संसाधनों और चुनावो के लिए क्रमश राज्य वित्त आयोग और राज्य चुनाव आयोगो का गठन। पंचायत का कार्य काल पॉच साल का होगा है।

मुद्दे

नयी पीढ़ी की पंचायतों द्वारा कार्य प्रारभ किये जाने के बाद ऐसे अनेक मुद्दे सामने आये है जिनका संबंध मानवाधिकारों से है। पचायती व्यवस्था के रू-ब-रू मानवाधिकारो की स्थिति के महत्वपूर्ण कारक के रूप मे निर्णायक योगदान भारतीय समाज की प्रकृति का है, जो स्वभाविक रूप से राज्य के स्वरूप को भी तय करती है। भारतीय समाज अपनी विषमता, सामाजिक पदानुक्रम तथा अमीर एव गरीब मे भेद के लिए जाना जाता है। सामाजिक पदानुक्रम जाति व्यवस्था का ही परिणाम है, जो भारत के बाहर कहीं नही पायी जाती। इस प्रकार जाति एवं वर्ग दो कारक हैं जो इस सदर्भ में ध्यान आकर्षित करते हैं। एक अन्य स्तर पर इन सवालों को देखना जरूरी हे कि सामाजिक व्यवस्था के शिकार कौन लोग हैं? राज्य की प्रकृति एवं चरित्र के शिकार कौन है? ये लोग हैं पहले के अछूत (ये अब अपने को दलित कहते है, जिसका अर्थ है 'दबाया गया'), जनजातियाँ, स्त्रियाँ एव गरीब। लोकतांत्रिक प्रक्रिया से चुनी गयी स्थानीय संस्थाओं को मजबूत कर विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया किस प्रकार मानवाधिकार के उपर्युक्त सवालों को हल करेगी? क्या विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया एव विकेंद्रीकृत सस्थाएँ मानवाधिकारों के उल्लघन में वृद्धि करेंगी या मानवाधिकारों के पालन एव सम्मान की सभावनाओं को बढ़ायेंगी? इस परचे मे प्रथमतः सामाजिक कारको एव हाशिये पर स्थित लोगों के जीवन यापन के अधिकार की उपेक्षा की और अततः राज्य की प्रतिक्रिया की जॉच की गयी है। भारत की विशेष स्थिति मे जाति एवं वर्ग, इन दो कारको को विशेष रूप से चर्चा के लिए चुना गया है। परचे का उपसहार विकेंद्रीकरण के सदर्भ मे मानवाधिकारो की वर्तमान स्थिति के विश्लेषण से हुआ है। इसके साथ ही इस पर भी विचार किया गया है कि भविष्य का स्वरूप क्या हो सकता है।

जाति

जाति भारत की एक सामाजिक घटना है, जिसे परिभाषित करना असाधारण रूप से कठिन है, क्योंकि इसकी प्रकृति मे भिन्नता पायी जाती है। गॉवों में जाति व्यवस्था की जडे गहरी हैं एवं जीवन इससे व्यापक रूप से प्रभावित है, क्योकि जाति की जडें धार्मिक व्यवस्था में हैं एव इसे आनुवाशिक पदानुक्रम, जाति-सीमित वैवाहिक सबध एवं पेशागत समूहों, जिनके स्थान निश्चित है एव जिनकी गतिशीलता विभिन्न जातियो के बीच अनुपालित धार्मिक क्रियाओ के अतर द्वारा बाधित रहती है, के पदानुक्रम के रूप मे भी समझा जाता है।[10] इस परचे के लिए हम जाति व्यवस्था पर डूमोन्ट द्वारा विकसित दृष्टिकोण को अपनायेंगे। डूमोन्ट जाति को हिंदुत्व से आंतरिक रूप से संवद्ध मानते हैं। उनके अनुसार यह हिन्दू संदर्भ के बिना अकल्पनीय

है, जिससे इसकी समझ के लिए वैचारिक आधार प्राप्त होता है। डूमॉन्ट के लिए जाति स्थायी एवं शक्तिशाली सामाजिक व्यवस्था है जो एक मूल्य प्रणाली प्रस्तुत करती है, जो पदानुक्रम एवं धार्मिक रूप से स्वीकृत शुद्धता तथा अशुद्धता के विचार पर आधारित है।[11]

जाति किस प्रकार मानवाधिकारों को प्रभावित करती है? मानवाधिकार कार्यकर्ता एव विद्वान आर.एम. पाल मानते हैं कि जाति व्यवस्था ने मानव समूहो के बीच दुर्गम दीवारे खडी कर दी है, जहाँ किसी भी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करनेवाला एकमात्र कारक जन्म है।[12] इस सामाजिक स्थिति का तर्क यह है कि कोई व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के कर्मो के कारण ही किसी खास जाति में जन्म लेता है। उनके दृष्टिकोण से भारत मे आज भी मानवाधिकारों के सामाजिक उल्लघन का निकृष्टतम रूप जाति व्यवस्था ही है। पाल का तर्क है कि 'मनुस्मृति'[13] नामक ग्रथ, जहॉ से जाति व्यवस्था की जड़ें निकलती हैं, भारतीय परपरा का सर्वाधिक विकृत रूप है। इस ग्रथ के अनुसार, समाज मे स्त्रियों की स्थिति पुरुषो के अधीन ही रहनी चाहिए। इससे भी अधिक, जाति व्यवस्था निम्न जातियों एव स्त्रियो को प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित करती है। यह प्राचीन परपरा युगों से चलती आ रही है एव इसका ग्रामीण लोगो के जीवन पर आज भी बहुत असर है। निम्न जाति के लोगो को उच्च जातियो की रिहायश से अलग रहने के लिए मजबूर किया जाता है—अधिकांशत. गॉवों के सीमात पर। कई बार उन्हें मताधिकार से वंचित रखा जाता है एवं उन्हे बिना किसी पारिश्रमिक के काम करना पडता है; उनके साथ बँधुआ मजदूर की तरह व्यवहार होता है।[14] इस प्रकार कोई भी यह देख सकता है कि एक तरफ युगों पुरानी जाति व्यवस्था है जिसका आज भी अपमानजनक रूप मे अनुपालन होता है एवं दूसरी ओर भारतीय सविधान है जो लोकतान्त्रिक सिद्धातों के अनुसार कानून के समक्ष समानता प्रदान करता है। मानवाधिकार कार्यकर्ता एवं विद्वान, रामेंद्र मानते हैं कि यथार्थ इन दोनों अतिवादों के बीच कही स्थित है एव इस बात की पुष्टि करते है कि समाज मे मानवाधिकारो के उल्लंघन का सबसे बडा स्रोत जाति व्यवस्था ही है।[15]

जब से सवैधानिक संशोधनो द्वारा स्थानीय शासन व्यवस्था को मजबूती मिली है, स्थानीय समुदायों में जातिवाद की उग्र अभिव्यक्ति मे तीव्र वृद्धि हुई है। जब उच्च जातियों ने पचायती राज्य सस्थाओं को उस औजार के रूप में देखा जिसके माध्यम से लोकतांत्रिक राज्य तंत्र मे रह रहे निम्न जातियों के लोगो द्वारा व्यक्ति के रूप में अपने अधिकारो का दावा किया जाता है तो ये लोग जातिगत भेदभाव एव हिसा का निशाना बनने लगे। स्थानीय स्तर पर यह बढती हुई अशाति सामान्य घटना हो गयी है।

यह प्रकट ही है कि उच्च वर्ग जो अब तक गॉव एव समाज के मामलों एव

जा रहे बदलावों को बर्दाश्त नही कर पा रहा है। इसी कारण पंचायती व्यवस्था के क्रियान्यवन की शुरुआत से ही बदलाव को रोकने के लिए तनाव, हिंसा एव हत्याएँ होने लगी।

स्थानीय शासन निकायों के चुनाव जातिवादी समूहो के वार के पहले एव सबसे महत्वपूर्ण निशाने रहे है। नयी व्यवस्था के अंतर्गत हुए पहले चुनाव से ही निम्न जातियो द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रिया मे भागीदारी एवं पद ग्रहण करने पर उच्च जातियो द्वारा सवाल उठाया जाता रहा है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण भारत के एक दक्षिणी राज्य तमिलनाडु के मदुरै जिले के एक गॉव मेलावलावु का है। मेलावलावु मे इस क्षेत्र के प्रभावी जातियो के लोगों ने नीची जातियो के दो लोगो, पचायत अध्यक्ष एवं पचायत उपाध्यक्ष, की हत्या कर दी, क्योंकि उन्होने चुनाव लड़ने का दुस्साहस किया था। अक्टूबर 1996 के स्थानीय निकाय के चुनावो के लिए जब मेलावलावु को नीची जातियों के लिए सुरक्षित पचायत घोषित किया गया तो ऊँची जातियो ने इसका विरोध किया; परिणामस्वरूप चुनाव नहीं हो सके। चुनाव कराने का दूसरा प्रयास भी हिंसा एवं बूथ-कब्जे के कारण विफल हो गया। आखिरकार जब 30 दिसंबर 1996 को चुनाव हुए, तो ऊँची जातियों ने उसका बहिष्कार किया। उनके विरोध के बावजूद नीची जातियों के सदस्य पचायत के अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए, लेकिन ऊँची जातियो ने उन्हें कभी भी नये पचायत कार्यालय मे प्रवेश की अनुमति नही दी। अततः 30 जून 1997 को अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष की अन्य तीन व्यक्तियो के साथ दिन-दिहाडे हत्या कर दी गयी। उनका एकमात्र अपराध यही था कि वे लोकतान्त्रिक प्रक्रिया से चुने गये थे।[16]

इस प्रकार के उल्लंघन आज भी निर्बाध रूप से जारी हैं। इसी राज्य में हाल ही मे हुए स्थानीय निकायों के चुनावो में देखा गया कि ऊँची जातियाँ अब भी नीची जातियों के मताधिकार को दबा रही हैं।[17] अधिकांश राज्यों मे इसी प्रकार की घटनाएँ हुई हैं। उत्तरी राज्यों में, जो जातीय सघर्षो की ओर बढ रहे है, नये चरण की पचायतो की शुरुआत के बाद मानवाधिकार उल्लघन की अनेक घटनाएँ देखी गयी है। ऐसे अनेक उदाहरण हे, जिनसे पता चलता है कि शक्तिशाली जातियो का उच्च वर्ग गॉवो मे सामाजिक न्याय के सवैधानिक प्रयासों को लगातार विफल कर रहा है।[18] नीची जातियों के पुरुषों, स्त्रियो एवं बच्चो की हत्याओ की लगातार रिपोर्टे केवल पिछडे राज्यो तक सीमित नहीं है, जहॉ सत्ता के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया निचले स्तर पर शुरू ही नही हो पायी है। जातीय हिंसा अन्य राज्यो मे भी सामाजिक यथार्थ का हिस्सा है—पश्चिम बगाल, त्रिपुरा एवं केरल के अलावा, जहाँ राजनीतिक जागरूकता अधिक है।

बिहार में संपन्न हुए पिछले पचायत चुनावों मे एक मजिस्ट्रेट एवं अनेक उम्मीदवारो सहित 96 से अधिक व्यक्ति मतदान के दौरान मारे गये एव विभिन्न

जिलो मे 40 स अधिक उम्मीदवार चुनावो का अधिसूचना जारी होने एव नामाकन दाखिल करने के बीच मारे गये। अध्ययन बताते है कि इनमे से अधिकांश हत्याएँ जाति युद्ध के कारण हुई।[19]

विधि-सम्मत रूप से चुने जाने के बावजूद निचली जातियाँ वह उचित अधिकार एव दर्जा नही प्राप्त कर पा रही है, जिसकी वे अधिकारी है। उन्हे पचायत कार्यालय के बाहर जमीन पर बिठाया जाता है जब कि गॉव के परंपरागत प्रभुत्वशाली व्यक्ति कुर्सी पर बैठते हैं। यहाँ तक कि जब निचली जातियों पर ऊँची जातियों के समूह अन्याचार करते हैं, जो न्याय दिलाने का कोई ऐसा तंत्र नहीं होता जो उनकी सहायता कर सके। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि पुलिस (कानून एव व्यवस्था की मशीनरी) पचायतो के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। राज्य सरकार एवं पुलिस की साँठ-गॉठ एव साजिश के कारण निम्न जातियो के व्यक्तियों को निरतर अत्याचारों का शिकार बनाया जाता है। अनेक उदाहरणो में अत्याचारियो (जो ज्यादातर उच्च जातियो के होते हैं) के विरुद्ध मुकदमा तक दर्ज नही किया जाता, क्योकि पुलिस पर उच्च जातियो का प्रभाव एवं नियत्रण होता है।[20] इसी कारण 1997 के कामराजनगर जिले के राजापालयम क्षेत्र में हुए जातीय दंगों पर तमिलनाडु के लेखकों एवं विद्वानों के समूह द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि राजस्व एव पुलिस विभाग के अधिकारियो के विभिन्न स्तरों पर कम से कम एक-तिहाई अधिकारी प्रभावित वर्गो के हों।

विकेंद्रीकरण का नया दौर अब भी जातीय तनावों से जूझ रहा है, जो ग्रामीण क्षेत्रो मे वीभत्स ढंग से मौजूद है। निचली जातियो के विरुद्ध हो रहे अत्याचारो एव मानवाधिकार हनन को आदमी और आदमी के बीच बराबरी की संस्कृति विकसित करके ही नियंत्रित किया जा सकता है। इस संस्कृति का विकास मानवाधिकारो की शिक्षा एव निरक्षरता उन्मूलन द्वारा किया जा सकता है। इसमे पंचायतो की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

आर्थिक कारक

गरीबी मानव अस्मिता का हनन एवं लोप है।[21] भारत मे लगभग तीस करोड लोग गरीबी रेखा के नीचे दयनीय स्थितियों मे घोर अभाव का जीवन जीते है। भारत मे व्यापक तौर पर उपस्थित गरीबी भारतीय संविधान मे वर्णित एकजुटता, सामाजिक न्याय एव समानता के उद्देश्यों के ठीक विपरीत है। ग्रामीण गरीबो के उत्थान के लिए अनेक योजनाओं के होने के बावजूद वर्षो से गरीबी के स्तर में कोई विशेष अतर नहीं आया है। नवीनतम अनुमानो के अनुसार 26.1 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं—ग्रामीण क्षेत्रों मे 27.1 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्रों मे 23.6 प्रतिशत लोग। ग्रामीण आबादी का लगभग आधा हिस्सा (50.56 प्रतिशत) अब भी निरक्षर है। ग्रामीण स्त्रियों में निरक्षरता की दर 60 प्रतिशत है। अनुसूचित जनजातियों की

स्त्रियो मे साक्षरता की दर 24 प्रतिशत है, जो स्त्रियो की अखिल भारतीय साक्षरता दर 45.72 प्रतिशत (जनगणना 2001) से काफी कम है। स्वास्थ्य के मोर्चे पर स्थिति और भी खराब है। नवजात मृत्यु दर 63.19 प्रति हजार है, जब कि 5 वर्ष से कम की शिशु मृत्यु दर 98 प्रति हजार है। 53 प्रतिशत बच्चे कम वजन के हैं। स्वच्छता हासिल कर सकनेवालो की जनसंख्या केवल 31 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों में एक से पॉच वर्ष के आधे से अधिक बच्चे कुपोषित होते है एव 60 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण घरों में बिजली का कनेक्शन नही है।

एलन.जी. स्मिथ के अनुसार, 'ग्रामीण गरीब गॉव स्तर पर चयन के कानूनो का कष्ट भोगते हैं। जहॉ न्यूनतम भोजन या स्वास्थ्य हासिल करना अनिश्चित है, वहॉ जरूरी चयन से भी वंचित रहना पड़ता है। लेकिन यह समेकित मानवाधिकारो के निर्धारण के मुद्दो में शामिल नहीं है।[22] यह किसी भी अन्य लोकतात्रिक देश की तुलना में भारत के संदर्भ में ज्यादा सही है, यद्यपि भारत ने 1950 में लोकतात्रिक उद्देश्यो की प्राप्ति की दिशा में एक बडा कदम 'सामाजिक अवसरों की विस्तृत श्रेणियो को बढ़ावा देने की आवश्यकता'[23] के अनुसार कार्य करने के लक्ष्य के साथ-साथ उठाया था। अमर्त्य सेन और जॉन ड्रेज के अनुसार, वास्तव में 'राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, जो कडे कानूनो के पूरक हैं, कानूनी प्रावधानों से कहीं आगे बढ़ जाते है। उदाहरण के लिए वे राज्य से कहते हैं कि वह 'जनता के कल्याण को बढ़ावा देनेवाली सामाजिक व्यवस्था हासिल' करे। इसके साथ ही, वे और भी अधिक स्पष्ट अधिकारो की श्रेणियों को भी मान्य करते है—'जीवन यापन के पर्याप्त साधनों का अधिकार' एव 'मुफ्त कानूनी सहायता' से 'सभी बच्चो के लिए मुफ्त एव अनिवार्य शिक्षा' एव 'काम का अधिकार' तक।[24] स्थानीय शासन व्यवस्था का उद्देश्य संवैधानिक प्रावधानों एवं आर्थिक यथार्थ के बीच के अंतर को पाटना था। लेकिन इस दिशा मे प्रगति की रफ्तार तेज नही है।

नयी पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने के शुरुआती वर्षो में ही भारत मे गरीब हिंसा एव शोषण का शिकार होने लगे। इसके अपवाद भी हैं। पश्चिम बंगाल, कर्नाटक एवं केरल जैसे कुछ राज्यों मे गरीबी को मानवाधिकारो के मुद्दे के रूप में देखा जाने लगा एवं विकेंद्रीकरण को इसके उपचार के प्रभावी औजार के रूप में।

ग्यारहवीं अनुसूची में पंचायतों को प्रदत्त विषयों की सूची में शामिल 29 विषयो मे से अधिकांश आर्थिक विकास से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए कृषि, भूमि उन्नयन, लघु सिंचाई एवं जल प्रबंधन, डेयरी, मत्स्य पालन, सामाजिक वानिकी, लघु उद्योग, ग्रामीण भवन निर्माण, ईंधन एवं चारा, सड़के, जल परिवहन एवं फेरी, ग्रामीण विद्युतीकरण, गरीबी निवारण कार्यक्रम एवं अन्य ऐसे ही विषय।

भारतीय सदर्भ में मोटे तौर पर जाति का संबध वर्ग से है। निम्न जातियॉ

एव जाति व्यवस्था से बहिष्कृत समूह अत्यत गरीब है चूकि निचले पायदानो पर सामाजिक एवं आर्थिक कारक सामुदायिक जीवन के साथ घुले-मिले होते हैं, उन्हे अपने अधिकारो पर चौतरफा वार झेलना पड़ता है।

यह अब सर्वविदित है कि स्थानीय शासन द्वारा सचालित कार्यक्रम एवं विकास के उपादान गरीबों तक नही पहुँच पाते, क्योंकि धनी एवं शक्तिशाली व्यक्ति उनका अधिकांश हिस्सा हथिया लेते हैं। विकेंद्रीकृत संस्थाओं में भ्रष्टाचार ने सामाजिक सगठनों एवं राज्य का ध्यान आकर्षित किया है। यद्यपि जॉच एवं संतुलन की एक पद्धति एवं सामाजिक ऑडिट की व्यवस्था मौजूद है, फिर भी धनी लोग लाभ हथिया लेते हैं एवं गरीब जस के तस रह जाते हैं। हालॉकि उच्च स्तरो पर भी भ्रष्टाचार व्याप्त है, लेकिन जो निचले स्तरो पर होता है, उसका सीधा असर गरीबो एवं उनकी जीविका पर पड़ता है। उदाहरण के लिए पंचायतो के अध्यक्षों को विकास निधि मे गडबडी के लिए दंड देना (आंध्र प्रदेश), विभिन्न विकास कार्यक्रमों (कृषि क्षेत्र मे) के मद में अधिक व्यय दर्शानेवाले अधिकारियों को सजा, क्योकि चयनित लाभार्थियो को राशि प्राप्त ही नही हुई (असम), आर्थिक गड़बडियो के लिए अध्यक्ष का निलंबन, क्योकि बिना सही तरीका अपनाये खरीद पर भारी खर्च किया गया (हरियाणा), नागरिक निकायों में निर्माण के ठेके देने में घूसखोरी का मामला (कर्नाटक) आदि सन 2001 मे रिपोर्ट किये गये मामलों में से हैं।[25] विकसित राज्यों में से एक महाराष्ट्र में किये गये क्षेत्र सर्वेक्षण दिखाते हैं कि गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास हेतु आवटित धन का बडा हिस्सा अधिकारियों एवं शक्तिशाली राजनेताओं ने हडप लिया।[26] इस तरह गरीब वैसे ही रह गये जैसे वे पहले थे, बल्कि कुछ मामलों में तो उनकी स्थिति और भी बिगड़ गयी एव वे मानवाधिकारो के हनन के सहज शिकार बन गये।

दलित

पूर्व-उल्लिखित परंपरागत वर्ण व्यवस्था मे पॉचवीं श्रेणी अछूत या अत्यज की है। महात्मा गाधी ने उन्हे 'हरिजन' नाम दिया, जिसका अर्थ 'ईश्वर के लोग' होता है। लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात इस समूह के सदस्य अपने को 'दलित' कहना पसंद करते है, जिसका अर्थ होता है 'दबाया गया'। सवैधानिक रूप से उन्हें विशेष अधिकार प्राप्त है तथा उन्हें 'अनुसूचित जातियों' के रूप में जाना जाता है।[27] सवैधानिक संशोधनों द्वारा हुए विकेंद्रीकरण के पश्चात भी वे वास्तव मे किसी भी अन्य समूह की तुलना मे अधिक दीन अवस्था मे है। भारतीय सविधान के निर्माता बी.आर. आंबेडकर, जो स्वयं एक अछूत जाति के थे, ने कहा था कि गॉव भारत के विनाशक हैं, क्योंकि वे अज्ञान, साप्रदायिकता एव भ्रष्टाचार के गढ़ हैं। उन्होंने पचास वर्ष पूर्व जो कहा था, वह आज भी सच है—नयी पंचायती व्यवस्था लागू होने के बावजूद। चुनावो के पश्चात, राज्यों की रिपोर्टे बताती हैं, कि स्थानीय निकायों के शक्तीकरण के पश्चात

भी दलितो के मानवाधिकारो का उल्लघन अनेक तरीको से हुआ है। गॉव स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया ने अनेक मामलो में भागीदारी करनेवालो को शक्ति एव बल प्रदान नही किया है—मुख्यत· वचित जातियों को। मध्य प्रदेश मे 1993 के चुनावों के पश्चात पुलिस द्वारा एक दलित पंचायत सदस्य की पिटाई के मामले के अध्ययन से पता चलता है कि घटना जिले के मुख्य कार्य अधिकारी के समक्ष हुई थी एवं घटना के बाद मानवाधिकार आयोग के पास मुकदमा दर्ज होने पर इस अधिकारी ने गॉव का दौरा किया। बताया जाता है कि उक्त अधिकारी ने लोगों से कहा कि वे दलित सदस्य के पक्ष में गवाही दें। लोग इस मुद्दे पर बोलने से डर रहे थे, क्योकि उन्हे प्रशासन द्वारा सताये जाने का भय था।[28]

दलितो के लिए स्थानीय निकायो के चुनाव दु स्वप्न की तरह थे। तमिलनाडु के कुछ जिलों की चार ग्राम पचायतों मे, जो दलितों के लिए आरक्षित थीं, चुनाव नहीं हो सके—क्योकि उच्च जातियों द्वारा धमकी देने के कारण एक भी नामांकन पत्र दाखिल नहीं हो पाया। अनेक क्षेत्रों मे दलित उम्मीदवार अब भी भय मे जीते है, क्योकि उन्होंने प्रभुत्वशाली जातियो की अवहेलना करते हुए ग्राम पचायतों के विभिन्न पदों के लिए नामांकन दाखिल किया था। अनेक पचायतों में दलित सदस्यों को वोट देने से रोका गया। उन्हे डराने के लिए बहुत-से घरो एव बस्तियो पर हमला किया गया।

यहॉ यह ध्यान देना चाहिए कि विकेंद्रीकृत प्रणाली में भागीदारी द्वारा दलितों एव उपेक्षितों का सशक्तीकरण इस केंद्रीय कानून के उद्देश्यों में से एक था। लेकिन जमीनी हकीकत कुछ नकारात्मक प्रवृत्तियों की ओर इशारा करती है। यह देखा गया है कि हिंदू उच्च जातियॉ अनेक उपायो का सहारा ले कर वंचित लोगो, खासकर दलितों, के सशक्तीकरण के प्रयासो को कमजोर या ध्वस्त करने का प्रयास करती हैं। ऐसे उदाहरण हैं कि ऊँची जातियों ने अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए किये गये आरक्षण को न्यायालय में चुनौती दी एवं यह प्रयास विफल होने पर चुनावो के बहिष्कार की घोषणा की। दलितो को चुनाव लड़ने से रोकने या उन्हें किसी अन्य को समर्थन देने के लिए दबाव डालने के लिए हिंसा के अनेक मामले सामने आये है। अगर ये प्रयास भी विफल हो जाते हैं और चुनाव होना निश्चित हो जाता है, तो वे ऐसे उम्मीदवार खोजते हैं, जो प्रभुत्वशाली जातियो की इच्छा-आकांक्षाओं को पूरा करने में सहयोगी हों। दूसरी ओर, अगर कोई व्यक्ति प्रभुत्वशाली जातियों की मदद के बिना भी चुना गया, तो वे उस व्यक्ति से सहयोग नहीं करते।[29]

सत्ता में आने के बाद भी निर्वाचित दलित प्रतिनिधि नेतृत्व क्षमता का प्रभावी उपयोग करने से वचित किये जाते है। यह घटना दलित स्त्री सदस्यों के साथ ज्यादा होती है, जिन्हे दुहरे दमन का शिकार होना पड़ता है। ऐसी घटनाएँ आम हैं जब स्त्री दलित सरपच को पचायत की कार्यवाही के दौरान जमीन पर बैठना पडता है

एव ऊँची जातियो के सदस्य कुर्सी पर बैठते हैं। समस्या तब भी होती है जब ग्राम सचिव ऊँची जाति का होता है। सकारात्मक पक्ष यह देखा गया है कि दलित सरपच या सदस्य की उपस्थिति के कारण ग्राम सभा की बैठको में दलितों की भागीदारी अधिक होती है। मोह भंग तब होना है, जब दलित सरपचों को मजबूर किया जाता है कि वे ऊँची जातियों से सबंधित कार्यो को प्राथमिकता प्रदान करे।

जनजातियाँ

अनुसूचित जनजातियॉ,[30] या आदिवासी, जिनमे लगभग 400 प्राचीनतम समुदाय शामिल हैं, भारत के सुदूर एवं जंगली क्षेत्रों में रहते है। ये भारत की जनसंख्या का 7 8 प्रतिशत भाग हैं। 73वें सवैधानिक संशोधन की विशेषता यह है कि इसने जमीनी लोकतत्र को प्राप्त करने के लिए अनुसूचित जातियो/जनजातियो एवं स्त्रियों जैसे वचित समूहों की भागीदारी सुनिश्चित की है। पर 73वॉ संशोधन अनुसूचित क्षेत्रो (वे भौगोलिक क्षेत्र, जहॉ आदिवासी घने रूप से रहते है) में स्वत लागू नहीं होता था क्योकि इनकी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताएँ एव विशेष जरूरतें होती है, अत एक पूरक सवैधानिक संशोधन 1996 दिसबर मे लागू किया गया जिसका शीर्षक था–'पंचायत अधिनियम (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) के प्रावधान, 1996'। अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजाति क्षेत्रों को भारतीय सविधान अनुच्छेद 244 एवं अनुसूची 5 एव 6 के प्रावधानों के सदर्भ मे निर्दिष्ट किया गया है।[31] यह विस्तार अधिनियम वर्तमान समय में सबसे प्रभावी वैधानिक उपाय है, जो जनजातीय लोगों के जीने के तरीकों, आकाक्षाओं, उनकी संस्कृति एवं परपरा को स्वीकृति देता है। बहरहाल, विस्तार अधिनियम के क्रियान्यन एव प्रभाव को जॉचने के लिए किया गया अध्ययन, कि क्या जमीनी लोकतंत्र जनजातीय लोगों की भावनाओं के अनुरूप लागू हो पा रहा है, यह बताता है कि इन क्षेत्रो मे ऐसा कुछ भी नही हुआ है जो उल्लेखनीय हो एव जनजातीय लोगो की स्थिति कमोबेश पहले जैसी ही है।

राज्यो के नेतृत्व की राजनीतिक इच्छाशक्ति पर यह एक दु खद टिप्पणी हे कि अनेक राज्यो, जैसे राजस्थान, ने 1996 के सशोधन के अनुरूप अपने कानूनो मे निर्धारित अवधि के बाद भी सुधार नही किया। राज्यो के कानूनों के एक सर्वेक्षण के अनुसार राज्यों ने सवैधानिक निर्देशो का आधे-अधूरे मन से ही पालन का प्रयत्न किया, सच्ची भावना से नही।[32] कुछ राज्यो के कानून विस्तार अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधानों को उचित ढंग से लागू नहीं करते, जैसे–लघु वन उत्पादो का स्वामित्व, भूमि हस्तातरण पर रोक, प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण आदि। यह जनजातीय क्षेत्रो के प्रति राज्य सरकारो की उदासीनता दर्शाता है एवं जनजातियों को अधिकार प्रदान करने के प्रति उनके प्रतिरोध को भी। दूसरी ओर, जनजातियों के अधिकारों का उल्लघन

नियमित अतराल पर होता रहता है। मध्य प्रदेश मे दिसबर 2001 में एक जनजाति के लोगो ने, जो अपनी जीविका के लिए एक जलाशय पर निर्भर है, राज्य सरकार के विरुद्ध आवाज उठायी, क्योंकि उन्हे लग रहा था कि सरकार उनके उत्पाद बेचने के अधिकार को समाप्त कर रही है।[33] गुजरात में अधिक गंभीर उल्लंघन हुआ, जब सरकार ने ग्राम पंचायतों के चुनावो की घोषणा के केवल 48 घटे पूर्व जनजातियों को आरक्षण देने से मना कर दिया।[34]

निर्वाचित जनजातीय पुरुषो एव स्त्रियो को स्वशासन के विकेंद्रीकृत सस्थानों मे कार्य करने नहीं दिया जाता। अनुसूचित जातियों के समान ही जनजातियों के लोग भी पंचायत नौकरशाही से अपेक्षित सम्मान नहीं पाते। जनजातियों के निर्वाचित स्त्री सदस्यों को अधिकारियो एव शक्तिशाली लोगों के अधिकारों को चुनौती देने की सजा हिसा एवं बलात्कार के रूप में मिलती है।

राजस्थान के एक जिले में एक जनजाति की स्त्री सरपच को 15 अगस्त 1998 (स्वतंत्रता दिवस) को राष्ट्रध्वज फहराने के कारण नंगा कर दिया गया। एक अन्य मामले में मध्य प्रदेश की एक जनजाति की स्त्री सरपंच को एक उच्च जाति के नेता से सलाह नहीं लेने के जुर्म में ग्राम सभा की बैठक मे नगा कर दिया गया।[35] इस प्रकार के मानवाधिकार उल्लघन की घटनाएँ भारतीय जनजातीय क्षेत्रों मे प्रतिदिन होती है—विकेंद्रीकृत शासन के लिए शक्तिशाली कानूनों के होने के बावजूद।

स्त्रियाँ

जब भारत औपनिवेशिक शासन में था, तो कुछ खास शर्तो को पूरा करनेवाले व्यक्ति ही वोट दे सकते थे एवं चुनाव लड़ सकते थे और राजनीतिक दृश्य से स्त्रियाँ गायब थीं। उदाहरण के लिए बंबई ग्राम पचायत कानून, 1920 में स्पष्ट कहा गया कि कोई भी स्त्री निर्वाचित सदस्य नहीं हो सकती एवं प्रत्येक गाँव के वयस्क पुरुष निवासी सहायक या उप-कलक्टर की अध्यक्षता में सपन्न बैठक में चुनाव सपन्न कर सकेंगे।[36] स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय संविधान मे स्त्रियो के लिए विधान मंडलों एव ससद मे आरक्षण की स्पष्ट व्यवस्था या उल्लेख नहीं था।[37] स्त्रियो को वैधानिक राजनीतिक सस्थाओं में प्रतिनिधित्व पाने में लगभग चालीस साल लग गये। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह सभव हुआ 73वे सवैधानिक संशोधन द्वारा, जिसमे स्थानीय निकायो की कुल सीटो का एक-तिहाई भाग स्त्रियों के लिए आरक्षित करने की क्रांतिकारी व्यवस्था है। इस केंद्रीय कानून द्वारा महिलाओं को वह बहुप्रतीक्षित अवसर मिला जिससे वे राजनीतिक अधिकारों द्वारा अपने आसपास के समुदाय की निर्णय प्रक्रिया मे सक्रिय हिस्सेदारी कर सके। पंचायती राज के इस नये दौर में दस लाख से अधिक निर्वाचित स्त्री प्रतिनिधि पचायत के तीनो स्तरो के लिए चुनी जाती है और स्थानीय

समुदाय का प्रवक्ता बन कर राजनातिक प्रतिनिधित्व का जमीनी अथ प्रदान करता है।

संवैधानिक सशोधनो द्वारा स्त्रियों के राजनीतिक सशक्तीकरण के पिछले नौ वर्षों के अनुभवो ने अनेक मिथको को तोडा है, जैसे वे राजनीतिक संस्थाओ के प्रति नकारात्मक एव उदासीन हैं, केवल सपन्न एव ऊपरी तबके की स्त्रियॉ ही आरक्षण के माध्यम से सामने आयेंगी; केवल शक्तिशाली राजनेताओ की रिश्तेदार ही राजनीतिक सबद्धता के कारण पचायत चुनावो मे आयेगी, ताकि उनके लिए सीट कायम रखी जा सके; स्त्रियॉ नाम-मात्र की प्रतिनिधि सदस्य होती हैं एवं पंचायत के काम-काज मे भाग नही लेतीं। कुछ महिलाओं द्वारा ऐसा करने के बावजूद, जो पितृसत्तात्मक ढॉचे का एक अनिवार्य परिणाम है, यह कहा जा सकता है कि ये मिथक अब ध्वस्त हो चुके हैं।[38] आज की बात यह है कि स्त्रियॉ कर सकती हैं।

यह व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाता है कि स्थानीय निकायो को सत्ता मे हिस्सेदारी देने में एवं गॉवो के स्थानीय मामलों के प्रबधन में बड़े पैमाने पर स्त्रियो की भागीदारी ने (कर्नाटक में यह भागीदारी 43 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है एव वह समय दूर नही जब स्त्रियॉ 50 प्रतिशत से अधिक सीटों पर कब्जा कर लेगी) इन निकायो के स्तर एवं अधिकारों में वृद्धि की है। अनेक राज्यों में स्त्री संगठनो के कार्यो द्वारा लैगिक समानता एवं स्त्रियो के अधिकारो के प्रति जागरूकता बढी है—विशेषकर जहॉ मानवाधिकारा के प्रयासो ने समाज मे स्त्रियों के अधिकारो को सुरक्षित रखने को चुनौती की तरह स्वीकार की है।

यह भी साबित हो चुका है कि जहॉ भी स्थानीय निकायो में स्त्रियॉ पद धारण करती हैं, वहॉ सार्वजनिक मामलो के प्रबधन में अधिक कुशलता एवं पारदर्शिता मिलती हे। कर्नाटक राज्य के मालगुडी जिले की ग्राम पंचायत अध्यक्ष गंगम्मा जयकर पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण की उपज है। वे अनुसूचित जाति की हैं एवं प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं। वे शिक्षा के प्रसार में रुचि रखती थीं एवं गॉव में स्त्रियो के लिए साक्षरता की कक्षाएँ चलाती रही थीं। बालिकाओं की शिक्षा के बारे में सरकारी कार्यक्रम के बारे मे सुन कर उन्होंने योजना के बारे में जानकारी प्राप्त की एवं जरूरी प्रक्रियाओं का पालन कर गॉव में एक स्कूल खुलवाया।[39] राज्य सरकारे और नागरिक सगठन अब पचायतों की विशिष्ट नेताओ के योगदान को मान्यता देने के लिए वार्षिक पुरस्कारों की स्थापना कर रहे है।[40]

महिलाओ की हैसियत बढने के साथ-साथ पुरुष-प्रधान पितृसत्तात्मक भारतीय समाज की ओर से गंभीर प्रतिरोध भी किया जा रहा है। निर्वाचित्र स्त्रियाँ शोषण, हिसा एवं उत्पीड़न का शिकार हुई है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद देश भर से उनके अधिकारों के हनन की कहानियॉ पढ़ने और सुनने को मिल रही हैं। तमिलनाडु के एक नगर निगम की स्त्री पार्षद का मामला ऐसा ही एक मुद्दा है। विल्लापुरम

के लोगो को स्थायी जलापूर्ति की सुविधा नहीं थी एवं वे निगम के टैंकरो द्वारा लाये जानेवाले पानी पर निर्भर थे। यह पानी स्थानीय गुंडो द्वारा पैसे ले कर लोगो को बेचा जाता था। एक स्थानीय जल स्रोत से पाइपों द्वारा जलापूर्ति के प्रयास को माफिया तत्वों ने विफल कर दिया, क्योंकि उन्हे पहले की व्यवस्था से अधिक फायदा था। लीलावती ने अपने चुनाव प्रचार मे केवल एक मुद्दे, अपने चुनाव क्षेत्र मे पीने का पानी लाने को, ले कर प्रचार किया। उनके अनथक प्रयास से स्थानीय नौकरशाही पर दबाव बना एवं प्रयास सफल हुआ। लेकिन परीक्षा आपूर्ति के तीन दिनों बाद, सशस्त्र लोगो ने दिन-दिहाडे उनकी हत्या कर दी। लीलावती पानी के लिए लोगो के संघर्ष का प्रतीक बन गयी।[41]

प्रारंभ में स्त्रियाँ इस नये राजनीतिक दृश्य मे प्रवेश करने से हिचकती थी। राजनीतिक दलों एवं निहित स्वार्थी तत्वो ने इस स्थिति का लाभ उठाया एवं उनका परोक्ष शासन चलने लगा। इस प्रकार सत्ता परंपरागत शक्तिशाली समूहो के पास ही रही। स्त्री सरपंचों के पतियो का नया वर्ग सामने आया, जो पंचायत के मसलो को सँभालता था एवं पत्नियाँ रबर स्टैम्प का कार्य करती थीं। कर्नाटक राज्य का एक अध्ययन दर्शाता है कि स्थानीय निकायो या पंचायतो के लिए निर्वाचित स्त्रियो मे से अनेक अपने पिता या पति का स्थानापन्न थी, क्योकि आरक्षण के कारण वे चुनाव नहीं लड सके। कुछ को धनी एवं शक्तिशाली लोगों ने स्थान दिलवाया—क्योकि उन्हें अपनी जरूरत के मुताबिक झुकाया जा सकता था, ताकि वे रहें तो निर्वाचित प्रतिनिधि, पर एक गुडिया की तरह उनके हितों की पूर्ति कर सकें।[42]

मानवाधिकार कार्यकर्ताओ की एक मुख्य चिंता चुनाव लड़ने के लिए दो बच्चो के नियम का, विशेषकर हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश में जहॉ यह लागू किया जा चुका है, चुनाव लडने की अनिवार्य अर्हता के रूप होना है। यहॉ यह ध्यान देना चाहिए कि ग्रामीण भारत में जल्दी बच्चे पैदा करने का चलन है, जिसके परिणामस्वरूप पुनरुत्पादन दर भी अधिक है। यह बहुत-सी स्त्रियो को राजनीति के मैदान में उतरने से रोकता है।

लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में स्थान पाने के बाद भी परंपरागत रूप से उपेक्षित समूहों की स्त्रियॉ उच्च जातियों के अत्याचारो का शिकार रही हैं। मध्य प्रदेश में पंचायत चुनावों के एक वर्ष के बाद ही रायगढ, छतरपुर, रायसेन एवं पूर्वी निमाड़—इन चार जिलो से रिपोर्ट आयी कि एक स्त्री सरपंच को नंगा किया गया, एक अन्य स्त्री सरपंच के साथ सामूहिक बलात्कार हुआ, एक उप-सरपंच का उत्पीडन हुआ एवं एक दलित पंचायत सदस्य को पीटा गया।[43]

राज्य की प्रतिक्रिया

किसी भी समाज की प्रकृति राज्य के चरित्र में दिखाई देती है। यद्यपि भारत के

सविधान मे बराबरी एव सामाजिक न्याय के आदर्श निहित है, लेकिन जमीनी यथार्थ इससे एकदम भिन्न है। सत्ताधारी पार्टी एवं गठबधन की प्रकृति भी विकेंद्रीकरण एव ग्रामीण स्तर पर जनता को सत्ता के हस्तांतरण की नीतियाँ तय करती है। अनुभव बताते है कि सवैधानिक प्रावधानो को सही अर्थो मे लागू नही किया गया है, विशेषकर पचायतो एव नगरपालिकाओ के सदर्भ मे।

प्रथम दृष्टांत एक या दूसरे कारण से पचायत चुनावो को स्थगित करने का है। अनेक राज्य सरकारो ने पॉच वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति पर चुनाव कराने के सवैधानिक प्रावधान को गंभीरता से नही लिया है। भारतीय सविधान का अनुच्छेद 243बी स्पष्ट करता है कि प्रत्येक राज्य मे गॉव, ब्लॉक एवं जिला स्तर पर पचायतें होगी एवं (1) प्रत्येक पंचायत अपनी बैठक के लिए गठित होने की तिथि से पॉच वर्षो तक चलेगी—इससे अधिक नही (2) पचायत के गठन हेतु चुनाव उसके पॉच वर्ष का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व या उसके भग होने के 6 महीने के भीतर पूरा हो जाना चाहिए (अनुच्छेद 243ई (1) एवं (3))। राजनीतिक पार्टियॉ गॉव स्तर से ही पंचायतो पर कब्जा करने के लिए प्रयासरत रहती हैं एव सत्ताधारी पार्टी राज्य की जनता का अपने कार्यकाल के मध्य या अतिम चरण मे सामना करने से घबराती है। लेकिन भारत के परिपक्व लोकतंत्र को यह श्रेय जरूर जाता है कि प्रत्येक चुनाव का नतीजा अप्रत्याशित होता है एवं राजनीतिक पार्टियॉ यह मान कर नहीं चल सकती कि जनता उन्हे ही वोट देगी।

ज्यादातर मामलो मे विपक्षी दल भी चुनाव स्थगित करने के लिए सत्ताधारी दल से हाथ मिला लेते है, क्योकि वे भी पंचायतो के मतदाताओ का सामना करने से डरते है। विपक्षी दलो के राजनेता स्थानीय निकायों को अधिकार देने की वकालत करते हैं, लेकिन यह देखा गया है कि सत्ता मे आने के बाद वे भी रंग बदल लेते है। कुछ मामलों में वे अप्रत्यक्ष रूप से उच्च न्यायालयो मे याचिका डलवाते हैं, ताकि चुनावों पर स्थगन आदेश मिल जाये। यह सरकार जैसी विधिक संस्थाओं का एक महत्वपूर्ण पक्ष है जो स्वय ही जनता को अपने प्रतिनिधि चुनने के अवसर से वचित करती हैं।

सभी राज्यों मे पचायत चुनाव पूरे हो चुके हैं—अपवाद केवल झारखड, अरुणाचल प्रदेश, एवं पांडिचेरी है। लेकिन यह हुआ है लबे न्यायिक संघर्ष के बाद तथा नागरिक सगठनो के सफल हस्तक्षेप से। समस्या यह है कि राज्यो के राज्य चुनाव आयोग इस संदर्भ मे राज्य सरकार के दबाव के आगे झुक जाते है—यद्यपि कुछ अपवाद भी हैं, जैसे उड़ीसा एवं आंध्र प्रदेश में राज्य चुनाव आयोगो ने अनावश्यक दबाव का सामना करते हुए अपने सवैधानिक दायित्वो का सफलतापूर्वक निर्वहन किया।

पंचायतों के अधिकारों को कम करने की दिशा में राज्य सरकारों के प्रयासो का दूसरा दृष्टात है पचायती राज संस्थाओं के समानांतर चलनेवाले निकायो का गठन।

इस स्तर पर केंद्र एव राज्य सरकारें दोनो ही समानांतर निकायों का गठन करने या उन्हे बढावा देने मे एक-दूसरे से होड़ करती हैं। मंत्रालयो एवं विभागों द्वारा इन पजीकृत निकायों को व्यय हेतु कोष दिया जाता है। केंद्र एव राज्य के विभिन्न मंत्रालयो एव विभागों द्वारा पचायतों को नजरअंदाज करते हुए केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं का कार्यान्वयन किया जाता है।

राज्य सरकार द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रिया को विकृत करने का एक नमूना गुजरात सरकार की 'समरस ग्राम योजना' में दिखता है, जिसके तहत उन ग्राम पचायतो को एक लाख रुपये दिये जाते है जिनके सदस्य निर्विरोध निर्वाचित होते हैं। दूसरा नमूना सीटों की नीलामी का है, जिसमें सबसे ऊँची बोली लगानेवाला व्यक्ति ही सीट पाता है। सीट पर उसका स्वामित्व तय हो जाने के बाद कोई भी उसके विरुद्ध चुनाव नही लड़ सकता। यदि कोई इसका उल्लघन करता है तो उसे शारीरिक यातना या सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ सकता है। तमिलनाडु के मदुरै जिले के एक गॉव में एक उम्मीदवार ने 5,60,000 रुपये की बोली लगा कर पंचायत अध्यक्ष का पद प्राप्त किया। वार्ड सदस्य के पद की बोली 10,000 रुपये से शुरू हुई। नीलामी की राशि का उपयोग स्थानीय उत्सवों एवं ऐसे अन्य अवसरो पर होता है।

राज्य सरकारो के ऐसे प्रयास लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर करते हैं या पूरी प्रक्रिया का मजाक बनाते है। वे एक तरफ प्रभुत्वशाली वर्गो या समुदायो को गॉव के समूचे मामले का अधिकार लेने का अवसर देते है तो दूसरी ओर स्थानीय निर्णय प्रक्रिया मे स्त्रियों, दलितों, जनजातियों एव अन्य उपेक्षित समूहों की सक्रिय भागीदारी के अवसर को छीनते है।

ग्राम सभा के माध्यम से स्थानीय निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी के अधिकार को 73वे सवैधानिक संशोधन द्वारा कानूनी मान्यता मिली है। ग्राम सभा स्थानीय जनता का स्थानीय विकास की अपनी जरूरतो एवं समस्याओ पर चर्चा करने का मच है एव योजना प्रक्रिया का अंग बनने का भी। दूसरी ओर, यह जनता को अपने उन प्रतिनिधियो के कामकाज पर नजर रखने का साधन भी प्रदान करता है, जिन्हे उसने पंचायतों हेतु चुना है। इस प्रकार ग्राम सभा पंचायत के कार्यो मे उत्तरदायित्व एव पारदर्शिता सुनिश्चित करने का एक माध्यम है। इसमे एक बड़ी कमी यह है कि 73वॉ सविधान संशोधन जहॉ ग्राम सभा के गठन का प्रावधान करता है, वही ग्राम सभा के अधिकार एव कार्य तय नहीं करता। यह सबधित राज्य सरकारो के ऊपर छोड़ दिया गया है। अतः इस प्रावधान से ग्राम सभा को वास्तविक शक्ति नहीं मिलती, ताकि वे कार्यक्षम और निर्णायक हो सकें। इस संदर्भ मे यह याद दिलाने की जरूरत है कि मानवाधिकारों के आधार पर बनी नीतियॉ गरीबों की हिस्सेदारी एव सशक्तीकरण को प्राथमिकता देती हैं।

मानवाधिकार बरक्स पचायते

पिछले एक दशक से भारत में गति पकड रही विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का गहरा असर भारत में मानवाधिकारो की स्थिति पर पडा है। यह विशेष रूप से ग्रामीण भारत के गाँवों में घटित हुआ है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया ने गाँव के लोगो को एक-दूसरे के निकट ला दिया है एव वे अव प्रत्येक पॉच वर्प बाद स्थानीय चुनावों मे भाग ले सकते हैं तथा वोट देने के अधिकार का उपयोग कर सकते है। भारत मे चुनाव जन शिक्षण की एक बड़ी प्रक्रिया है। सामुदायिक स्तर पर लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की कमी से बहिष्कृत लोगों के अधिकारों का हनन वर्षो से होता रहा है, जिसके फलस्वरूप वे समुदाय के मामलों मे सक्रिय भागीदारी नही कर सके। पंचायती राज सस्थाओं में अभिव्यक्त स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने गाँव के स्तर पर नागरिको के गौरवपूर्ण जीवन एवं सम्मान को सुनिश्चित करने की दिशा में बड़ा कदम उठाया हे। लैगिक समानता एवं स्वाधीनता पर आधारित सामाजिक न्याय के आदर्शो को स्थानीय स्तर पर बेहतर ढंग से लागू किया जा सकता है।

औपचारिक ढग से सभी राज्यो ने संवैधानिक आवश्यकताओ को पूरा कर दिया है, ताकि पंचायती राज संस्थाओ में स्त्रियों, दलितो एवं आदिवासियों जैसे वचित समूहो की भागीदारी सुनिश्चित हो सके। गरीबो की समस्याओं को हल करने के लिए कुछ गरीबी उन्मूलन एवं विकास कार्यक्रमों को पचायतो को हस्तातरित कर सवैधानिक निर्देशों का भी सम्मान किया गया है। एक-तिहाई सीटों के आरक्षण द्वारा स्त्रियो ने पंचायतों में मोटे तौर पर प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लिया है। दलितों एव आदिवासियों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या में उनकी हिस्सेदारी के अनुरूप हुआ हे।

प्रकटत यह जरूरी नही है कि औपचारिक प्रतिनिधित्व भागीदारी का सकेत भी हो। विकेद्रीकरण के नये दौर से यह बात सामने आयी है कि भारत के ग्रामीण समाज मे व्याप्त निष्कासन तथा बहिष्कार के कुछ निकृष्टतम तरीके अब अनेक राज्यो मे व्यवहार मे नही हैं। औपचारिक एव अनौपचारिक बैठकों में निर्वाचित सदस्य एक साथ वैठ कर विचार-विमर्श करते है। दलितो, आदिवासियां एव स्त्रियो सहित गॉव के सभी सदस्यों की प्रतीकात्मक भागीदारी, सवैधानिक जरूरतों के लिए ही सही, किंतु होती है। यह भारतीय राजनीतिक परिदृश्य मे हो रहे धीमे, मगर निश्चित बदलावो का एक नतीजा है।

भारत में लोकतान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा सामाजिक बदलाव शातिपूर्ण नहीं है। अत जब से भारत ने विकेंद्रकीरण एवं स्थानीय शासन व्यवस्था को मजबूत करने का गभीर प्रयत्न किया है, सभी स्तरो पर मानवाधिकारो का उल्लंघन हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि अब तक जो लोग सत्ता एव विशेषाधिकारों का उपयोग कर रहे थे, वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सवैधानिक निर्देशो के साथ भितरघात करना चाहते हे।

इसे दूसरे कोण से भी देखा जा सकता है। परंपरागत समाज मे कोई भी बदलाव, जिसका ढॉचागत प्रभाव हो, सघर्षपूर्ण होता है। हितों का टकराव इतना शक्तिशाली होता है कि उसमे हिसा, रक्तपात एवं जान का नुकसान होता है। जब से भारत को स्वतत्रता हासिल हुई है, यह होता रहा है। लेकिन इसका खूनी चरित्र लबा नहीं रहा है, क्योंकि देश मे लोकतांत्रिक व्यवस्था का विकास होता रहा है।

1993 के बाद से पचायतों के नये दौर मे, कुछ राज्यो को छोड कर, चुनावो के दो दौर हो चुके हैं। यह विडबनापूर्ण है कि भारत मे चुनावो के समय गभीर रूप से मानवाधिकारों का उल्लघन होता है। चुनाव के समय अमीर यह प्रयास करते है कि गरीबो का वोट खरीद लें या वोट बैक के रूप में उनका इस्तेमाल करे। अनेक मामलों में ऊँची जातियॉ नीची जातियों को वोट देने से रोकती है—जब उन्हे यह पता चलता है कि गरीब एव वंचित लोग स्वतंत्रतापूर्वक मतदान करनेवाले हैं। इस प्रक्रिया में हिंसक वारदाते होती है एव अनेक लोग जान गॅवा देते हैं। यद्यपि राज्यो एवं ससद के चुनावो में भी हिसा होती है, लेकिन स्थानीय चुनावों मे सबसे अधिक होती है, क्योंकि इनमे मतदान का प्रतिशत भी ऊँचा होता है।

गॉव स्तर पर हिसा इसलिए भी अधिक होती है कि स्थानीय स्तर पर राजनीतिक सत्ता सबसे महत्त्वपूर्ण औजार है एव सभी इसे हथियाना चाहते है। अत- पहले से मौजूद तनाव तब और बढ जाता है जब सत्ता की इच्छा रखनेवाले वचित लोग उन वर्गो के विरुद्ध खडे होते हैं जो इसे छोडना नहीं चाहते। बाहुबल तथा धन एव जाति की शक्ति का वीभत्स रूप स्थानीय निकायो के चुनावो मे सामने आता है। इस हिसा का एक विश्लेषण यह दर्शाता है कि जहॉ भी राजनीतिक चेतना कम होती है एव विकास की गति सापेक्ष रूप से विपरीत है, उस क्षेत्र के लोग हिंसा मे अधिक संलग्न होते है। यहॉ यह कहा जा सकता है कि जातिवाद खत्म करने के लिए दृढ राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ ठोस व्यवस्थित प्रयास नही हो रहे है। कानूनी प्रावधानो का क्रियान्वयन भी काफी मामूली तथा अपर्याप्त रहा है तथा कानून का उल्लघन करनेवालो को सजा तक नही मिलती। अनुसूचित जनजातियों के सासद सार्वजनिक तौर पर यह घोषित कर चुके है कि भारत सरकार जातिवाद तथा निचली जाति के लोगो के लगातार अपमान के खिलाफ कानूनी प्रावधानों को लागू करना नहीं चाहती। उनके अनुसार, 'यह अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों का दुर्भाग्य और एक शर्मनाक ट्रेजडी हैं कि उन्हें अपने ही देशवासियो के हाथो अमानवीय और बर्बर तरीके से अपमानित होना पड़ रहा है।' कई वार उनकी औरतो को गलियों मे नगा घुमाया जाता है तथा उनके बच्चों को जानवरों की तरह काट डाला जाता है; उनके घरो को जला दिया जाता है तथा उनकी जीविका के साधन नष्ट कर दिये जाते हैं। ऐसे अवसरों पर सरकार और उसका तंत्र असहाय मूक दर्शक या उदासीन विश्लेषक की भूमिका मे नजर आते हैं।[44]

राज्य अनुसूचित जाति आर जनजाति आयोगा का गठन अनुसूचित जाति आर जनजाति (अत्याचार विरोधी) कानून, 1989 के तहत किया गया है, लेकिन जातिगत अत्याचार से पीडित व्यक्ति या समूह बदले के डर से रिपोर्ट दर्ज कराने से कतराते है, हालाँकि आयोग सुरक्षा और आर्थिक मुआवजा देने का वादा करता है।

इन सबके बीच पंचायतों ने उन सभी मामलो को सामने लाये जाने की उम्मीद पैदा की है जिन्हे पहले कालीन के नीचे दबाये रखा जाता था। अब ये मामले गुप्त या छिपे हुए नही रहे। यद्यपि ग्राम सभा ओर ग्राम पचायत जोड़-तोड़ की राजनीनि के केंद्र हैं, फिर भी उन्होने सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर खुली लड़ाई का एक मच मुहैया कराया है।[45] संवैधानिक समर्थन के साथ ऐसा मच अब पहली बार उपलब्ध हैं।

यहाँ राजनीतिक दलो की भूमिका महत्वपूर्ण है। आम सहमति की जो पूर्ववर्ती अवधारणा (जो असल मे ताकतवर जो कुछ कहता या करता है, उस पर सहमति का पर्याय है) कमजोर हो रही है। लोग पार्टी लाइन पर एकजुट हो रहे हैं, ताकि जिस मामले मे भी पारदर्शिता नही हैं, उस पर प्रश्न किया जा सके। अगर एक दल किसी कारणवश दलित का साथ देता है तो दूसरा दल दमनकारी का संरक्षक बन कर खडा हो जाता है। स्थानीय मामलों मे राज्य स्तर की राजनीति या राष्ट्रीय स्तर की विचारधारा का काफी कम असर होता है। फिलहाल तो पंचायत चुनावो मे राजनीतिक दलो की भागीदारी वर्षो पुरानी जातीय या पारिवारिक निरकुशता की चुनोती का सामना करने का सर्वोत्तम तरीका है।

जन संचार, सूचना तकनीक और भौगोलिक संचरण ने गाँवो के एकाकीपन को तोडा है। यहाँ तक कि दूर-दराज की पंचायतों में होनेवाली घटनाओ की चर्चा अब राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर तत्काल होने लगी है। नयी पंचायत व्यवस्था ने, अपनी सभी मौजूदा कमजोरियो के बावजूद, गाँवो में व्यापक सामाजिक सरोकार पेदा करने मे मदद की है।

स्थानीय स्तर पर दबे-कुचले लोगो के मानवाधिकारो के मामले मे न्यायपालिका का सकारात्मक हस्तक्षेप अँधेरे में आशा की एक किरण की तरह है। यद्यपि भारतीय न्यायपालिका अपनी धीमी चाल के लिए कुख्यात है, जन हित याचिकाएँ स्थानीय निकायों के विधानों को अर्थ देने मे एक सफल हथियार के रूप मे काम कर रही हे। उदाहरण के लिए दलित समुदाय की एक महिला को पचायत का प्रमुख बनने पर हारे हुए ऊँची जाति के उम्मीदवार का कोपभाजन बनना पडा। दलित महिला अध्यक्ष द्वारा थाने में दर्ज करायी गयी प्राथमिकी मे कहा गया कि उपद्रवियो ने उनका घर लूट लिया तथा अशोभनीय भाषा का प्रयोग करते हुए उनके साथ गाली-गलौच की। मामला अदालत मे गया। उच्च न्यायालय ने प्राथमिकी रद्द करने से इनकार करते हुए यह माना कि 'सामंती और पेशागत श्रम विभाजन के आधार पर बनी

भारत की प्राचीन जाति व्यवस्था आज पूरी तरह से अप्रासंगिक है तथा यह राष्ट्र के विकास मे एक बडी बाधा है। इसमे कोई सदेह नहीं कि 'चमार' शब्द एक खास जाति की ओर इशारा करता है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग तथाकथित ऊँची जातियो के लोग ऐसे लोगो के खिलाफ भी करते है जिन्हें वे अपने से नीचा समझते है। अत' इसका प्रयोग तथाकथित ऊँची जातियो या अन्य पिछडे वर्गों के सदस्यो को नही करना चाहिए, क्योकि इससे दलितों की भावनाएँ आहत होती है।'[46]

वास्तविक लोकतंत्र और राजनीतिक भागीदारी के लिए स्थानीय निकायो के चुनाव के कई दौर जरूरी है। इसमे कोई सदेह नहीं कि जीवंत लोकतंत्र पर आधारित स्थानीय सरकारें नागरिक संगठनों की मदद से सभी स्तरों पर लोगों के मानवाधिकारो की रक्षा करेंगी। लेकिन भारत जैसे परंपरागत समाज में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के जरिये ऐसा होने में समय लगेगा।

(यह परचा 'विकेंद्रीकरण, स्थानीय सरकार और मानवाधिकार–मुद्दो का एक सर्वेक्षण' विषय पर अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार नीति परिषद, जिनेवा के एक व्यापक अध्ययन का एक हिस्सा है। डेविड पेट्रासेक की टिप्पणियो और इस विषय पर काम करने के लिए उनके प्रोत्साहन का मै शुक्रगुजार हूँ। पेट्रासेक इस अतरराष्ट्रीय अध्ययन के समन्वयक है, जिसमे भारत, फिलीपीस, बुर्किना फासो, माली, चिली, रूसी सघ और युगाडा को शामिल किया गया है।)

संदर्भ

1 ब्रिटिश शासको ने 1687 मे व्यापारिक केंद्रों के आसपास नगर निगमो की स्थापना की तथा 1870 मे लॉर्ड मेयो ने प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए सत्ता के विकेंद्रीकरण से सबधित एक प्रस्ताव अपनी परिषद द्वारा पारित कराया। 1882 मे लॉर्ड रिपन के वायसराय बनने पर चुने हुए प्रतिनिधियोंवाले स्थानीय बोर्डो के लिए सरकारी प्रस्ताव आया, जो स्थानीय स्वशासन की दिशा मे एक प्रस्थान बिंदु साबित हुआ।

2 22-23 दिसबर 1992 को भारतीय ससद ने दो संवैधानिक सशोधन (73वाँ और 74वाँ) पारित किये तथा 24 अप्रैल 1993 को उन्हे पचायतो के लिए भाग नौ तथा नगरपालिकाओ के लिए भाग नौ-ए के रूप में जोडा गया। दिसंबर 1996 मे ससद ने 73वे सशोधन को अनुसूची पॉच के इलाकों पर लागू किया। तीन-स्तरीय स्थानीय प्रशासन व्यवस्था मे ग्राम पचायत सबसे निचला स्तर होती है। उत्तर भारत मे पचायत 2000 से 5000 की आबादी पर होती है, जब कि दक्षिण भारत मे 10,000 से 15,000 की आबादी पर। अगले स्तर की पचायत ब्लॉक/तहसील या मडल स्तर पर होती है। उप-जिला स्तर पर यह पचायत 40 से 45 ग्राम पचायतो पर होती है। सर्वोच्च स्तर पर जिला पचायत होती है।

3 अर्जुन सेनगुप्त, मानव अधिकार के रूप में विकास का अधिकार, *इकॉनॉमिक एड पॉलिटिकल वीकली*, 7 जुलाई 2001, पृष्ट 2527

4 भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 के अनुसार, राज्य ग्राम पचायतो का सगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार करेगा जो उन्हे स्वायत्त शासन की

इकाइयों के रूप मे कार्य करने याग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।

भारतीय सविधान के मुताबिक भारत राज्यो का सघ हे। 26 नवबर 1949 को सविधान सभा द्वारा अपनाय गये सविधान मे सशक्त कद्र की परिकल्पना की गयी थी।

अनुच्छेद 243 के तहत, 'पचायत स्वायत्त सरकार का सस्थान हे।' अनुच्छेद 243जी पचायतों को ऐसे अधिकार देता है, जो उन्हें स्वतत्र रूप से कार्य करने के लिए जरूरी हे। इसमें यह भी कहा गया है कि एसे कानून में अधिकारों के विकेंद्रीकरण और पचायतो को जिम्मेदारियाँ सोपने का प्रावधान हो सकता है, ताकि ऐसी योजनाएँ तेयार की जा सके, जिनसे आर्थिक विकास ओर सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त हो।

अक्टूबर 2000 म तीन नये राज्य बनाये गये ओर आज देश मे कुल 28 राज्य हे। ये नये राज्य हे झारखड, उत्तराचल ओर छत्तीसगढ।

भारतीय सविधान के खड नौ ओर नौ-ए के तहत अनुच्छेद 243ए से 243ओ ओर 243पी स 243जेडएफ तक देखे।

ग्यारहवीं अनुसूची मे पचायतो के लिए 29 विषय हैं ओर बारहवीं अनुसूची मे नगरपालिकाओं के लिए 18 विषय है। इनमें शिक्षा, कृषि, पेय जल, ग्रामीण गृह निर्माण, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, पारिवारिक कल्याण तथा लघु उद्योग जेसे विषय शामिल हैं।

जी डकन मिशेल, 1979, *ए न्यू डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी,* राउटलज ओर केगन पाल, लदन ओर हेनले

देखे डकन बी फोरेस्टर, *कास्ट एड क्रिश्चनिटी,* कर्जन प्रेस, लदन, 1980, पृष्ठ 1-4। दूसरी ओर एफ जी बेली जाति को सामाजिक सोपानीकरण का अतिवादी और कडा स्वरूप कहते है। बेली कोइ आदर्शवादी पहलू जोड बिना जाति की व्याख्या करते है ओर हिदुत्व से उसका कोई आवश्यक सबध नहीं देखते।

आर एम पाल, जाति प्रथा और मानव अधिकारों का उल्लघन, *पीयूसीएल बुलेटिन,* 12, 10 2-4 1992

पोराणिक मान्यताओं के मुताबिक मनु को विधि निर्माता माना जाता हे। उनका समय तीन हजार साल पहले का हे।

मनुस्मृति मे बेगार (निचली जाति का श्रमिक, जो बिना पारिश्रमिक के काम करता है) को मजूरी दी गयी है।

रामेंद्र, मानव अधिकार तथा जाति प्रथा, *पीयूसीएल बुलेटिन,* जनवरी 1993, पृष्ठ 8-10

जॉर्ज मेथ्यू, मेलावलावु के मायने, *हिंदू,* 30 सितबर 1997

पचायती राज अपडेट, इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, भाग 8, न. 10, अक्टूबर 2001, पृष्ठ 3

जी के लीटेन ओर रवि श्रीवास्तव, *अनइक्वल पार्टनर्स पावर रिलेशस, डिवोल्यूशन एड डेवलपमट इन उत्तर प्रदेश* सेज पब्लिकेशस 1999, पृष्ठ 105-141

पचायती राज अपडेट, खड 8 अप्रेल 2001

ह्यूमन राइट्स वाच, *ब्रोकन पीपल कास्ट वायलेस अगेंस्ट इंडिया'ज अनटचेबल्स,* 1999

ह्यूमन राइट्स एड पावर्टी इरेडिकेशन ए टालिसमेन फॉर द कॉमनवेल्थ, ह्यूमन राइट्स इनिशियेटिव, नयी दिल्ली, 2001 पृष्ठ 6

एलन जी. स्मिथ, ह्यूमन राइट्स एड च्वायस इन पावर्टी ' फूड सिक्यूरिटी, डिपेडेसी एड ह्यूमन राइट्स-बेस्ड डेवलपमेंट एड फॉर द थर्ड वर्ल्ड रूरल पुअर, प्रेजर पब्लिशर्स, 1997

जॉन ड्रेज और अमर्त्य सेन, *डेमोक्रेटिक प्रैक्टिसेस एड सोशल इनइक्वलिटी,* इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज, ऑकेजनल पेपर्स सीरीज, नयी दिल्ली, 2002

24 उपर्युक्त

25 *पचायती राज अपडेट*, जनवरी-दिसबर, 2001

26 जॉर्ज मेथ्यू, महाराष्ट्र का ग्राम सेवक राज, *द हिंदू*, 13 अग्रस्त 2001

27 भारत के राष्ट्रपति को विशेष प्रावधानों के लिए जातियो की सूची तैयार करने का अधिकार है, ताकि उनके हितो की रक्षा की जा सके। उन्हें अनुसूचित जाति कहा जाता है।

28. जॉज मेथ्यू ओर रमेश सी नायक, *पंचायतें व्यवहार मे क्या लाभ है इनसे शोषित वर्गो को? इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, मुबई, 6 जुलाई 1996 पृष्ठ 1765-1771

29. *फ्रटलाइन*, 26 अक्टूबर 2001, पृष्ठ 34-35

30. भारत के राष्ट्रपति को निचली जातियों की तरह की आदिवासिया के लिए भी उनके हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए एक सूची बनाने का अधिकार है। उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा जाता है।

31. अनुसूचित क्षेत्रो को आम तौर पर इस आधार पर तय किया जाता है अनुसूचित जातिया की अधिकता, भौगोलिक अलगाव और सामान्य पिछड़ापन। अनुसूचित क्षेत्र माने गये 10 राज्य हे—आध्र प्रदेश, बिहार, झारखड, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, उडीसा और राजस्थान। असम, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा में आदिवासी क्षेत्र माने गये हैं।

32 विस्तार अधिनियम में किये गये कुछ अनिवार्य प्रावधान आध्र प्रदेश अधिनियम मे शामिल नही किये गये हैं।

33. *हिंदू*, 14 दिसंबर 2001

34. गुजरात सरकार ने गुजरात पचायत अधिनियम, 1993 मे संशोधन के लिए 23 नवबर 2000 को एक अधिसूचना जारी की, जिसमे यह कहा गया कि पंचायत अधिनियम के खड नौ के उपखड पॉच की उपधारा (ए) के प्रावधान पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र के तहत आनेवाली ग्राम पचायतो पर लागू नहीं होंगे, जहाँ अनुसूचित जनजातियो की आबादी ग्राम पचायत की आबादी के 25 प्रतिशत से कम है। मूल उपधारा में अनुसूचित जातियो तथा जनजातियो के लिए गॉव मे उनकी आबादी के अनुपात मे सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। इस नयी अधिसूचना के लागू होने के साथ ही उन ग्राम पचायतो मे, जहाँ अनुसूचित जनजातियों की आबादी 25 प्रतिशत से कम है, अनुसूचित जनजातियो के आरक्षण में कटौती हो गयी।

35. *पचायती राज अपडेट*, जून और अगस्त 1998

36 निर्मला बुच *स्टेटस ऑफ पचायतस इन द स्टेट्स एड यूनियन टेरिटरीज 2000* में शामिल 'पचायत और स्त्रियॉ' में, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साईसेज, नयी दिल्ली, 2000, पृष्ठ 34

37 गोरतलब है कि राज्य विधान सभाओ और भारत की ससद में महिलाओ का प्रतिशत काफी कम है। ससद में महिलाओ की भागीदारी सिर्फ आठ प्रतिशत हे। किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि यह ऑकड़ा संपूर्ण महिला समाज का प्रतिनिधित्व करता है।

38 निर्मला बुच, पूर्व-उल्लखित, पृष्ठ 34-35

39. विनोद व्यासुलु और पूर्णिमा, वीमेन इन पंचायती राज, ग्रासरूट्स डेमोक्रेसी इन इंडिया, मालगुडी का अनुभव, मार्च 1999

40 कुछ पुरस्कार विजेता महिलाओं ने महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधारने, बाल विवाह तथा बाल मजदूरी के विरुद्ध अभियान चलाने, पाइप द्वारा जलापूर्ति की व्यवस्था करने, स्वास्थ्य केद्रों के निर्माण तथा प्राथमिक विद्यालयो को बेहतर बनाने में उत्कृष्ट योगदान किया हे।

41 मैथिली शिवरमण, अच्छाई को आघात, *हिन्दू*, 18 मई 1997

42 विनोद व्यासुलु और पूर्णिमा, पूर्व-उल्लिखित

43 जॉर्ज मेथ्यू और रमेश सी नायक, पूर्व-उल्लिखित

44 साउथ एशिया ह्यमन राइटस डक्यूमेंटेशन सेंटर, *रेशियल डिस्क्रिमिनेशन द रिकॉर्ड ऑफ इंडिया,* सितंबर 2001, पृष्ठ 36-37

45 विस्तृत जानकारी के लिए देखें जॉर्ज मेथ्यू और रमेश सी नायक, पूर्व-उल्लिखित

46 *पंचायती राज अपडेट,* फरवरी 2001

11

एक कदम आगे, दो कदम पीछे

राजनेताओं की जयंतियाँ मनाना और राष्ट्रीय विकास में योगदान के लिए स्त्री-पुरुषो का सम्मान करना हमारे राजनीतिक वर्ग का प्रिय शगल बन गया है। भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने कुछ पुरानी फाइलो की धूल झाड कर नये नायको का आविष्कार किया है, जिनका सम्मान किया जा सके। लेकिन यही सरकार उस वक्त स्मृति-भ्रंश का शिकार हो जाती है जब मामला स्वतंत्र भारत की एक युगांतरकारी घटना—पंचायतों को भारतीय संविधान के भाग नौ में शामिल किया जाना—की दसवी वर्षगॉठ मनाने में होता है। 1993 के 24 अप्रैल को, एक लंबी और कठिन यात्रा के बाद, पंचायतों को 'स्वशासन की संस्थाओं' के रूप मे सवैधानिक मान्यता मिली। भाजपा और उसके माध्यम से केंद्रीय सरकार इस घटना के ऐतिहासिक महत्व की उपेक्षा कर रही है। निश्चय ही, पंचायत राज्य सरकारों का विषय है, लेकिन केंद्रीय सरकार जिस तरह के संकेत भेज रही है, उससे राज्य सरकारो को यह निष्कर्ष निकालने मे सुविधा हो सकती है कि पचायतो की कोई वकत नहीं है और विकेंद्रीकरण तथा स्थानीय स्वशासन के सशक्तीकरण का काम भविष्य मे होता रहेगा।

वर्तमान सरकार की अवधारणा यह प्रतीत होती है कि पचायतों और नगरपालिकाओ को कुछ सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों के प्रभाव से सविधान मे स्थान मिल गया—इस मामले को आगे बढाने की जरूरत नहीं है। सो पंचायतों की फिक्र करने की जरूरत नही है। इस अवधारणा पर चलते हुए भाजपा सरकार ने अब तक यही किया है : कुछ पंचायत उत्साहियो को सतुष्ट करने के लिए एक कदम आगे बढना और फिर इस सस्था का महत्व कम करने के लिए दो कदम पीछे की ओर लौटना। पिछले कुछ वर्षो मे, खासकर भाजपा के सत्ता मे आने के बाद, केंद्रीय सरकार के कुछ निर्णयों को और किस रोशनी में देखा जा सकता है?

73वॉ संविधान संशोधन पारित होने के दसवें वर्ष के ठीक पहले, 21 दिसबर 2002 को, राष्ट्रीय विकास परिषद ने पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय और प्रशासनिक

सशक्तीकरण के लिए एक उच्च शक्ति-सपन्न उपसमिति का गठन किया था। यद्यपि इस उपसमिति को कार्यशील बनाने का आदेश जारी करने मे योजना आयोग को तीन महीने लग गये, इसके बावजूद हर दृष्टि से यह आगे की ओर उठाया गया एक निर्णायक कदम है।

उच्च शक्ति-संपन्न उपसमिति के अध्यक्ष है ग्रामीण विकास मंत्री। वित्त तथा कपनी मामलो के मत्री, योजना आयोग के उपाध्यक्ष, सामाजिक न्याय और सशक्तीकरण मत्री, जनजाति मामलों के मत्री तथा असम, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश और राजस्थान के मुख्य मंत्री इसके सदस्य है। योजना आयोग के सचिव इस उपसमिति के सयोजक और ग्रामीण विकास विभाग के सचिव सह-संयोजक हैं। समिति के कद-काठी के बडे होने मे क्या सदेह है।

समिति को जो निर्देश दिये गये है, उनमें ये विषय शामिल हैं : 73वें सविधान सशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के सशक्तीकरण के लिए—ताकि वे स्थानीय स्वशासन की प्रभावशाली सस्थाओं के रूप मे काम कर सके—राज्य सरकारो द्वारा उठाये गये कदमो का पुनरीक्षण, केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा ससाधनो के हस्तातरण के माध्यम से पचायती राज संस्थाओ के कार्य क्षेत्र को सुदृढ करने के लिए वाछनीय उपाय निर्धारित करना और पचायतों द्वारा अपने ससाधन विकसित करने की क्षमता का मूल्याकन तथा इस दिशा मे एक कार्य योजना का विकास।

समिति को विभिन्न स्तरो की पचायतों को विभिन्न योजनाओं के तहत किये गये वित्तीय आवटनो को जज्ब करने की उनकी क्षमता का मूल्याकन और विभिन्न स्तरों पर राजकोषीय अनुशासन तथा वित्तीय जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एक कारगर ढॉचे का विकास करना भी था। समिति के जिम्मे अन्य कार्य थे : सविधान की ग्यारहवी अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के क्षेत्र में काम करने वाले राज्य सरकार के कर्मचारियो पर पंचायतो का प्रशासनिक नियत्रण सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम सुझाना, विकास की प्रक्रिया को जनादोलन में बदलने के लिए लोगों की अनुभूत आवश्यकताओ और अभिलाषाओं को अभिव्यक्त कर सकें, ऐसी स्थानीय योजनाओ को तैयार करने तथा उन्हे परियोजनाओ का स्वरूप देने के लिए एक सुसंगत ढॉचा निर्मित करना, निर्वाचित पचायत सदस्यो के प्रशिक्षण की जरूरतों का मूल्याकन करना तथा इस प्रशिक्षण के मॉड्यूल सुनिश्चित करना, केंद्रीय सहायता को राज्यो के साथ इस तरह जोड़ना कि वह पंचायतों के सशक्तीकरण की प्रगति के साथ जुड सके; एव देश भर मे पंचायतों को सुदृढ़ और सशक्त बनाने से संबंधित अन्य प्रासंगिक मुद्दो पर विचार करना।

इतने महत्वपूर्ण मुद्दों पर कार्य करने के लिए बनायी गयी इस समिति की पहली बैठक अभी भी होनी है और विकेंद्रीकरण तथा पचायती राज के सभी हिमायती उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे है कि समिति की बैठक से क्या नतीजा निकलता है।

ऐसा लगता है कि सरकार पचायती राज संस्थाओ को एक हाथ से जो दे रही है, वह दूसरे हाथ से वापस ले ले रही है। इस द्वद्वात्मकना ने देश मे स्थानीय स्वशासन प्रणाली की नीव को ही आघात पहुँचाया है। वस्तुत' इस प्रक्रिया की शुरुआत 1999 मे ही हो चुकी थी। तब वरिष्ठ भाजपा नेता सुदरलाल पटवा केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री थे। 15 दिसंबर 1999 को सभी मुख्य मत्रियों को भेजे गये एक पत्र मे पटवा ने अपनी इस उपलब्धि की प्रशसा यह कर की थी कि जिला ग्रामीण विकास अभिकरणो को सुदृढ करने के लिए उन्होंने किस तरह 'डीआरडीए प्रशासन' नाम की एक नयी योजना का श्रीगणेश किया है। पटवा के अनुसार, डीआरडीए जिला स्तर पर ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वियन पर निगरानी रखने वाली सस्थाओं मे अग्रणी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पटवा ने—और उन्होने भी जिन्होंने उनके बाद इस मंत्रालय का नेतृत्व किया—नये पचायती राज की आत्मा को कभी समझा ही नही। अन्यथा वे इस तरह का दावा कैसे कर सकते थे, जब कि सविधान ने साफ तौर पर पचायतों को ही यह अधिकार दे रखा है कि वे अपने-अपने स्तर पर आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय की योजना तैयार करेंगी और आर्थिक विकास की योजनाओं का कार्यान्वयन करेंगी। जिला स्तर पर लोकतान्त्रिक रूप से निर्वाचित पंचायत संस्था—जिला परिषद—पर मजबूत डीआरडीए प्रशासन को वरीयता देना लोकतंत्र का मजाक उड़ाना है।

पटवा ने उन राज्य सरकारों को प्रशंसा की निगाह से नहीं देखा, जिन्होने सवैधानिक प्रावधानो की शब्दावली और आत्मा कर आदर करते हुए डीआरडीए को भग कर दिया था और उसके कार्य जिला पचायत को सौप दिये थे। पटवा ने लिखा 'यह लक्षित किया गया है कि कुछ राज्यों में डीआरडीए को भंग कर दिया गया है और उसके कार्य जिला पंचायत को सौंप दिये गये हैं। पंचायती राज संस्थाओ के साथ-साथ डीआरडीए का स्वतत्र अस्तित्व अत्यंत वाछनीय है। अतः मेरा सुझाव है कि जहाँ भी डीआरडीए का पृथक अस्तित्व नही है, आप उनका पुनर्गठन करने के लिए तत्काल कार्रवाई करे।'

डीआरडीए के प्रति सुंदरलाल पटवा का इतना प्यार क्यों उमड़ रहा था, यह कोई रहस्य की बात नही है। यह एक वह एजेसी है जो पैसे से लबालब भरी रहती हे (साल में लगभग 15,000 करोड़ रुपये) और जहाँ जिसके आवटन तथा उपयोग में सांसदो, विधायकों और अधिकारियों को खुली छूट मिली हुई है। यह वही जगह हे जहाँ राजनेता, नौकरशाह और ठेकेदार की तिगडी सबसे ज्यादा असरदार होती है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय के इस निर्णय की आलोचना कई क्षेत्रों से आयी। उदाहरण के लिए, ग्रामीण विकास मंत्रालय पर ससद की स्थायी समिति ने अपनी 2000-2001 की रिपोर्ट में कहा, 'यह समिति जानना चाहेगी कि विकास की विभिन्न

गतिविधियों पर डीआरडीए प्रशासन के सुदृढ़ीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है। विशेषत यह समिति चाहती है कि संविधान के अनुच्छेद 243 जी को ध्यान में रखते हुए डीआरडीए संस्थाओं के नौकरशाही-भाराधिक्य पर गंभीरतापूर्वक पुनर्विचार किया जाये तथा पचायती राज को सविधान के भाग नौ मे डाले जाने के पूर्व की प्रशासनिक व्यवस्था के रूप मे डीआरडीए सस्थाओ के प्रकार्यो का विलय सविधान के भाग नौ को प्रभावी बनाते हुए किया जाये; डीआरडीए का लोकतत्रीकरण तथा पचायती राज प्रणाली में उसे समन्वित करने की जरूरत है।'

तब तक वेंकैया नायडू ग्राम विकास मत्री का पद सँभाल चुके थे। पचायती राज सस्थाओ के प्रति उनकी दृष्टि और ज्यादा तथा विनाशकारी थी। उन्होने स्थायी समिति के सुझावों की बिलकुल ही उपेक्षा कर दी। इस पर 2001-2002 की ससदीय समिति ने उनके मत्रालय की आलोचना इन शब्दो मे की - 'डीआरडीए संस्थाओ के प्रकार्यो का विलय जिला पचायतों के साथ करने की अपनी पूर्व सिफारिश के प्रत्युत्तर में सरकार के जवाब को नोट कर यह समिति चितित है। मुद्दे पर विचार करने और सुस्पष्ट उत्तर देने के वजाय, वर्तमान दिशा निर्देशो को ही फिर से जारी किया जा रहा है, जिनके अनुसार डीआरडीए सस्थाओ से आशा की जाती है कि वे पचायती राज संस्थाओ के प्रभावशाली समन्वयन का काम करेंगी। इसे देखते हुए, यह समिति अपनी सिफारिशों को और भी शक्ति के साथ दुहराती है।' इसके बाद भी, वाछनीय दिशा मे कोई कार्रवाई नहीं हुई।

यह केंद्रीय सरकार पर एक दुखद टिप्पणी है कि उसने सवैधानिक हैसियत प्राप्त लोकतात्रिक सस्थाओ को मजबूत करने के लिए पिछले कुछ वर्षो मे निर्णायक ढग से काम नहीं किया।

दो

ग्रामीण विकास मत्रलाय को मिलने वाले बजटीय आवटन प्रतिरक्षा विभाग के बाद सबसे ज्यादा होते है। यह मत्रालय देश भर के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन और अधिरचना, निवास स्थितियों एव भूमि ससाधनो के विकास पर प्रतिवर्ष 20,000 करोड रुपयो से ज्यादा के कार्यक्रमो को क्रियान्वित करता है। संसद सदस्य भी इन राशियो के उपयोग मे हाथ बॅटाना चाहते हैं। इसलिए वे 'ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन मे और बडी भूमिका' की माँग करते हैं।

सरकार ने सासदों को खुश करने की पूरी कोशिश की है। अब ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो पर निगरानी रखने के लिए जिला स्तर पर समितियाँ बनाने की मुहिम चल रही है। इन समितियों की अध्यक्षता सासदो को सौंपी जायेगी। यह पचायतो की सवैधानिक हैसियत और स्वायत्तता पर संभवतः सबसे बडा आघात है। इस मुहिम की शुरुआत राजग सरकार मे ग्रामीण विकास मत्रालय के तीसरे मंत्री, शांता कुमार,

के कार्यकाल मे हुई। वे भी भाजपा के वरिष्ठ नेता है और अब मत्री पद से इस्तीफा दे चुके है।

20 दिसबर 2002 को शाता कुमार ने संसद सदस्यों को जिला निगरानी समितियो का अध्यक्ष पद सौपते हुए इसका औचित्य इस प्रकार प्रतिपादित किया : 'ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो के क्रियान्वयन को, प्रभावशाली और कार्यकुशलता दोनो ही दृष्टियों से, सुधारने की गुंजाइश है, जो आज हमारे सामने उपस्थित सबसे बडी चुनौती है, और जिसमें 'संसद सदस्यो को बृहत्तर भूमिका निभानी होगी।' मत्री महोदय के अनुसार, सरकार मानती है कि ससद सदस्य इस भूमिका का प्रभावशाली ढग से निर्वाह करने की स्थिति में हैं, अत. निगरानी समिति के अध्यक्ष पद पर उनकी नियुक्ति को शीघ्र ही लागू किये जाने की आशा की जाती है।

जिला निगरानी समिति के संगठन की चर्चा इसलिए जरूरी है कि इसके माध्यम से सरकारी चितन की दिशा प्रतिबिंबित होती है। समिति का सदस्य-सचिव जिला कलक्टर है और लगभग बीस सदस्यों की इस समिति में जिला पंचायत का अध्यक्ष भी विभिन्न प्रशासनिक विभागों के पीठासीन अधिकारियों के साथ मात्र एक सदस्य है। जो मत्री महोदय के पत्र और समिति के लिए जारी मार्ग निर्देशो का पढेगा, उस पर यही प्रभाव पड़ेगा कि मत्री महोदय की योजना मे जैसे पंचायतों का कोई अस्तित्व ही नही है। उन्होंने बहुत ही सुविधा से यह तथ्य भुला दिया कि प्रधान मत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वहुत ही स्पष्टता से कहा था कि पचायते भारत की संघीय व्यवस्था मे शासन का तीसरा सस्तर हैं।

इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा बुलायी गयी राज्य मचिवो की एक बैठक में इस प्रस्ताव पर चर्चा हुई थी और लगभग सभी सचिवो ने एकमत से सांसदों को जिला निगरानी समितियो का अध्यक्ष बनाने का विरोध किया था।

केंद्रीय सरकार की इस मुहिम का विरोध करने वाले पहले मुख्य मंत्री थे मध्य प्रदेश के दिग्विजय सिंह। उन्होने कहा कि जिला निगरानी समितियों की अवधारणा संघवाद की आत्मा के विरुद्ध और ग्रामीण विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन मे स्थानीय सरकारो की ईमानदारी और योग्यता के प्रति मंत्रालय के अविश्वास की अभिव्यक्ति है। दिग्विजय सिंह के अनुसार, यह विडबना ही है कि मत्रालय एक ऐसा अनुचित प्रस्ताव ले कर हाजिर हुआ है जो 73वे सविधान की आत्मा का हनन करनेवाला है। सरकार के इस आदेश के विरुद्ध मध्य प्रदेश के तर्क विचारणीय हैं।

दिग्विजय सिंह द्वारा उठाया गया सबसे महत्वपूर्ण नुक्ता हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं का सिद्धांत और व्यवहार है। जिला निगरानी समितियों के जो काम बताये गये हैं, वे जिला पंचायतों के प्रकार्यों और दायित्वों से मिलते-जुलते है। एक निर्वाचित

निकाय–जिला पचायत–के रू -ब-रू एक नामाकित निकाय को ज्यादा शक्तिशाली बनाना क्या अनुचित नहीं है? इसके अलावा, सांसद और विधायक जिला पचायत के सदस्य होते है। जिला परिषद का अध्यक्ष वह व्यक्ति होता है, जिसे जिले के लोगो ने अपने मामलों की देखरेख के लिए निर्वाचित किया है। मध्य प्रदेश के मुख्य मत्री का प्रश्न है - ऐसी स्थिति में जिले के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की निगरानी क लिए किसी सासद को लाना क्या जिला पचायत के सवैधानिक प्राधिकार का क्षरण करने का ऐच्छिक प्रयास नही है?

स्पष्टत' सरकार की अपेक्षा इस देश की जनता का ज्यादा सरोकार इस बात से है कि विकास कार्यक्रमो का उचित क्रियान्वयन और प्रतिवर्ष 20,000 करोड रुपये से अधिक धनराशि का ठीक से उपयोग हो। यह कहने की जरूरत नही है कि जनसाधारण का विश्वास सासदो के बजाय पचायत प्रतिनिधियों में ज्यादा है ओर इसका सीधा-सा कारण यह है कि सांसद तक अकसर उसकी पहुँच नहीं होती। इसके विपरीत, पंचायत प्रतिनिधि उसके बिलकुल करीब होते हैं, उनके साथ रोजाना का व्यवहार रहता है और जनता उनकी दैनदिन गतिविधियो पर नजर रख सकती है। यही कारण है कि देश मे ससदीय चुनावो की तुलना में पचायत चुनावों मे मतदान का प्रतिशत हमेशा बहुत अधिक होता है।

सांसदो को ग्रामीण विकास की जिम्मेदारी सौपना एक ऐसी चीज है, जिसे देश स्वीकार नही कर सकता। 1993 मे शुरू की गयी सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास योजना को ही लीजिए। इस कार्यक्रम के तहत, स्थानीय सासदों को परियोजना के चयन और कोष का आवंटन का एकल अधिकार होता है और इस अधिकार का प्रयोग करते समय वे पंचायतों की प्राथमिकताओं की उपेक्षा कर सकते हैं। राज्यों मे जारी विधायक क्षेत्र विकास योजनाओं के तहत आवंटित राशि को सासद क्षेत्र विकास योजना के तहत दी जाने वाली राशि को मिला दिया जाये, तो लगभग 3000 करोड रुपये की राशि बनती है, जो पंचायतों की भूमिका को परिमित करता है। हाल के वर्षो मे सासद क्षेत्र विकास योजना का बजट बनाने की मॉग निरतर बनी रही है, जब कि पंचायतो की वित्तीय स्वायत्तता की उपेक्षा की जा रही है। साल-दर-साल लोग इस आशय के किस्से सुनते रहते हैं कि सांसद कोष का पैसा खर्च नही हो पाता और 'खर्च' होता भी है, तो जनता के मन में खर्च के प्रकार के प्रति गभीर सशय बने रहते है। उत्तर प्रदेश की मुख्य मंत्री मायावती के कुख्यात वीडियो-टेप ग्रामीण विकास मे सासदो की 'ईमानदार' दिलचस्पी की कहानी का दूसरा ही पक्ष प्रकट करते है। सुंदरलाल पटवा से शुरू कर मायावती तक चलनेवाले किस्से का सदेश यही जान पडता है कि सासद ऊपर से नियंत्रण करना चाहते हैं। वे केंद्रीकरण के हिमायती है। विकेंद्रीकरण के वे विरोधी है।

सार्वजनिक कोषो के कुशल इस्तेमाल और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए

केंद्र और राज्य के स्तर पर अनेकानेक विस्तृत व्यवस्थाएँ हैं। अंकेक्षण का सास्थानिक तंत्र है, जो समय की कसौटी पर खरा उतर चुका है। इसी तरह, सरकार द्वारा प्रायोजित और नागरिक संगठनो द्वारा समर्थित सतर्कता समितियॉ है। दूसरे स्तर पर, भारत एक अद्वितीय देश है जिसने प्रत्यक्ष लोकतंत्र का अनूठा संवैधानिक मंच सृजित किया है—ग्राम सभा, जिसे स्थानीय विकास और व्यय की निगरानी करने के विशेष अधिकार मिले हुए है। नवाचार के इन प्रयोगों से 'सामाजिक अंकेक्षण' की अवधारणा का विकास हुआ है।

ये सभी तंत्र ठीक से काम नहीं कर रहे हैं, यह स्वीकार करने में हिचक नही होनी चाहिए। लेकिन अगर ऐसा है, तो निगरानी के मौजूदा ताने-बाने को मजबूत करना, ताकि वह सचमुच असरदार हो सके, क्या ज्यादा उपयुक्त नहीं होगा? उदाहरण के लिए, संविधान समीक्षा समिति ने सार्वजनिक निकायों के खातों के अंकेक्षण से संबंधित अपर्याप्त कानूनी प्रावधानों का जिक्र किया है, जिनके कारण कोष का दुरुपयोग होता है, परियोजनाओ का शिथिल और विलंबग्रस्त क्रियान्वयन होता है और पूरी प्रणाली ही अंततः कमजोर होती है। समीक्षा समिति ने सिफारिश की है कि पंचायतो के खातों के अंकेक्षण के लिए आवश्यक प्रावधान किये जाएँ, ताकि अंकेक्षण से संबंधित सारा कार्य वित्तीय वर्ष की समाप्ति के एक वर्ष के भीतर पूरा हो सके। साथ ही, भारत के नियंत्रण एवं लेखा महापरीक्षक को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वे पंचायतों के खातों का अंकेक्षण करवा सकें अथवा इसके लिए लेखा प्रतिमान निर्धारित कर सके। अगर मंत्रालय ने इन सिफारिशों को लागू कर दिया होता और तब भी स्थिति मे कोई सुधार परिलक्षित नहीं होता, तब कहीं सांसदो को ऊपर से उतारने के पक्ष मे दिये जा रहे तर्कों का कुछ औचित्य हो सकता था। लेकिन अपनी टोपी से सांसदो को जमीन पर उतार कर सरकार पंचायती राज संस्थाओ की अवमानना की प्रक्रिया को ही आगे बढ़ा रही है।

बहुत सारी बाधाओ और पंचायतो को महत्वहीन करने के तमाम सरकारी प्रयत्नो के बावजूद त्रि-स्तरीय पंचायतों का बैलेंस शीट सकारात्मक है। पंचायतों की भूमिका के बारे में अंतिम निर्णय देने के लिए दस वर्षों की अवधि बहुत छोटी है। तथ्य यह है कि ग्रामीण भारत एक मौन क्रांति से गुजर रहा है। वहाँ एक नये ढंग का नेतृत्व उभर रहा है। अभी तक बहिष्कृत समूह और समाज के सीमांत पर स्थित वर्ग अब राष्ट्रीय संसाधनो मे अपने हिस्से की मॉग कर रहे हैं। साधारण पुरुष और महिलाएँ अब सिस्टम का अंग हो गयी हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति का व्याकरण ही बदलने की प्रक्रिया में है। पंचायतों को भारत के संघीय ढॉचे का तीसरा सस्तर बनाये जाने की दसवी वर्षगाँठ पर, ऐसा लगता है, जनसाधारण के पास जश्न मनाने के कारण मौजूद हैं।

12

मीडिया की नजर

इन दिनों समाचार देखते हुए कुछ परेशान करनेवाले खयाल मेरे मन मे आते है। आध्र प्रदेश मे किसानों की आत्महत्या से जुड़ी जो खबर मेरे हिसाब से बहुत महत्वपूर्ण, सदमे में डालनेवाली और त्रासद थी, उसे दिन की चौथी या पॉचवी खबर के रूप मे धकेल दिया गया था, जबकि उस दिन की अन्य घटनाओं को प्राथमिकता ओर व्यापक चर्चा मिली थी। इस खबर को कम महत्वपूर्ण बनानेवाला जो एकमात्र दृष्टव्य तत्व लग रहा था, वह था इसका तीखा और विशिष्ट 'ग्रामीण' चरित्र।

आज यह लगभग अनकहा तथ्य है कि ग्रामीण भारत के लोग और उनके सकट अब हमारे मीडिया की मुख्य धारा की प्राथमिकता-सूची मे नही रह गये है। इस समूचे मुद्दे का एक डरावना पहलू यह है कि यह प्रवृत्ति बड़ी तेजी से और बिना किसी प्रश्न के स्वीकार्य होती जा रही है।

पीछे मुड़ कर देखें तो हम पाते हैं कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान और 1947 के बाद के वर्षो मे प्रिंट मीडिया ने खुद को मूलतः एक सार्वजनिक उपयोग की सेवा के रूप में प्रस्तुत किया। इसने आम लोगों के कई अभियानों मे सक्रिय सहयोग करते हुए राष्ट्र निर्माण मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और सामाजिक बदलाव के पक्ष मे तार्किक आवाजो को अभिव्यक्ति की जगह सुलभ करायी, भारत के विकास के लिए जनमत बनाया। 1946 मे दिल्ली में हुए एशियाई सम्मेलन मे गाधी जी ने जो कहा था—'यह (दिल्ली) भारत नहीं है. गॉवों मे जाइए, वही भारत है, वहॉ भारत की आत्मा बसती है।' वह काफी समय तक भारतीय पत्रकारिता के लिए वेद-वाक्य रहा। भाषाई प्रेस ने एक उत्प्रेरक की महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिसके जरिये हाशिये के जनमत के निर्माण, अभिव्यक्ति और प्रसार की गुंजाइश बनी।

धीरे-धीरे, कुछ दशको में, स्थितियॉ बदल चुकी है। आर्थिक पूर्वाग्रहो ने जनपक्षीय वैचारिक संवेदनशीलता को बेदखल कर दिया है। ऐसा लगता है कि मार्केटिग टीमे सपादकीय विभागो से ऊपर हो गयी हैं।

इसका एक कारण यह लगता है कि समाचारपत्र मालिकों के रोजाना दखल ने अखबारो के सपादकों और सवाददाताओ के अधिकार क्षेत्र को सीमित किया है। वस्तुत. समाचारपत्र कारपोरेट या राजनैतिक तंत्र से मोल-तोल करने लगे है। इसका शिकार ग्राम आधारित विकास की खबरें हुई हैं। आज अखबारों का लक्ष्य ज्यादा से ज्यादा आय बढाना है। इसके लिए जनता की जरूरतो को नहीं, बल्कि विज्ञापन को ध्यान मे रख कर की गयी खवर अहम है। इसका यह भी मतलब है कि अखबारो को अब उन्हीं लोगों तक पहुँचना है जिनके पास खरचने के लिए पैसा है। दूसरे शब्दो में, उनका लक्ष्य शहरी अमीर है।

भूमंडलीकरण के आगमन के साथ स्थितियाँ और बदतर हुई है। उपभोक्तावाद के इस दौर में मीडिया बुरी तरह 'इमेज-कॉन्शस' है और सिर्फ वही छापता है जो बिकता है। ग्रामीण विकास से जुडे गम्भीर मुद्दे उबाऊ, शैक्षणिक और कुछ ऐसी चीज माने जाते हैं जो बिकती नही है। इसलिए यह बाजार तय करता है कि क्या खबर बनने लायक है और किस मुद्दे को कितनी जगह मिलनी चाहिए। यह विडंबनापूर्ण हे कि भारत में 70 प्रतिशत से ज्यादा ग्रामीण आबादी रहते हुए भी हमारे तथाकथित राष्ट्रीय अखबार बुरी तरह नगर-केंद्रित बने रहते हैं। लगभग सभी मुद्दो, संकटो, विश्लेषणों और खबरों को उच्च और मध्य वर्ग-केंद्रित 'नगर दृष्टि' झेलनी पडती है। ग्रामीण क्षेत्रो से जुड़े विकास के मुद्दे ज्यादातर किनारे कर दिये जाते हैं या फिर इन्हें नगण्य-सी जगह दी जाती है—खबर के लिहाज से उनकी चाहे कितनी भी अहमियत क्यो न हो। आदर्श रूप मे मीडिया को प्रारभिक चेतावनी का स्रोत होना चाहिए, जिससे आनेवाली किसी खतरनाक तबाही की पूर्ण सूचना मिले। दुर्भाग्य से वे सूखा, अकाल, बाढ़ और अन्य तबाहियों के निरपेक्ष सदेशवाहक रह गये हैं—वह भी तब जब वे 'सदी की बदतरीन घटनाएँ' हो जाती हो। हालॉकि सभी अखबारो में राजनीति, खेल, व्यवसाय, फुरसत, जीवन शैली और नगर चर्चा के लिए निर्धारित पृष्ठ होते हैं, लेकिन किसी मे भी जमीनी मुद्दो या आजमाये जा रहे विकास के वैकल्पिक मॉडलो पर कोई परिशिष्ट नही होता। शख्सियतो—फिल्मी सितारों या राजनीतिज्ञों—के पीछे भागना रोजमर्रा का काम हो गया है। 'पेज तीन' प्रवृत्ति हर तरफ है। कौन-सी शख्सियत कौन-सी किताव पढ़ रही है, इस पर पूरे-पूरे परिशिष्ट आते है, मगर यह बात खबर वनने लायक नहीं है कि हमारे गॉवों में स्कूल या सडक जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी है या नहीं।

इस प्रवृत्ति का खतरा यह है कि इससे शहरी लोगों और गॉववालों के वीच पहले से ही मौजूद खाई को और चौडा करने मे मदद मिलती है। शहर मे रहनेवाला व्यक्तित्व ग्रामीण क्षेत्रो की मौजूदा स्थिति से अनजान और जमीनी आंदोलनों के प्रति संवेदनहीन होता जाता है। शहरी समाज के लिए 'भारत' शहर की सरहदों तक सीमित है। दूसरी ओर, गाँववाला खुद को 'बाकी देश' से ज्यादा-से-ज्यादा कटा हुआ और

अलग-थलग महसूस करता है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि खुद को गर्व के साथ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था बताने के बावजूद हम ग्रामीण क्षेत्रों के हालात से जुडी समस्याओं को कभी महत्व नही देते। मीडिया को इसका ध्यान सिर्फ तभी आता है जब राजेद्र सिह जैसे किसी 'पानी बाबा' को किसी अंतरराष्ट्रीय सस्थान का कोई पुरस्कार मिलता है। यही हाल जमीन से जुड़ी राजनीति का है। राष्ट्रीय राजनीति को अखबारों में महत्वपूर्ण जगह मिलती है, जबकि ग्रामीण राजनीति की कोई खबर ही नहीं होती।

इसका एक उदाहरण प्रिट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मे आने वाली पचायत की खबरें हैं। 73वें सविधान सशोधन के साथ इस बात को व्यापक मान्यता मिली हे कि जिला और उसके नीचे की पचायतें प्रशासन का नीसरा स्तर हो गयी है ओर इस तरह पर सवैधानिक प्रावधानों के तहत चुने हुए करीब तीस लाख सदस्य होते हे। जिला स्तर पर 504 पचायते है, करीब छह हजार पचायते उससे नीचे के स्तर पर और ढाई लाख से ज्यादा गाँव के स्तर पर हैं। ग्यारहवी अनुसूची के अंतर्गत इन्हे 29 विषय मिले हुए है। 73वे संविधान सशोधन के पारित होने के बाद के नौ वर्षो में पंचायतो से जुड़े कामकाज और मुद्दों को हमारे जन संचार के साधनो ने कितनी जगह दी है? करीब पॉच प्रतिशत? यह भी एक उदार अनुमान ही होगा।

पिछले दिनों जब इस सविधान संशोधन का दसवॉ साल शुरू होनेवाला था, नयी दिल्ली मे देश भर से पचायतो के 1500 चुने हुए प्रतिनिधियो का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। यह एक अनूठा अवसर था—जीवत और अर्थवान, मगर कुछ हिंदी और भाषाई अखबारो को छोड कर बाकी मीडिया के लिए यह मानो कोई खबर ही नही थी।

हमारे कितने राष्ट्रीय नेता भाषाई अखबारो मे छपी खबरों से अवगत रहते हे? अगर अग्रेजी के राष्ट्रीय अखबार विकास के मुद्दो को नजरअदाज कर दं, तो उस बेचैनी के बारे में किसे पता चलेगा जो ग्रामीण क्षेत्रों मे आकार ले रही है? अपनी दुर्दशा सामने लाने के लिए इन क्षेत्रों के लोग किसके पास जायेंगे? आज के मीडिया की यह अल्पदृष्टि बहुत खतरनाक है।

हमारे देश मे समस्याएँ कई है और विविध किस्म की हैं, और अगर अखबार उनकी खबर न दे तो यह एक खतरनाक स्थिति हो जाती है। कहने का मतलब यह नही कि सिर्फ ग्रामीण मुद्दो को ही उजागर करने की जरूरत है, लेकिन खबर देने के मामले मे सतुलन बनाने की कोशिश अवश्य होनी चाहिए।

प्रारंभिक काल के अखबारो में राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी का एक एहसास हुआ करता था। उन लोगो को राष्ट्र-निर्माताओं की तरह देखा जाता था जो अपने अखबारो मे लेखो के जरिये एक सार्वजनिक वहस खड़ी करते थे और नीति-निर्माताओं पर दबाव बनाते थे। वे प्रमुख लेखकों के आलेख मॅगवाते थे, अपने संपादकीय में विकास के विभिन्न मुद्दो पर बहस चलाते हुए और लोगों का नजरिया बदलते हुए राष्ट्र-निर्माण

में योगदान देते थे। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि किसी परियोजना के कार्यान्वयन के दौरान बेदखल हुए लोगों को मीडिया द्वारा उनकी दुर्दशा उजागर किये बिना उचित मुआवजा मिल सकता है?

समकालीन परिस्थिति बहुत ही कटु है। कुछ खास उद्देश्यों को ध्यान मे रख कर ही मुद्दों को सामने लाया जाता है। उनमे से एक है शहरों की व्यवस्था और यह कि किस मुद्दे से कौन जुड़ा है। चाहे कोई मामला अपने आपमे कितना भी गभीर हो, वह तभी उठाया जायेगा जब कोई शख्सियत उससे जुडी हो। यही वक्त है जब मुख्य धारा का मीडिया ग्रामीण विकास और जमीनी समस्याओ से जुडे मुद्दो को उचित जगह देने के बारे में सोचना शुरू करे और जो बात गांधी जी ने भारत की स्वाधीनता की पूर्व-सध्या पर कही थी, उसे संजीदगी से लें–'गॉवों में जाइए, वही भारत है।'

13

भविष्य पर मँडराते ग्रह

दस वर्ष पहले 22 और 23 दिसंबर 1992 को जब लोक सभा और राज्य सभा ने संविधान का तिहत्तरवॉ और चौहत्तरवॉ संशोधन पारित किया, जिनमे पचायतो ओर नगरपालिकाओं को 'स्वशासन की इकाइयॉ' बनाने की व्यवस्था की गयी थी, तो इसे एक ऐतिहासिक घटना और एक मौन क्रांति का प्रारभ माना गया था। किसी भी दृष्टि से देखा जाये, रूप और वस्तु दोनों के लिहाज से यह एक रेडिकल संवैधानिक कदम था। दस वर्ष की यात्रा के बाद आज हम कहॉ खडे हैं?

पहली बात तो यह है कि पहले दस वर्षों की यह अवधि पूरी तरह से निराशाजनक नही रही है। स्वशासन की इस नयी व्यवस्था को जिन कठिन सामाजिक और राजनीतिक दबावो के बीच—सामाजिक विषमता, जाति प्रथा, पितृसत्तात्मकता, सामंती ढॉचा, निरक्षरता, असमान विकास—काम करना पडा है, उन्हें देखते हुए हम कई चीजो पर गर्व कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए, आज प्रत्येक पॉच वर्ष पर स्थानीय स्वशासन की सस्थाओ का नियमित चुनाव एक प्रतिमान बन गया है, यद्यपि शुरू के वर्षो मे प्राय. सभी राज्यों ने—उनमे चाहे जिस पार्टी की सत्ता हो—अपनी पूरी ताकत से इस संवैधानिक उपबध की अवहेलना की। स्थानीय लोकतत्र को यह पुख्ता आधार देने मे जहाँ एक ओर नागरिक समाज के सगठनो की जबरदस्त भूमिका रही, जिन्होंने जन हित याचिकाएँ दायर कर राज्यों के इस संविधान-विरोधी रवैये का विरोध करने की पहल की, वहीं न्यायपालिका ने भी विभिन्न स्तरों पर प्रभावशाली ढग से हस्तक्षेप किया।

अपने आपमें यह भी कोई साधारण उपलब्धि नहीं है कि राज्य चुनाव आयोग, राज्य वित्त आयोग जैसी संवैधानिक संस्थाएँ सभी राज्यो में पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुकी है। राज्य चुनाव आयोगो ने पंचायत चुनावो को गंभीरता से लिया है, जिससे जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया की साख बनी है। बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यों मे तो राज्य चुनाव आयोगों ने अतिरिक्त सक्रियता

भी दिखायी है। 3 मई 2002 को उच्चतम न्यायालय ने उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि, संपत्ति और देनदारियो के बारे मे जानने के लिए मतदाता के अधिकार के बारे मे जो निर्णय दिया था, उसके आधार पर राज्य चुनाव आयोगो ने पचायत एंव नगरपालिका चुनावों के लिए भी ऐसे ही निर्देश जारी किये है। आखिर पंचायतों और नगरपालिकाओ के मतदाताओं को भी अपने उम्मीदवारों के बारे मे जरूरी सूचनाएँ हासिल करने का अधिकार है।

पिछले दस वर्ष इस तथ्य के भी गवाह रहे हैं कि जहाँ तक ग्राम स्तर से जिला स्तर तक निर्णय लेने की प्रक्रिया में वंचित तबको को शामिल करने का सवाल है, इस क्षेत्र में क्रमिक प्रगति हुई है। इसका सबसे ज्यादा लाभ महिलाओं को मिला है। आज दस लाख से ज्यादा महिलाएँ हर पाँच वर्ष पर स्थानीय निकायो के सदस्यो और अध्यक्षों के पदो पर निर्वाचित होती हैं और 30 लाख से ज्यादा महिलाएँ इन पदों के लिए चुनाव लड़ती हैं। हमारे जैसे सोपानीकृत और पुरुष वर्चस्ववाले समाज के लिए यह कोई मामूली घटना नहीं है। यह आम शिकायत कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के परिवारों के पुरुष ही उनकी लोकतान्त्रिक सत्ता का सचालन करते हैं, आशिक रूप से सही हो सकती है। लेकिन विभिन्न अध्ययनों से यह बात सामने आयी है कि अब स्थिति मे तेजी से परिवर्तन आ रहा है। विभिन्न स्तरो की सभी पचायतों और नगरपालिकाओं मे से एक-तिहाई के अध्यक्ष पद पर महिलाएँ हैं। समय बीतने के साथ-साथ सामान्य यानी अनारक्षित सीटों से चुन कर आनेवाली महिलाओं की सख्या बढ़ती जा रही है। अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ भी स्थानीय निकायों में अपना वाजिब हक पा रही है।

देश भर में स्वशासन की संस्थाओं के अस्तित्व में आ जाने के कारण उनके काम-काज पर निगाह रखी जा रही है और इस पर चर्चा भी होने लगी है। इसका नतीजा यह हुआ है कि शासन को लोगों के दरवाजों तक ले जाने के पक्ष में सकारात्मक माहौल धीरे-धीरे ही सही, पर तैयार हो रहा है। इस प्रक्रिया की एक प्रमुख उपलब्धि यह है कि सरक्षण देने और पृष्ठपोषक बनने की जो भूमिका परंपरागत जातियों और प्रभावशाली परिवारो के हाथ में रही है, वह राजनीतिक पार्टियों और विचारधाराओ को स्थानांतरित हो रही है।

लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के इस क्षैतिज विस्तार का लाभ उठाते हुए बहुत-से राज्यो ने स्थानीय शासन, योजना प्रक्रिया तथा ग्रामीण विकास के क्षेत्र मे अनेक नवाचार तथा रचनात्मक प्रयोग किये हैं। केरल का जन योजना अभियान इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

बहरहाल, दस वर्षो का अंतिम लेखा-जोखा देखा जाये, तो निराशा-सी होती है। यह विडंबना ही है कि जिन हाथों ने नयी पचायत और नगरपालिका व्यवस्था की नींव रखी, वे हाथ ही इसे निष्प्रभ बनाने की कोशिश कर रहे हैं। कभी-कभी

तो लगता है कि इरादा इनकी हत्या करने का ही है। परिणामस्वरूप, देश के अनेक हिस्सों मे मौन क्रांति खूनी क्रांति मे परिणत हो चुकी है।

पंचायतों और नगरपालिको को उनका प्राप्य न तो संसद के सदस्य दे रहे है न ही विधान सभाओ के सदस्य। सच तो यह है कि सांसद और विधायक स्थानीय स्वशासन की संस्थाओ के वैध स्थान पर अपना कब्जा जमाने की कोशिश कर रहे हैं। सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास योजनाओं तथा विधायक कोषो का अस्तित्व, जिनकी राशि करोडों रुपयो में है, स्थानीय निकायों के साथ विश्वासघात नही तो और क्या है? 'आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय' के लिए योजनाएँ बनाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने के लिए पंचायत व्यवस्था की सृष्टि करने के बाद हमारे सांसदो और विधायकों को स्थानीय क्षेत्र विकास के लिए राज कोष से करोडों रुपये क्यो मिलने चाहिए? निश्चय ही पचायतो की हैसियत को कमजोर करने और उन्हे हाशिये पर लाने के उद्देश्य से ऐसा किया जा रहा है।

इसी तरह का दूसरा गंभीर उदाहरण सांसदों, विधायको और नौकरशाही की वह उत्सुकता है कि सभी केंद्र-प्रायोजित योजनाओं के बजट को पंचायतों के दायरे के बाहर खर्च किया जाये और जिला ग्रामीण विकास एजेंसी (डीआरडीए) नामक संस्था को जीवित और सक्रिय रखा जाये। योजना आयोग द्वारा गठित 'पचायती राज संस्थाओ पर कार्य दल' (दिसंबर 2001) ने टिप्पणी की है कि राज्य सरकारो और केद्रीय मंत्रालयो ने केंद्र-प्रायोजित योजनाओं के क्रियान्वयन का कार्यक्रम तथा उसकी रणनीति बनाने में पचायती राज सस्थाओं को शामिल करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया है तथा ये योजनाएँ अनिवार्यतः नौकरशाही के सोपानीकृत संगठनों द्वारा क्रियान्वित की जा रही हैं। राजनेता, नौकरशाह और ठेकेदार—इन तीन तत्वो का अपवित्र गठबंधन सारा मलीदा खा जा रहा है। (केंद्र-प्रायोजित कार्यक्रमो के लिए 2000-01 के केंद्रीय बजट में 31,575.87 करोड रुपये का प्रावधान किया गया था।) पचायतों को सुदृढ करने के स्थान पर उन पर उँगली उठायी जा रही है और कहा जा रहा है कि वे भ्रष्टाचार से सराबोर है। लेकिन हमारी नेता-नौकरशाह जोड़ी यह भूल जाती है कि पचायतों के लिए यह 'आदर्श मॉडल' उन्होंने ही तैयार किया है। भ्रष्टाचार और छद्म के विशाल महासागर में हम ईमानदारी और निष्ठा के द्वीप कैसे गढ़ सकते है?

पंचायतो की अक्षमता और अकुशलता का ढिंढोरा पीटनेवाले बढ़ते जा रहे है। लेकिन उनकी कार्य क्षमता में सुधार लाने के लिए किया क्या गया है? नहीं के बराबर। इसका कारण क्या है? क्या धन की कमी? नहीं। न केवल हमारे पास पर्याप्त संसाधन हे, बल्कि बहुपक्षीय और द्विपक्षीय एजेंसियाँ भी मानव पूँजी के विकास मे विनियोग करने के लिए तैयार है। लेकिन केंद्र और राज्य सरकारों को इसमे कोई रुचि नहीं है। प्रत्येक राज्य में एक ग्रामीण विकास राज्य संस्थान है, जिसे कायदे

से पचायतो के सदस्यो और कार्यपालकों के प्रशिक्षण तथा क्षमता निर्माण का केंद्र होना चाहिए था। लेकिन ये राज्य संस्थान निहायत उपेक्षित है और इस महत्वपूर्ण काम को अजाम देने के आवश्यक साधन भी उनके पास नहीं है। लेकिन इसकी परवाह किसे है?

केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय पचायती राज के साथ जो सलूक कर रहा है, वह किसी फूहड मजाक से कम नहीं है। जब कि ढाई लाख ग्राम पचायतो, 6000 पचायत समितियो और 600 जिला पंचायतो को मार्ग दर्शन देने और उनके काम-काज पर निगरानी रखने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय मे एक सपूर्ण संभाग की सख्त जरूरत है, पचायती राज के लिए सचिव स्तर का कोई अधिकारी तक नही है। यह कार्य संयुक्त सचिवो को अतिरिक्त दायित्व के रूप में सौंप दिया गया है। मत्रालय के जिन अधिकारियो को पचायती राज की कुछ जिम्मेदारी सौपी गयी है, उनके काम-काज का कुछ अता-पता नहीं है। प्रधान मत्री ने हाल ही मे कहा कि संविधान का पुनर्वीक्षण करने के लिए गठित न्यायमूर्ति वेंकटचलैया आयोग की सिफारिशो के आलोक मे अनुच्छेद 243 को, जिसका सबंध पचायतो से है, धारदार और प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए। लेकिन जिसकी कुछ चलती है, ऐसे किसी भी व्यक्ति ने इस प्रस्ताव को गंभीरता से नहीं लिया है। कोई भी राज्य सरकार राज्य वित्त आयोग की सिफारिशो को वह महत्व नही देती जो उन्हे मिलना चाहिए। दूसरी तरफ, राज्य चुनाव आयोग, जो स्वतत्र संवैधानिक सस्थाएँ है, कठिन सीमाओं के तहत काम कर रहे हैं। चाहे पचायतो और नगरपालिकाओं के पुनर्सीमन का मामला हो या चुनाव की तारीखें घोषित करने का या कोई अन्य सबंधित मुद्दा, राज्य सरकारे राज्य चुनाव आयोगों को अपनी इच्छानुसार चलाने की कोशिश करती हैं। जिला योजना समितियॉं, जो भारत के योजना इतिहास में एक ऐतिहासिक महत्व की घटना है, या तो गठित ही नही की गयी है या गठित की गयी है तो सिफ नाम के वास्ते। राज्यो मे पचायत काडर नाम का कोई तत्र नहीं है न ही इसका गठन करने के लिए कोई कदम उठाया जा रहा है। स्पष्टता अथवा वैचारिकता के अभाव मे विभिन्न विभागों के बीच इस मुद्दे पर फालतू कलह जारी रहता है कि विभिन्न लाइन विभागों के अधिकारियो और कर्मचारियो का निर्वाचित स्थानीय निकायों से रिश्ता क्या हो।

यह सब देख कर दिमाग चकरा जाता है कि जब मंत्रियों और विधायको ने तिहत्तरवॉं और चौहत्तरवॉं संविधान संशोधन पारित किया, तो क्या वे समझ भी रहे थे कि इस नयी पंचायत प्रणाली से देश के राजनीतिक तत्र मे कितने गभीर परिवर्तन आ सकते है। अब जा कर उनकी समझ में आया है कि यह तो जनता के हाथ में सत्ता देने का एक सक्षम औजार है और यह औजार ठीक से काम करे, तो आजादी के बाद से वे जो ताकतें अपने पास जमा करते रहे है, उनका एक बडा अंश उनसे छिन जायेगा, तो इस बात की पूरी कोशिश की जा रही है कि पंचायतो के 'स्वशासन

की संस्थाएँ' तथा शासन का तीसरा पाया बनने की प्रक्रिया को रोका जाये।

दस वर्षो की यात्रा बहुत लंबी यात्रा नही है। पचायतो ने कोई जादू नहीं किया है, पर एक छोटी-सी शुरुआत जरूर हुई है—बावजूद इसके कि सासदों और विधायकों ने उनका अवमूल्यन करने की जी तोड़ कोशिश की है। सभव है, उन्हें बीडीओ राज और पटवारी/ग्राम सेवक राज के बने रहने मे अपना फायदा नजर आता हो। लेकिन अगर हम राजनेताओ और नौकरशाहो पर निर्भर रह जाते हैं, तो सचमुच का पंचायती राज दिवास्वप्न ही बना रहेगा। इस निराशाजनक परिदृश्य को बदलने के लिए लोगों को स्वय आगे आना होगा।

14

दो पंचायतों की कहानी

जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्टूबर 1959 को नागौर, राजस्थान में देश की पहली पचायत समिति का उद्‌घाटन किया था। इस पचायत का गठन राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशो को स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप हुआ था। मेहता समिति ने सिफारिश की थी कि 'सामुदायिक कार्यो में जनता की भागीदारी को वैधानिक प्रतिनिधि संस्थाओं के जरिये सुनिश्चित किया जाना चाहिए।' इसके नौ दिन बाद नेहरू आंध्र प्रदेश गये और उन्होने वहॉं शादनगर मे 11 अक्टूबर 1959 को दूसरी पंचायत समिति का उद्‌घाटन किया। स्वतत्र भारत मे पंचायती राज के उद्‌घाटन के लिए नेहरू इन्ही दो स्थानो पर क्यों गये थे? पंचायती राज संस्थाओ की स्थापना के द्वारा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की बुनियाद डालने में भारत के प्रथम प्रधान मत्री द्वारा गहरी दिलचस्पी लेने के 42 वर्ष के बाद इन दो पचायतो का हाल कैसा है? इन प्रश्नों तथा अन्य संबधित प्रश्नों के जवाब ढूँढने के लिए इस लेखक ने नागौर और शादनगर जा कर स्थिति का निकट से अध्ययन किया। पंचायती राज को एक नये उत्साह के साथ लागू करने के इस दौर मे उस अध्ययन के नतीजे काफी प्रासंगिक हैं।

नागौर राजस्थान की राजधानी जयपुर से करीब 250 किलोमीटर दूर स्थित ऊँघता हुआ-सा जिला मुख्यालय है। लोग इसके शानदार इतिहास के बारे मे बाते करते हैं। यह कस्बा 850 वर्ष पुराना है। यह चौहानों की सत्ता का महत्वपूर्ण केंद्र था, जिन्हे मुसलमान सम्राटो ने अतत· हरा दिया और सभी संधियॉं नागौर मे हुई थीं। किसी जमाने में यह मरुस्थलीय काफिलो का भी महत्वपूर्ण पड़ाव था।

नागौर जाट-बहुल इलाका है। यहॉं की आबादी में जाटों की संख्या 60 प्रतिशत है। उनके अलावा यहॉं 10 प्रतिशत राजपूत, 23 प्रतिशत मेघवाल (अनुसूचित जाति) तथा 10 प्रतिशत मुसलमान है। नागौर में साल में सिर्फ एक फसल होती है। किसान बाजरा, जीरा तथा सरसो उगाते हैं।

नेहरू जब नागौर आये थे, तब नागौर पचायत समिति के अध्यक्ष हरिराम बागड़िया (65) थे। उस समय वह सिर्फ 29 वर्ष के थे और वकालत कर रहे थे। वे अब भी वकालत कर रहे है और उनके पास बी. कॉम. और एलएल. बी की डिग्री है। श्री बागडिया उन दिनो की यादों में डूबते हुए बताते है कि नेहरू जी के हवाई जहाज को उतारने के लिए मारवाड के राजा द्वारा बनायी गयी हवाई पट्टी का नवीनीकरण किया गया था। नेहरू दोपहर दो बजे वहॉ पहुॅचे थे। अन्य लोगो के साथ श्री बागड़िया ने भी प्रधान मत्री को माला पहना कर उनका स्वागत किया था। उनके ड्राइग रूम मे हवाई पट्टी पर नेहरू जी का स्वागत करते हुए उनकी बडी-सी तस्वीर टॅगी हुई है। उन्हें 15 सितम्बर को 30 सरपंचो ने समिति का प्रधान चुना था। सरपंच पद के लिए सिर्फ सामाजिक कार्यकर्ता ही उम्मीदवार बन सकते थे। अनुसूचित जाति और महिलाओ के दो-दो प्रतिनिधियो को नामांकित किया गया था।

श्री बागडिया के अनुसार नेहरू जी एस.के दे के कारण नागौर आये थे। श्री दे जनवरी 1958 मे नागौर के पशु मेले में आये थे और वहाँ से 1962 का संसदीय चुनाव लडना चाहते थे। लेकिन समाजवादी नेता बंसीलाल सारस्वत (अब भाजपा में) कुछ अलग ही किस्सा सुनाते हैं। उनके मुताबिक नेहरू जयनारायण व्यास के रसूख के कारण नागौर आये थे। श्री व्यास स्वतंत्रता आदोलन में राजस्थान के अग्रणी नेताओ मे थे और वे स्वय भी समाजवादी थे। राजस्थान के मुख्य मंत्री पद पर रहते हुए उन्होंने 1958 में सामतशाही खत्म की थी तथा चूँकि मारवाड मे राजपूत बडे-बडे जमीदार थे, इसलिए इस इलाके में उनके कामों को जनता के बीच काफी प्रसिद्धि मिली थी। इस क्षेत्र मे नागौर सबसे पिछडा हुआ इलाका था और श्री व्यास द्वारा उठाये गये कदमो से जाटो को काफी लाभ हुआ था।

सभा स्थल पर नेहरू जी को एक जुलूस के साथ ले जाया गया। मुख्य मत्री मोहनलाल सुखाड़िया ने श्री नेहरू का स्वागत किया। मंच पर पचायती राज मत्री नाथूराम मिर्धा, लोक सभा अध्यक्ष रामनिवास मिर्धा एवं एस.के. दे भी नेहरू जी के साथ विराजमान थे। नेहरू जी ने हिंदी में एक घटे तक भाषण दिया था। करीब 20 हजार लोगो ने बहुत ध्यान से उन्हे सुना। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसार ने भी उस मौके के लिए संदेश भेजा था। राष्ट्रपति ने कहा था, 'जहॉ तक मेरी जानकारी है, भारतीय गणतंत्र के किसी भी सदस्य राज्य ने पहली बार इतने बड़े स्तर पर विकेंद्रीकरण का प्रयोग करने की ठानी है।' सभा के बाद नेहरू जी ने किले मे रात का खाना खाया था। श्री बागड़िया के अनुसार तीन से चार हजार प्रधान और प्रमुख तथा अन्य लोग सामूहिक भोजन के इस कार्यक्रम में शरीक हुए थे।

नागौर पंचायत समिति ने 1959 के अपने एजेंडे में प्राथमिक शिक्षा, सहकारी सस्थाओ तथा पंचायत घरो के निर्माण को प्राथमिकता दी थी। नागौर मे 1959 मे बालिकाओं के लिए सिर्फ तीन प्राथमिक पाठशालाएँ थी, जब कि लड़कों के लिए

ऐसी शालाओ की संख्या 20 से अधिक थी। पिछले 36 वर्षो मे और सिर्फ एक प्राथमिक शाला खोली गयी है। शायद इसीलिए नागौर में महिला साक्षरता दर आज भी सिर्फ 7 08 प्रतिशत है। पहली और दूसरी समितियों (1959 और 1961) के कार्यकाल में शिक्षक नियमित रूप से कक्षाओं मे आते थे एव उनके कामकाज के निरीक्षण के लिए अध्यक्ष एवं सदस्य स्कूल आते-जाते रहते थे। लेकिन पचायत समितियो के पास संसाधनो की कमी थी, क्योकि उन्हे प्रति एक रुपया भू राजस्व पर शिक्षा के लिए सिर्फ पॉच पैसे की चुगी मिलती थी। इसके साथ ही समितियो को अपनी जरूरतो के हिसाब से समुचित परिवर्तन करने की भी आजादी नही थी। उदाहरण के लिए, नागौर समिति विद्यालयों को गर्मियों में खुला रख कर दशहरा व दीवाली (अक्टूबर-नवम्बर) के दिनों में बंद रखना चाहती थी, क्योकि उन दिनो खेती का कामकाज जोरो पर होने के कारण उसमे हाथ बँटाने के लिए बच्चो की जरूरत पडती थी। समिति के इस सुझाव को राज्य सरकार के शिक्षा विभाग ने ठुकरा दिया था, हालॉकि श्री बागडिया के मुताबिक वे अपने स्तर पर अनौपचारिक ढग से गर्मियो मे भी कक्षाएँ चलाते रहे।

शिक्षको की तत्काल आवश्यकता होने पर भी उन्हे नियुक्त करने का अधिकार समितियो के पास नही था। हमारी बातचीत के दौरान वहाँ उपस्थित एक वरिष्ठ अधिकारी ने बताया, 'ब्लॉक में 112 शिक्षकों के पद खाली हैं और बार-बार पत्र लिखने के बावजूद नये शिक्षको की नियुक्ति नहीं की जा रही है। जिला पदाधिकार-सस्थापन समिति एक तो वैसे ही चयनित शिक्षकों को नहीं भेजती; दूसरे चयनित शिक्षक भी गॉवों मे काम करने को तैयार नही हैं। इस स्तर पर पचायत समिति निरुपाय है।' हमारी बात सुन रहे एक युवा अफसर ने बाद मे कहा, 'इस क्षेत्र मे सभी की शिक्षा के लिए कोई प्रतिबद्ध प्रयास किया ही नहीं गया। ऐसा जानबूझ कर किया गया था। शिक्षित हो जाने पर वे पारपरिक नेतृत्व को चुनौती देने लगेगे।' बसीलाल सारस्वत का मानना है कि शिक्षा के निम्न स्तर के लिए पारिवारिक पूर्वाग्रह और अनिच्छुक शिक्षकों का (उनमें से ज्यादातर के पास आजकल ट्रैक्टर है और वे खेती के धंधो में लगे रहते हैं) रवैया मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

लगातार 18 वर्ष (1959 से 1977) तक जिला परिषद के प्रमुख रहे लिकोमाराम ने पुराने दिनों को याद करते हुए बताया कि जब वे प्रमुख बने थे, तब परिषद का बजट 36 हजार रुपये का था। वे किले में किराये के एक दफ्तर में बैठते थे। उसके बाद जल्दी ही प्रधानो ने अपने-अपने कोष से चंदा दे कर जिला परिषद कार्यालय की इमारत का निर्माण कराया और नागौर की जिला परिषद देश की ऐसी पहली परिषद बन गयी, जिसका अपना कार्यालय भवन था।

समिति में 1959 में दो महिलाएँ थीं, मगर केवल नाम के लिए। दोनो जाट थी। उनमे से एक का नाम श्रीमती सोनी था। श्री बागड़िया के अनुसार वे विधवा

थी और अकसर तीर्थ यात्रा पर रहती थी और उन्हे 1961 तथा 1965 मे भी नामांकित किया गया। वे समिति की बैठको मे शामिल तो होती थी, लेकिन उनका योगदान कुछ नहीं था। किसी भी महिला ने चुनाव नहीं लडा था।

देश के पहले प्रधान मंत्री द्वारा उद्घाटित पंचायत समिति नागौर के जीवन पर कोई छाप नही छोड पायी थी। आज, 35 साल बाद, वह विफलता का प्रतीक है। संपूर्ण तंत्र की विफलता के लिए देश के अन्य क्षेत्रों मे आम तौर पर बताये जानेवाले कारण यहाँ भी वरिष्ठ नेताओ द्वारा दोहराये गये--पचायत के सीमित अधिकार, निरक्षरता, शिक्षा की कमी, पैसे की भारी किल्लत, अनियमित चुनाव, बेपरवाह नौकरशाही, सर्वसत्तासंपन्न सरपंच, जिसके हाथ में सारे वित्तीय अधिकार केंद्रित थे और जबरदस्त भ्रष्टाचार। मोहनलाल सुखाडिया द्वारा प्रधानों को महत्व देने के बावजूद विधायक कभी भी पचायतो को अधिकार नहीं देना चाहते थे। पचायतो के शक्ति-सपन्न होने से विधायकों को डर यह था कि वे अधिकारविहीन हो जायेगे, इसलिए वे बाहर से पचायती राज का समर्थन करने के साथ-साथ भीतर-भीतर उसे पलीता लगाते रहे।

नागौर शहर से बसनी ग्राम पंचायत लगभग 10 किलोमीटर दूर है और वहाँ की आबादी 35 हजार है। गाँवों मे ज्यादातर मुसलमान है जो दूध का धंधा करते है। इस समृद्ध गॉव की पहचान मुबई को दुधारू भैसे भेजनेवाले गॉव के रूप मे होनी है। करीब 4,000 दूध न दे सकनेवाली भैसे बसनी मे है, तो यहॉ की 8,000 दूध देने वाली भैंसे मुंबई और राजस्थान के अन्य हिस्सो में। गॉव के प्रवक्ता और प्रमुख व्यापारी मुहम्मद कासिम कश्मीरी के मुताबिक पंचायती राज से लोगों की स्थिति मे कोई सुधार नहीं आया है। 35 साल पुराने इतिहास के बावजूद उनकी ग्राम पचायत शैक्षिक रूप से पिछडी हुई है और वहाँ की 80 प्रतिशत महिलाऍ अनपढ़ है। वर्तमान ग्राम पचायत के 39 सदस्य हैं और वे सभी निर्विरोध निर्वाचित हुए हैं।

नागौर में पंचायती राज के विफल होने का अकेला सबसे बडा कारण यहॉ एक ही जाति जाटों का वर्चस्व है। जयाले पंचायत समिति के सदस्य (1970-73) जगदीशनारायण जोशी ने इस बात की पुष्टि की कि वर्तमान विकट परिस्थितियों के लिए जाट-गैरजाट संघर्ष जिम्मेदार है। उनके मुताबिक, 'शिक्षक जाट है, सरपच जाट है, बीडीओ जाट है; इसीलिए कोई किसी के खिलाफ शिकायत नहीं करता। जाट का वोट जाट के लिए है; जाट की बेटी जाट के लिए है।'

वर्तमान नागौर पंचायत समिति में 47 सरपंच है। इनमें से 12 निरक्षर और 32 साक्षर (वे हस्ताक्षर भर कर सकते हैं) हैं, सिर्फ दो ने प्राथमिक शिक्षा पायी है और एक स्नातक है। समिति के 27 सदस्य हैं। उनमें से एक निरक्षर है, 8 साक्षर हैं, 14 प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हैं, एक आठवीं पास है, एक सेकंडरी पास है और 2 स्नातक हैं।

नवगठित समितियो मे से एक की महिला अध्यक्ष से मै मिलना चाहता था। नागोर से 20 किलोमीटर दूर मूलवा समिति मे सेपू चौधरी 15 फरवरी को निर्विरोध निर्वाचित हुई थी। उनके पति शराब के व्यापारी है और वे 1987 से 1992 तक फिरोद (जोधपुर से 30 किलोमीटर दूर) के सरपंच रह चुके हैं। अपने नवनिर्मित घर के दरवाजे पर ही श्री चौधरी ने मेरे सारे सवालो का जवाब देने की पेशकश की, क्योंकि उनकी पत्नी न अंग्रेजी समझती हैं न पचायतो के बारे मे कुछ जानती हे। मेरे अनुरोध पर वे मुझे अपने आलीशान ड्राइंग रूम में ले गये ओर सेपू सकुचा कर हमारे पास आ कर बैठ गयी। वे पॉचवी कक्षा तक पढ़ी हैं और उन्हे सामाजिक काय का कोई अनुभव नही है। वे 'सरकार' (पति का उपनाम?) के कहे अनुसार ही काम करती हैं, विशेषकर महिलाओ से संबंधित विषयां मे। समिति मे सात महिला प्रतिनिधि चुनाव लड कर निर्वाचित हुई हे, मगर सभी निरक्षर है। सरपच निर्वाचित होने के एक महीने बाद भी सेपू चौधरी अभी तक महिला प्रतिनिधियो से नही मिली है। सेपू के चुनाव लडने का कारण यह था कि इस समिति के सरपच का पद चूँकि महिलाओ के लिए आरक्षित था, इसलिए उनके पति यह चुनाव नहीं लड़ सकते थे। लिहाजा उन्हें उम्मीदवार बना दिया गया था।

पचायती राज की विफलता को हर कोई स्वीकार करता है। युवाओ को यह शिकायत है कि जनता के सरोकारों को सुनने के लिए कोई स्थानीय सस्था नही ह। सडकें नही हैं। नागौर मे पीने का पानी नही है। लोगों को छोटे-छोटे तालाबो का पानी पीना पडता है। श्री बागडिया जब प्रमुख थे (1985-89), तब उन्होंने टॉके (बारिश का पानी जमा करने के लिए जमीन के अंदर टंकियॉ) बनवाने पर विशेप जोर दिया था। वर्प 1987 के अकाल वर्ष में 10,000 टाँके बनाये गये थे, जिनके लिए 5,000 रुपये उन्होने अपने चदे से तथा 5,000 रुपये पंचायत से अनुदान दिया था। नागौर के पानी मे फ्लोराइड की मात्रा ज्यादा है तथा गिनी कृमि बहुत अधिक सख्या में हैं। नागौर तक राजस्थान नहर का जल लाने के लिए 17 अरब रुपये चाहिए। यह कोई असभव कार्य नहीं है, लेकिन दबाव डालने और इतनी बडी राशि जुटाने के लिए वहॉ कोई नेतृत्व भी नहीं है। क्या नया पंचायती राज ऐसा कर पायेगा? इस सवाल की इबारत नागौर रेलवे स्टेशन पर हमें छोडने आये युवाओ के चेहरे पर साफ-साफ पढ़ी जा सकती थी।

शादनगर (फारूकनगर), बगलूर राजमार्ग पर हैदराबाद शहर से 47 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वनपरती के राजा के बडे वजीर थे, तहलुक। उनका तखल्लुस 'सहेद' था। वे इसी क्षेत्र के थे और 1930 से फारूकनगर को शादनगर के नाम से जाना जाने लगा। यह राज्य के पिछडे जिले महबूबनगर का एक हिस्सा है।

2 अक्टूबर 1954 को शादनगर ताल्लुक पचायत समिति बन गया, जिसमे 105 गॉव शामिल थे। वर्प 1959 मे शादनगर ब्लॉक में 66 गॉव थे, जिनकी कुल

आबादी 52,000 थी। इस समिति सहित लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के प्रयोग के लिए कुल 20 ब्लॉक समितियों (तदर्थ) को चुना गया था। शादनगर पंचायत समिति के नामांकित अध्यक्ष प्रताप रेड्डी थे।

तेलुगु देशम सरकार द्वारा जारी नये अधिनियम के अंतर्गत जनवरी 1987 में शादनगर पंचायत समिति को चार मंडल प्रजा परिषदों में बाँट दिया गया (अन्य तीन परिषदें थीं कोठूर, केशमपेट और कोनदुर्ग)। आज शादनगर मंडल में 36 गाँव, 25 ग्राम पंचायतें तथा एक कस्बा है और कुल 56,759 लोग रहते हैं।

रामदेव रेड्डी की उम्र अभी 73 वर्ष है। जवाहरलाल नेहरू जब शादनगर पंचायत समिति का उद्घाटन करने आये थे, तब रामदेव उसके अध्यक्ष थे। वे कांग्रेस के तत्कालीन वामपंथी विचारधारावाले प्रदेश अध्यक्ष स्वामी रामनंदतीर्थ के अनुयायी थे। पी.वी. नरसिंह राव तथा जे. वेंगलराव भी इसी गुट में थे, जब कि कांग्रेस में कोडरोंगा रेड्डी के नेतृत्व में एक प्रतिद्वंद्वी गुट भी था। इसी गुट के एक अन्य प्रमुख नेता हैदराबाद रियासत के पहले मुख्य मंत्री बी. रामकृष्णराव भी थे। वे बाद में उत्तर प्रदेश और केरल के राज्यपाल रहे। रामदेव रेड्डी ने बी. रामकृष्णराव के भाई वेंकटेश्वर राव को कुल 64 में से 48 वोट पा कर हरा दिया था।

रामदेव रेड्डी के अनुसार, नेहरू के शादनगर आने का कारण यह था कि यह बी. रामकृष्णराव का चुनाव क्षेत्र था। वे शादनगर के पास बडगूल गाँव के रहनेवाले थे। सामुदायिक विकास की सफलता के पायदान पर चढ़नेवाले कुछ विलक्षण अधिकारी—खादरअली खाँ, के.बी. लाल, आबिद हुसैन—भी शादनगर के ही थे। दरअसल, मंडल पंचायत के वर्तमान कार्यालय की इमारत का उद्घाटन भी तत्कालीन विकास उपायुक्त के.बी. लाल ने ही आदर्श पंचायत घर के तौर पर 31 सितम्बर 1958 को किया था। पंडित नेहरू ने 11अक्टूबर 1959 को समिति पंचायत कार्यालय से सटे मैदान में हुई ऐतिहासिक सभा में दोपहर दो बजे भाषण दिया था। वे हैदराबाद से सड़क मार्ग से आये थे। उनके साथ मुख्य मंत्री नीलम संजीव रेड्डी, सामुदायिक विकास उपमंत्री बी.एस. मूर्ति तथा भारत के पूर्व प्रधान मंत्री पी.वी. नरसिंहराव (उन्होंने ही नेहरू के भाषण का तेलुगु में अनुवाद किया था) भी मंच पर विराजमान थे। रामदेव रेड्डी ने याद करते हुए बताया कि समिति के अध्यक्ष के नाते उन्होंने ही पंडित नेहरू का स्वागत किया था तथा दूर-दराज से लगभग 20,000 लोग उनका भाषण सुनने के लिए एकत्रित हुए थे। नेहरू ने अपने भाषण में कहा था कि 'सत्ता के विकेंद्रीकरण तथा विकास की जिम्मेदारी लोगों को सौंपने का यह महान कार्य आज विजयदशमी के शुभ दिवस से शुरू हो रहा है।' सभा के बाद नेहरू कृष्णदेव राय पॉलिटेक्नीक का उद्घाटन करने के लिए वनपरती भी गये थे। शादनगर में आचार्य विनोबा भावे की यात्रा को भी कुछ लोग ऐसे ही एक अन्य महत्वपूर्ण अवसर के रूप में याद करते हैं। वे 1956 में भूदान आंदोलन शुरू करने के लिए यहाँ आये थे।

शादनगर समिति की उपलब्धियाँ क्या थी? पचायत गॉववालो से वडे पैमाने पर श्रमदान करवाती थी, सडकों और विद्यालयों की इमारतों के निर्माण मे स्वयंसेवी श्रमिको की संख्या 50 प्रतिशत तक थी। जापानी प्रणाली से खेती शुरू की गयी थी। एम. दामोदर रेड्डी इस क्षेत्र के एक अन्य बुजुर्ग नेता हैं। वे नजदीक की कोनदुर्ग पचायत समिति के 1959 में अध्यक्ष थे, 1962 मे विधायक बने तथा 1981 मे शादनगर पचायत समिति के अध्यक्ष भी रहे। उन्होंने स्वीकार किया कि उन दिनों कुछ काम ठेकेदारो द्वारा भी कराये जाते थे और इससे लगभग 25 प्रतिशत राशि उनके मुनाफे के रूप मे चली जाती थी। लेकिन 75 प्रतिशत राशि परियोजना मे ही लगायी जाती थी। उन्होंने माना कि अब सिर्फ 25 प्रतिशत राशि खर्च होती है और 75 प्रतिशत राशि कई हाथों में बॅट जाती है। जवाहर रोजगार योजना की राशि का भी दुरुपयोग हो रहा है। बडे या छोटे अधिकारी ही नहीं, बल्कि निर्वाचित प्रतिनिधि भी भ्रष्ट है।

आज तक सभी पचायत समिति के अध्यक्ष रेड्डी जाति के सदस्य ही बने है। ऐसा क्यो हुआ? रामदेव रेड्डी तथा दामोदर रेड्डी दोनों के ही अनुसार, इसका कारण यह था कि वे दोनों ही जनता की सेवा करते है। रेड्डी तथा जनता के बीच गहरा रिश्ता है। रामदेव रेड्डी के अनुसार गॉवो मे उन दिनों विषमता कम थी। उनका दावा था कि 1956 मे उनके पास 1200 एकड खेत थे, लेकिन तभी उनकी सारी जमीन बॉट दी गयी और उन्होने अपने पास सिर्फ 40 एकड़ जमीन रखी थी।

अपने जीवन के सत्तरवे दशक मे चल रहे स्थानीय नेताओं से यह दिलचस्प जानकारी मिली कि पचायतो से राजनीतिक नेतृत्व की पूरी पीढी निकली है। नागोर और शादनगर, दोनों ही जगहों पर कई पचायत अध्यक्ष विधायक बने और राजनीतिक दलो तथा सरकार में उन्होंने महत्वपूर्ण पद सॅभाले।

पहली समिति मे दो नामांकित महिला सदस्य थीं—विमलम्मा ब्राह्मण थी ओर लिख-पढ सकती थी तथा लकम्मा पिछड़ी जाति की थी और सिर्फ दस्तखत कर सकती थी। उनकी एकमात्र योग्यता काग्रेस के प्रति वफादारी थी। वे दोनों सक्रिय थीं, समस्याएँ उठाया करती थी तथा बैठको मे नियमित हिस्सा लिया करती थीं। उन दिनो ग्राम सभाओ की बैठक शायद ही कभी होती हो। रामदेव रेड्डी ने बेहिचक यह दावा किया कि 'महिलाएँ पढ़े-लिखे पुरुषो से ज्यादा चतुर एवं व्यावहारिक है।'

शादनगर के सभी वरिष्ठ नागरिको ने माना कि पचायती राज का स्वर्णिम काल 1959 से 1964 के बीच था। लेकिन उसके बाद 1964 से 1987 तक कुछ भी काम नहीं हो पाया। प्रगति के बजाय वह पिछड़ने की अवधि रही। इसका एक कारण था पैसे की कमी · आमदनी का मुख्य स्रोत भू-राजस्व के हरेक रुपये पर 25 पैसे की दर से लगनेवाला उपकर था। स्वर्णिम दौर मे 1959-90 के दौरान शादनगर पचायत समिति की आमदनी थी 2,87,530 रुपये तथा खर्च था 1,81,670 रुपये। सामुदायिक विकास खंड के एक व्यय विवरण के अनुसार अक्टूबर 1954 में अपने

निर्माण के सात वर्ष बाद तक शादनगर ब्लॉक में 12 5 लाख रुपये खर्च हो चुके थे। यह छोटी-सी रकम भी महबूबनगर मे सबसे ज्यादा थी।

बाद मे अर्थाभाव का दौर आया, तो इसकी मार सबसे ज्यादा शिक्षा पर पडी। वर्ष 1908 के इम्पीरियल गजेटीयर के अनुसार, महबूबनगर जिले में साक्षरता की दर 3 3 प्रतिशत (पुरुष 5 9 प्रतिशत तथा महिलाएँ 0.65 प्रतिशत) यानी तत्कालीन परिस्थितियो के हिसाब से काफी अधिक थी। वर्ष 1961 में यह दर 13.4 प्रतिशत हो गयी थी; 21 5 प्रतिशत पुरुष तथा 5.4 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थी। लेकिन शादनगर की 12.3 प्रतिशत साक्षरता दर (19 9 प्रतिशत पुरुष तथा 4 6 प्रतिशत महिलाएँ) जिले की औसत साक्षरता दर के मुकाबले कम थी। शादनगर की वर्तमान साक्षरता दर 23 5 प्रतिशत आज भी राज्य की 37 46 प्रतिशत औसत दर से बहुत कम है। इस धीमी प्रगति एवं दुखद परिस्थिति का खुलासा दामोदर रेड्डी द्वारा बतायी गयी इस बात से भी होता है : मादिलापुर गॉव शादनगर से 7 किलोमीटर दूर है। वहॉ के विद्यालय मे 200 विद्यार्थी है। प्राचार्य एक महिला हैं तथा उनकी सहायक है यादगिरी रेड्डी। हाल मे जब जिला स्कूल निरीक्षक निरीक्षण के लिए वहॉ आये, तो उन्हे एक भी शिक्षक स्कूल में नहीं मिला। जमादार की निगरानी में परीक्षा चल रही थी।

बुजुर्गो के अनुसार, पंचायती राज की विफलता का एक और कारण यह है कि सरकारी अधिकारी गॉवों से निर्वाचित जन प्रतिनिधियों को कोई अधिकार देना नही चाहते। इस मामले मे राज्यस्तरीय नेताओं के साथ उनकी सॉठ-गॉठ है।

नागौर और शादनगर दोनो ही क्षेत्रों मे पचायती राज की अत्यत सकुचित तस्वीर उभर कर सामने आती है। जवाहरलाल नेहरू तथा उनके द्वार किये गये उद्घाटन की ऐतिहासिक घटना को भी पूरी तरह भुला दिया गया है। हमारे इतिहास बोध की परंपरा के अनुरूप ही वहॉ उस घटना की याद मे कोई स्मृति-चिह्न भी नही है। पंडित नेहरू ने नागौर के जिस चबूतरे से जब सभा को संबोधित किया था, वह अब पुलिस प्रशिक्षण शिविर के भीतर है। शिविर में मौजूद पुलिसवाले ने बताया कि उसके बॉस ने एक बार उससे कहा था कि इस चबूतरे को न तोडा जाये, क्योंकि यहॉ नेहरू जी आये थे। लेकिन उसे यह नहीं मालूम था कि वे किसलिए आये थे। शादनगर मे सभा के मैदान पर हरिजन बस्ती बसा दी गयी है और उस मच के चबूतरे पर पानी की टकी बना दी गयी है। यह उपेक्षा और गिरावट पूरी व्यवस्था के ही नाकारा होने का प्रतीक है, जिस व्यवस्था से स्वतत्र भारत की पहली पीढ़ी ने बडी उम्मीदें बॉध रखी थी।

इन दोनों पचायतों की विफलता का प्रमुख कारण जाति-वर्चस्व रहा है। चाहे नागौर के जाट हो या शादनगर के रेड्डी, उन्होंने सामाजिक यथास्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होने दिया। अपने वर्चस्व के लिए खतरा बन सकनेवाले, विकास के महत्वपूर्ण

उपादानों—जैसे शिक्षा, स्वतंत्र एव निष्पक्ष चुनाव, महिलाओं की स्थिति में सुधार आदि—में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रही। नागौर में गांधी जयन्ती और शादनगर में विनायकचतुर्थी जैसे दो 'शुभ दिन' भी उन क्षेत्रों में प्रचलित सामंतशाही तथा सामन्तवादी मूल्यों से टक्कर नहीं ले पाये। एक नये पंचायती राज की शुरुआत के सम्पूर्ण मौके पर देश के अधिकतर हिस्सों में चल रहे हालात का यह प्रतीक मात्र है। इन परिस्थितियों से उपजनेवाले खतरों के प्रति आगाह करते हुए निर्मल मुखर्जी ने लिखा था, 'आखिरकार में जायें, तो असली खलनायक सामंतशाही और पितृसत्तात्मक सामाजिक ढांचा है। जब तक ग्रामीण समाज को संगठित करने के ये दोनों सिद्धांत नहीं बदलते तब स्वशासित पंचायतों से किसी सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती, क्योंकि इनसे भी पहले से ही आर्थिक एवं सामाजिक रूप से ताकतवर तबके को ही फलने फूलने का अवसर मिलेगा। स्वशासन के उपकरणों पर नियंत्रण से उनके हाथ और अधिक मजबूत होंगे। एक या दूसरी तरह के 'उपेक्षित' समूहों, विशेषकर गरीबों तथा महिलाओं, पर अत्याचार का बोझ पहले से भी ज्यादा बढ़ सकता है। उनके लिए, विकेंद्रित प्रशासन वरदान की बजाय, अभिशाप साबित हो सकता है।

नागौर और शादनगर इन आशंकाओं के जीवित उदाहरण हैं।

15

मेलावलावु का मतलब

मेलावलावु धीरे-धीरे हमारे स्मृति पटल से गायब होता जा रहा है। 30 जून 1997 को दिनदहाडे मेलावलावु पचायत के अध्यक्ष मुरुगेसन, उपाध्यक्ष मूकन और चार अन्य लोगों की जघन्य हत्या शीघ्र ही इतिहास का हिस्सा बन कर केवल ऑकड़ो मे दर्ज हो कर रह जायेगी और समाजविज्ञान के अध्ययन का एक विषय भर बन जायेगी। महज तमिलनाडु पर नहीं, बल्कि पूरे देश मे पंचायतो के इतिहास पर लगे इस काले धब्बे को क्या हम यो ही भुला सकते है?

मुरुगेसन और मूकन देश के कानून के अनुसार और लोकतात्रिक प्रक्रिया के जरिये मेलावलावु पचायत के लिए चुने गये थे। सविधान के अनुसार, पंचायत स्वशासन की एक सस्था है। लेकिन विडंबना यह है कि इन जन प्रतिनिधियों को केवल काम करने से ही नही रोका गया, बल्कि उनका जीना भी दूभर कर दिया गया। चुनाव प्रक्रिया में भाग लेने और चुने जाने का दड उन्हें अपनी मौत के रूप में भरना पडा है। उनका अपराध केवल यह था कि वे एक नीची जाति मानी जानेवाली आदि-द्रविड के परिवारों में पैदा हुए थे और उन्होने चुनाव लडने का दुस्साहस दिखाया था।

आज, मेलावलावु की यात्रा एक हृदय विदारक अनुभव है। मेन रोड के पास हरिजन बस्ती मे एक पंक्ति में छह शव दफन हैं। गॉव के सभी स्त्री-पुरुष बेरोजगार हैं। इन्हें काम देनेवाले थेवरो और कल्लारो ने सामूहिक हत्या के बाद से इन लोगो को काम पर रखना बंद कर दिया है। जब यह लेखक इस गॉव मे गया, तो ये लोग स्थानीय प्रशासन और हरिजन सेवा सघ द्वारा दिये गये कुछ बोरे चावलों पर किसी तरह जिंदा रहने की कोशिश कर रहे थे। एक अध्यापक पॉच से 12 वर्ष के लगभग 80 बच्चों को ले कर एक पेड़ के नीचे बैठा था। ये सभी बच्चे पहले गाँव के प्रमुख स्कूल में पढ़ते थे, लेकिन दलितो की हत्या के बाद, इन्होंने स्वय को असुरक्षित महसूस किया और स्कूल जाना छोड़ दिया। गॉव की एकमात्र चावल मिल बद पड़ी है। मुरुगेसन की पत्नी ने अपनी पति की हत्या के 38 दिन बाद एक बेटी को जन्म दिया। मुरुगेसन

के भाई राजा की विधवा भी गर्भवती है। राजा भी मुरुगेसन के साथ ही मारा गया था।

हालाँकि मारे गये लोगों के रहने के लिए मकान और दो कमरो के स्कूल की इमारत बनाने का काम चल रहा है, फिर भी गॉव के इस हिस्से मे उदासी की धुध छा रही है और भय व्याप्त है।

गॉव के जिस मुख्य हिस्से में पिछडी जातियों की बहुतायत है, वहॉ एक बडे-से हॉल में सिपाहियो ने डेरा डाला हुआ है। समुदाय का एक भी पुरुष सदस्य वहॉ नहीं है, हत्या काड के बाद सभी लोग भाग गये। छोटी-मोटी सभी दुकाने बंद है, बच्चे आवारा-से इधर-उधर घूमते रहते हैं। औरतें हालात से परेशान है। जाति के मुखियाओं के आदेश पर गाँव में अखबार नही बॅटता, क्योकि उनकी औरतो को बाहर जो कुछ हो रहा है, उससे दूर रखा जाना चाहिए। जात-पॉत माननेवाले मर्द ही इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। अब यह इलाका कब्रिस्तान जैसा बन गया है, लेकिन शायद पुरुष खुश हों, क्योंकि उनकी इच्छा पूरी हो गयी। वे तो यही चाहते थे कि उनकी जाति के लोग ही गॉव पर राज करें, लोकतंत्र रहे या न रहे।

जब अक्तूबर 1996 के चुनावों मे मेलावलावु को अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित पचायत घोषित किया गया था, तब इस क्षेत्र की प्रभावशाली पिछडी जाति ने इसका विरोध किया था, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ चुनाव नही कराये जा सके। चुनाव कराने की दूसरी कोशिश भी हिसा और मतदान केंद्रों पर कब्जे के कारण बेकार हो गयी। अंत में, जब 30 दिसम्बर 1996 को चुनाव हुए तो कल्लारों ने चुनाव प्रक्रिया का बहिष्कार किया। छह सीटें भर गयीं और तीन खाली रह गयीं। 35-36 साल के मुरुगेसन अध्यक्ष चुने गये और बीस से ऊपर के भूकन उपाध्यक्ष बने। लेकिन गॉव की प्रभावशाली जाति ने उन्हे पंचायत के दफ्तर में कदम तक नही रखने दिया। दफ्तर एक नये बने भवन में है। इमारत पर मुरुगेसन का नाम बडे-बडे अक्षरों में लिखा हुआ था, लेकिन आज उस पर गोबर पुता हुआ है।

विल्लापुरम वार्ड मे मदुरै निगम की पार्षद लीलावती की हत्या के कुछ ही सप्ताह के भीतर मेलावलावु हत्याकाड से कई सवाल उठते हैं।

मदुरै जिला, खास तौर से मेलूर तालुक, जाति संबधों की दृष्टि से एक संवेदनशील इलाका है। मेलावलावु के बारे में 1952 में अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ के स्वामी आनद तीर्थ ने लिखा था, 'मेलावलावु में जब मैं दो हरिजन लड़कों के साथ चाय की एक दुकान पर गया, तो कुछ लोगों ने मुझे धमकी दी और उन लड़कों को वहॉ से भगा दिया। दुकानदार ने जानबूझ कर कॉच का एक गिलास तोडा और मॉंग की कि इस गिलास के पैसे भरो नहीं तो मार पडेगी।'

यह बात 45 वर्ष पहले की है। मेलावलावु घटना से कुछ ही दिन पहले तमिलनाडु के मानवाधिकार आयोग को दी गयी एक रिपोर्ट मे विधायक डॉ कृष्णस्वामी ने कहा

था, 'स्थानीय निकाय चुनावो के दौरान प्रभावशाली जातियों के अडगो की वजह से कई आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रो मे चुनाव नहीं कराये जा सके। मदुरै जिले के मेलूर तालुक की मेलावलावु पचायत के आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र में दलित उम्मीदवार चुनाव नही लड सके। मैने व्यक्तिगत रूप से मामले मे दखल दिया और लड़ाई भी की, लेकिन निर्वाचित दलित प्रतिनिधि मुरुगेसन को काम करने के लिए अपने कार्यालय मे जाने ही नहीं दिया गया। मैने इस मामले की कई बार शिकायत की, यहाँ तक कि विधान सभा में भी यह मामला उठाया, लेकिन कोई फायदा नही हुआ।'

इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि जिला प्रशासन को पता था कि मेलूर और मेलावलावु में तनाव है। गॉववालों ने लेखक को बताया कि असल मे जिला अधिकारियो ने मुरुगेसन और उसके साथियों को धमकियो और हिसा के बावजूद नामजदगी के अपने पर्चे दाखिल करने को कहा था और उन्हें सुरक्षा का आश्वासन भी दिया था। लेकिन सुरक्षा नहीं दी गयी। दो-चार सिपाहियों को तैनात कर देना ऐसे सामाजिक तनावो का कोई हल नही है।

जिला, ब्लॉक और पचायत स्तरो पर शक्तिशाली स्वशासी सरकारी संस्थानो का कामकाज जन प्रतिनिधियो द्वारा सँभाले जाने के सदर्भ में, कलक्टर के अधीन काम करनेवाले पूरे प्रशासनिक तत्र मे आमूल परिवर्तन की जरूरत है। अब जिले का प्रशासन काफी जटिल हो गया है और केवल ऊपर से दिये जानेवाले आदेशो के बूते पर इसे चलाना सभव नहीं रहा है।

मेलावलावु के हत्याकांड को जातिगत तनाव के एक और उदाहरण के रूप में देखना एक जबरदस्त भूल होगी। यह उस पंचायती राज संस्थान पर एक गंभीर हमला था, जो गॉवों में ताकतवर गुटबाजी को बदलने की क्षमता रखता है। नयी पचायतों को गॉव के ताकतवर गुटों द्वारा एक खतरे के रूप मे देखा जा रहा है। जब पचायतो के पास न तो शक्तियॉ थी और न ही पैसा, तब भी ये स्थानीय निकाय बिना किसी प्रभाव के मौजूद थे, उनकी सदस्यता प्रतिष्ठा की प्रतीक मानी जाती थी। अब उनका रुतबा भी है और ताकत भी। स्थानीय संसाधनों पर पंचायतो का नियंत्रण है। पंचायत का अध्यक्ष गाँव का प्रथम नागरिक होता है और मंदिर उत्सवो में उसे सम्मनित किया जाता है। मेलावलावु पंचायत के मामले में मछली पालन के तालाबों, मदिर की जमीन ओर वन क्षेत्र से प्राप्त होनेवाले, राजस्व पर पचायत का नियत्रण है। जब अनंत काल से इन सभी विशेषाधिकारों पर ऊँची जातियो का कब्जा रहा हो और नीची जातियो का काम लकड़ी काटना या पानी लाना भर रहा हो, तब ऊँची जातियॉ पंचायत चुनावों के कारण भूमिकाओ की इस अदला-बदली को कैसे बर्दाश्त कर सकती है?

इस देश मे लोकतंत्र कोई नयी बात नही है। लेकिन कई मामलो मे लोकतत्र का इस्तेमाल असरदार वर्ग की ताकत को बरकरार रखने के लिए किया जाता रहा

है और आज जब गॉव और वार्ड स्तर पर असल लोकतंत्र आ रहा है, तब इसके साथ रक्तपात और हिंसा जुड गयी है। स्वाभाविक प्रश्न यह है कि आजादी के बाद हमारे गाँवो में किस प्रकार की राजनीतिक और सामाजिक शिक्षा पनप रही है? कमजोर वर्गो को अधिकार-सम्पन्न बनाने और उन्हे अपने अधिकारो के लिए लड़ने के लिए सगठित करने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया तो शुरू हो रही थी, लेकिन प्रभावशाली जातियो को बदलते समय, लोकतांत्रिक मूल्यो तथा सामाजिक न्याय और समता के बारे मे शिक्षित करने की कोई कोशिश नही की गयी। हाल के दिनों में दक्षिणी तमिलनाडु की ताकतवर जातियो में कोई सुधारवादी आंदोलन गंभीर रूप से नहीं चला।

मीनाक्षीपुरम में अप्रैल 1981 मे 180 हरिजन परिवारों द्वारा सामूहिक रूप से धर्म परिवर्तन इस बात का स्पष्ट संकेत था कि दलित समूह सम्मान और गरिमा से जीने के रास्ते ढूँढ रहे हैं। चेन्नई स्थित भारत सरकार के अनुसूचित जातियों/जनजातियो के निदेशक के कार्यालय की धर्मातरण के बारे में एक रिपोर्ट (1981) का साराश कहता है कि पुराने जमाने से चले आ रहे छुआछूत पर आधारित सामाजिक भेदभाव और साथ ही कमजोर वर्गो के खिलाफ होनेवाले अपराधों की रोकथाम के प्रति अधिकारियो की लापरवाही ने ही धर्मातरणो को खास तौर पर बढावा दिया है। रिपोर्ट मे अनुसूचित जातियों को परेशान किये जाने के लिए कई उदाहरण देते हुए बताया गया है कि 'सर्वश्री परमशिवन और जेबानी पंचायत सदस्य थे...जब भी वे पंचायत की बैठकों मे शामिल होते, उन्हे पानी तक के लिए नही पूछा जाता था। उन्हें चाय नही दी जाती थी। अलग से बैठाया जाता था...बताया जाता है कि पीने का पानी भर कर रखने का प्रस्ताव पास किया गया था, लेकिन उस पर कभी भी अमल नही किया गया।'

तमिलनाडु मे हालात सुधरे नही, बल्कि और बिगड़ गये। 1981 मे अत्याचारो और बेइज्जती से बचने के लिए इन लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया, लेकिन 1996 मे जब लाकतान्त्रिक संस्थानों और लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में उन्होंने भाग लेने की कोशिश की तो इसका अंजाम दिन दहाडे हत्या के रूप मे सामने आया। यह सवाल बार-बार उठ रहा है कि हम कहाँ जा रहे हैं? सभ्य समाज की ओर या ऐसे समाज की ओर, जहाँ 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ होती है?

मेलावलावु यह भी कहता है कि किस प्रकार राजनीतिक पार्टियाँ अपना वोट बैक बनाये रखने के लिए जातियों या गॉवो की राजनीति करती हैं। इस हत्याकाड के बाद इस गॉव में छोटी और बड़ी राजनीतिक पार्टियो के तरह-तरह के नेता आ रहे हैं। वे आते हैं, शोक जताते है, वादे करते हैं और चले जाते हैं। गॉवों की समस्या का स्थायी समाधान खोजने की कोई कोशिश नहीं होती। अपराधी भी पार्टियों की आड मे छिप जाते हैं। वोट बैंक के रूप में जातियों का इस्तेमाल भारतीय समाज का अभिशाप रहा है। संसद और विधान सभा चुनावों के बाद यह और मजबूत हुआ

है। इसे समाप्त करने की कोई वास्तविक कोशिश हुई ही नही है। पचायत चुनावा में इस वोट बैंक को तोड़ने की क्षमता है, लेकिन राजनीतिक पार्टियां बिना स्थायी समाधान के इन दुखद घटनाओं को जिस तरह से भुनाने की कोशिश कर रही है, उससे यह सवाल जस का तस बना रहता है।

मदुरै ऐसा जिला है, जहाँ काफी लंबे समय से अच्छी-खासी संख्या मे गाधीवादी सगठन और सस्थान काम करते आ रहे है। तमिलनाडु राज्य में स्वयंसेवी संगठनो की कोई कमी नही है। फिर ऐसी वीभत्स घटनाएँ बार-बार क्यों घट रही है? जहॉं सरकार नाकाम रहती है, क्या वहाँ का नागरिक समाज यह शपथ नही ले सकता कि मेलावलावु की पुनरावृत्ति किसी भी क्षेत्र, जिले और राज्य मे नहीं होगी? लेकिन ऐसी भी कोई कोशिश नजर नहीं आ रही है।

लीलावती हत्याकांड के बाद मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी हरकत में आयी और अपना आधार मजबूत करने के उद्देश्य उसने मृतकों के परिवारों की मदद के लिए सभी राजनीतिक और वित्तीय उपाय किये तथा जमीनी स्तर पर लोकतत्र का संदेश फैलाया। लेकिन मेलावलावु में ऐसा कुछ भी नही है और है भी तो बेहद कमजोर है। दलित आंदोलन मे फूट, गुटबाजी और तनावग्रस्त इलाके में प्राणो के संकट को रोकने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग के एकजुट प्रयास का अभाव चिंता का विषय है।

हरिजन बस्ती में बन रहे दो कमरो के छह मकान और स्कूल की इमारत (बिना किसी सुविधा के एक सादा-सा ढॉचा) दुनिया के सामने इस बात का सबूत होगा कि इन छोटी-मोटी सुविधाओ को प्राप्त करने के लिए दो निर्वाचित प्रतिनिधियो और उनके समर्थकों को अपनी जान गँवानी पड़ी।

मेलावलावु और इस तरह के गॉवो को नियमित रूप से पंचायत चुनाव न कराने और लोकतंत्र की जडें मजबूत न करने की एक भारी कीमत चुकानी पड रही है। मदुरै मे मुझे बताया गया कि उसीलमपट्टी इलाके में कीरीपट्टी और पप्पाकुडी पंचायतों तथा कल्लिकुडी पंचायत के मरुथनगुड़ी में सामाजिक तनावो के कारण आज तक पचायत यूनियन के चुनाव नहीं हुए हैं। क्या राज्य सरकार की नीद खुलेगी और वह हकीकत को समझेगी?

16

शोषित वर्ग के लिए मायने

डॉ आंबेडकर ने 4 नवंबर 1948 को सविधान सभा म कहा था : 'भारत के बुद्धिजीवियों का ग्रामीण समाज से लगाव करुण नही तो निस्सीम है। इसका मुख्य कारण मेटकाफ द्वारा की गयी गॉवों की प्रशसा है। उन्होंने गॉवों को ऐसे छोटे-छोटे गणराज्यो के रूप मे वर्णित किया जो अपनी जरूरत लायक प्रायः सब कुछ खुद पैदा कर लेते हैं और किसी प्रकार के वैदेशिक सबध से लगभग स्वतंत्र रहते हैं।'

'गॉवों ने अनेक समस्याओ के बीच जो अपना अस्तित्व बचाये रखा है, वह एक तथ्य हो सकता है। लेकिन सिर्फ बचे रहने का कोई महत्व नहीं है। प्रश्न यह है कि उन्होंने जीवन किस स्तर का जिया है? निश्चय ही निचले और स्वार्थी स्तर का। मेरा मानना है कि ये ग्रामीण गणराज्य ही भारत की बरबादी का कारण रहे है। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रांतीयता और साप्रदायिकता की निदा करते है, वही गॉवों के पक्षधर के रूप में सामने आते है। गाँव घोर स्थानीयता, अज्ञान, संकीर्ण मानसिकता और साप्रदायिकता के गढ होने के अतिरिक्त और क्या है?'[1]

भारतीय गॉवो और ग्राम पंचायतों के बारे में आंबेडकर के इस कथन को आधी सदी बीत चुकी है। पंचायतों को नीति निदेशकों की धारा 40 से निकाल कर संविधान के नौवें खड में शामिल कर लिया गया है। राजनीतिक और अकादमिक बहसो में भी ये हाशिये से उठ कर मुद्दा बन चुकी है।

लेकिन आज हमारे गॉव क्या है? देश के अधिकाश गॉवो के बारे में डॉ. आंबेडकर ने 50 वर्ष पहले जो बाते कहीं थी, उनसे क्या ये भिन्न हैं? हम रोज चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि ग्रामीण इलाकों में सामाजिक बदलाव हो रहे हैं लेकिन क्या गॉवो की सामाजिक व्यवस्था में सचमुच भारी, सारभूत परिवर्तन आया है?

मध्य प्रदेश की इन चार घटनाओ के अध्ययन में अन्य मुद्दों के साथ इन सवालों पर भी विचार किया गया है।

सविधान के 73वे सशोधन के बाद पंचायत चुनाव करानेवाला पहला राज्य

मध्य प्रदेश ही था। इन चुनावों के साल भर बाद अखबारो मे रिपोर्टे आने लगी कि पचायतो के काम-काज मे गडवडियाँ हो रही है। भारतीय समाज का अध्ययन करनेवालो को ऐसी गड़बड़ियो का कुछ अंदेशा था भी। जब राज्य के अलग-अलग हिस्सो से आयी रिपोर्टो से यह जाहिर हुआ कि महिला सरपच को सार्वजनिक रूप से नग्न किया गया, एक अन्य महिला सरपच के साथ सामूहिक बलात्कार हुआ, एक उपसरपच को प्रताड़ित किया गया और एक दलित पंचायत सदस्य को मारा-पीटा गया, तो इन घटनाओं के पीछे काम कर रही सामाजिक ताकतों की विस्तृत छानबीन जरूरी हो गयी।

इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के शोध विभाग के एक सदस्य ने इन गाँवो मे कई सप्ताह बिताये, गाँवों के रोजमर्रा के जीवन को देखा, उस इलाके के बारे मे बुनियादी सूचनाएँ इकट्ठा की, कई लोगों के साथ बातचीत की और जितने अधिक तथ्य जुटाना संभव था, उनके आधार पर इन घटनाओं को दुबारा लिखा।

लोगो की जीवन-स्थितियो से यह साफ है कि पचायत उसी समाज का एक लघु रूप है जिसका अंश गाँव है। 73वें सविधान संशोधन में 'स्व-शासन की संस्थाओं' के उल्लिखित आदर्शों को मौजूदा अन्यायपूर्ण समाज मे व्यावहारिक रूप नही दिया जा सकता। कठोर जाति व्यवस्था, सामंती मूल्यो, स्त्री-पुरुष असमानता, अमानवीय दरिद्रता और अमीर-गरीब के बीच भारी फर्कवाले ग्रामीण समाज के बदरंग कैनवस पर पंचायती राज की खूबसूरत तस्वीर नहीं उतारी जा सकती।

तो, अब सवाल यह है, क्या ग्रामीण भारत इन सभी स्थितियों के सुधरने का इतजार करता रहे? मसलन, लोग बाट जोहते रहें कि सबको शिक्षा मिले, भूमि सुधार लागू हो, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा मिले और सामाजिक विकास के साथ ही आर्थिक विकास भी हो? लेकिन बदलाव की मौजूदा रफ्तार से इस सबमे कितना वक्त लगेगा? क्या स्थानीय परिस्थितियो के अनुकूल होने तक स्थानीय शासन के लक्ष्य को पाने के लिए गॉव हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें? इसलिए यथार्थवादी तरीका यही था कि पंचायते गठित हों और वे ही स्थानीय स्तर पर जीवंत राजनीतिक प्रक्रिया के जरिये सामाजिक पुनर्निर्माण का माध्यम बनें। सविधान के 73वें संशोधन के जरिये हमने यही हासिल करने की कोशिश की है।

मध्य प्रदेश की घटनाएँ हमारे गाँवों की जमीनी वास्तविकताओं को उजागर करती है। पर हर स्थिति स्वयं अपना प्रतिवाद भी उत्पन्न करती है। पचायती राज के माध्यम से भारतीय गॉवों के जाग्रत होने के पहले कदम के रूप मे ये संकेत अच्छे है।

एक : द्रौपदी का वस्त्र-हरण

संक्षिप्त घटनाक्रम : प्राप्त जानकारी के अनुसार सल्हौना ग्राम पंचायत की सदस्य द्रौपदी बाई को 19 नवंबर 1995 को रायगढ़ जिले के सरीया प्रखड विकास पदाधिकारी

के सामने निर्वस्त्र किया गया।[2] इस घटना [illegible]
नवंबर 1995 को नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन [illegible]
प्रदेश भवन के सामने प्रदर्शन किया और इस घटना [illegible]
को तत्काल गिरफ्तार करने की माँग की। [illegible]
सुरक्षा करने का दायित्व न निभानेवाले क्षेत्र [illegible]
कार्रवाई की माँग की। 10 जनवरी 1996 को [illegible]
अपने हितों की रक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए [illegible]
तक जुलूस निकाला।

गाँव के बारे में : रायगढ़ जिला मध्य प्रदेश के पूर्वी हिस्से में [illegible]
शक्ति, जशपुरनगर और रायगढ के पुराने सामंती रजवाड़ों को [illegible]
जिला बना था।

जिले में मुख्य आबादी अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित [illegible]
जातियों की है। लोग छत्तीसगढ़ी और उड़िया बोलते हैं। जिले [illegible]
में उडिया भाषी लोगों का बहुमत है। जिले में 17 [illegible]
पंचायतें है।

रायगढ़ जिले की सारंगगढ़ तहसील का सल्हीना गाँव [illegible]
किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 1993 तक सल्हीना, [illegible]
एक ही पंचायत के हिस्से थे। 1994 में सल्हीना को [illegible]
ग्राम पंचायत का दरजा दे दिया गया। यहाँ कुल [illegible]
का पद अनुसूचित जनजाति की महिला के लिए आरक्षित [illegible]
विकास प्रखंड का हिस्सा है।

पचास के दशक के शुरू में सल्हीना में पहला अग्रवाल [illegible]
उसने परचून की दुकान खोली। फिर उड़ीसा के [illegible]
के कारण विस्थापित हुए तेली परिवार यहाँ आ कर बसे। [illegible]
में बिलासपुर, सरगुजा और रायगढ में तीन और अग्रवाल परिवार [illegible]
खोले और सूद पर पैसे देने का धंधा शुरू किया। गाँव में [illegible]
ये रायगढ़ और रायपुर की चावल मिलों को धान की आपूर्ति [illegible]
मे इन प्रवासी परिवारों की कोई दिलचस्पी नहीं है। सिर्फ [illegible]
पास साढे चार एकड़ जमीन है। ये सभी पढ़े-लिखे हैं। आस-पास [illegible]
स्थानीय अधिकारियों और राजनीतिक दलों के लोगों में भी [illegible]
प्रकार गाँव के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर इनकी काफी पकड़ है।

परिवारों की संख्या : गाँव में 865 घर हैं। उनका जातिवार विभाजन [illegible]
प्रकार है - अनुसूचित जनजातियाँ 292 (37.75 फीसदी) अनुसूचित जातियाँ [illegible]

मध्य प्रदश ही था। इन चुनावो के साल भर बाद अखबारो म रिपार्ट आने लगीं कि पचायतो के काम-काज मे गडबडियाँ हो रही है। भारतीय समाज का अध्ययन करनेवालो को ऐसी गडबड़ियों का कुछ अदेशा था भी। जब राज्य के अलग-अलग हिस्सो से आयी रिपोर्टो से यह जाहिर हुआ कि महिला सरपच को सार्वजनिक रूप से नग्न किया गया, एक अन्य महिला सरपंच के साथ सामूहिक बलात्कार हुआ, एक उपसरपच को प्रताडित किया गया और एक दलित पंचायत सदस्य को मारा-पीटा गया, तो इन घटनाओ के पीछे काम कर रही सामाजिक ताकतों की विस्तृत छानबीन जरूरी हो गयी।

इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के शोध विभाग के एक सदस्य ने इन गॉवो में कई सप्ताह बिताये, गॉवों के रोजमर्रा के जीवन को देखा, उस इलाके के बारे मे बुनियादी सूचनाएँ इकट्ठा कीं, कई लोगो के साथ बातचीत की और जितने अधिक तथ्य जुटाना सभव था, उनके आधार पर इन घटनाओं को दुबारा लिखा।

लोगो की जीवन-स्थितियों से यह साफ है कि पंचायत उसी समाज का एक लघु रूप है जिसका अश गॉव है। 73वें सविधान सशोधन में 'स्व-शासन की संस्थाओ' के उल्लिखित आदर्शो को मौजूदा अन्यायपूर्ण समाज में व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता। कठोर जाति व्यवस्था, सामंती मूल्यों, स्त्री-पुरुष असमानता, अमानवीय दरिद्रता और अमीर-गरीब के बीच भारी फर्कवाले ग्रामीण समाज के बदरग कैनवस पर पंचायती राज की खूबसूरत तस्वीर नही उतारी जा सकती।

तो, अब सवाल यह है, क्या ग्रामीण भारत इन सभी स्थितियो के सुधरने का इतजार करता रहे? मसलन, लोग बाट जोहते रहे कि सबको शिक्षा मिले, भूमि सुधार लागू हों, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा मिले और सामाजिक विकास के साथ ही आर्थिक विकास भी हो? लेकिन बदलाव की मौजूदा रफ्तार से इस सबमे कितना वक्त लगेगा? क्या स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होने तक स्थानीय शासन के लक्ष्य को पाने के लिए गॉव हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें? इसलिए यथार्थवादी तरीका यही था कि पंचायतें गठित हो और वे ही स्थानीय स्तर पर जीवत राजनीतिक प्रक्रिया के जरिये सामाजिक पुनर्निर्माण का माध्यम बने। संविधान के 73वे संशोधन के जरिये हमने यही हासिल करने की कोशिश की है।

मध्य प्रदेश की घटनाऍ हमारे गॉवों की जमीनी वास्तविकताओं को उजागर करती हैं। पर हर स्थिति स्वयं अपना प्रतिवाद भी उत्पन्न करती है। पंचायती राज के माध्यम से भारतीय गाँवो के जाग्रत होने के पहले कदम के रूप में ये संकेत अच्छे है।

एक : द्रौपदी का वस्त्र-हरण

संक्षिप्त घटनाक्रम : प्राप्त जानकारी के अनुसार सल्हौना ग्राम पंचायत की सदस्य द्रौपदी बाई को 19 नवंबर 1995 को रायगढ़ जिले के सरीया प्रखंड विकास पदाधिकारी

के सामने निर्वस्त्र किया गया।[2] इस घटना ने पूरे देश में सनसनी फैला दी। 29 नवबर 1995 को नेशनल फेडरेशन ऑफ इडियन वीमेन ने नयी दिल्ली स्थित मध्य प्रदेश भवन के सामने प्रदर्शन किया और इस घटना मे शामिल दोनों आरोपित व्यक्तियो को तत्काल गिरफ्तार करने की मॉग की। फेडरेशन ने एक निर्वाचित प्रतिनिधि की सुरक्षा करने का दायित्व न निभानेवाले क्षेत्र प्रखंड विकास अधिकारी के खिलाफ भी कार्रवाई की माँग की। 10 जनवरी 1996 को हिन्दू जन जागरण मंच ने लोगो मे अपने हितो की रक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए सल्हौना से लाटवोर तक जुलूस निकाला।

गॉव के बारे में : रायगढ़ जिला मध्य प्रदेश के पूर्वी हिस्से में स्थित है। सारंगगढ, शक्ति, जशपुरनगर और रायगढ के पुराने सामंती राज्यों को मिला कर 1952 मे यह जिला बना था।

जिले मे मुख्य आबादी अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियों की है। लोग छत्तीसगढ़ी और उड़िया बोलते हैं। जिले की तहसील सारंगगढ़ में उड़िया भाषी लोगो का बहुमत है। जिले मे 17 जनपद पंचायतें और 1083 ग्राम पचायतें हैं।

रायगढ जिले की सारंगगढ़ तहसील का सल्हौना गॉव जिला मुख्यालय से 37 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 1993 तक सल्हौना, बडगॉव और बिलाईगढ़ गॉंव एक ही पंचायत के हिस्से थे। 1994 मे सल्हौना को इन गाँवों से अलग कर स्वतत्र ग्राम पंचायत का दरजा दे दिया गया। यहाँ कुल 937 मतदाता है। इसके सरपंच का पद अनुसूचित जनजाति की महिला के लिए आरक्षित है। यह गॉव सरीया-लेंद्रा विकास प्रखड का हिस्सा है।

पचास के दशक के शुरू में सल्हौना में पहला अग्रवाल परिवार पहुँचा और उसने परचून की दुकान खोली। फिर उड़ीसा के सबलपुर जिले मे बने हीराकूद बॉध के कारण विस्थापित हुए तेली परिवार यहॉ आ कर बसे। पचास के दशक के आखिर में बिलासपुर, सरगुजा और रायगढ़ में तीन और अग्रवाल परिवारों ने छोटे-मोटे व्यापार खोले और सूद पर पैसे देने का धंधा शुरू किया। गाँव मे इन सबकी दुकानें हैं। ये रायगढ़ और रायपुर की चावल मिलो को धान की आपूर्ति भी करते हैं। खेती में इन प्रवासी परिवारो की कोई दिलचस्पी नहीं है। सिर्फ एक अग्रवाल परिवार के पास साढे चार एकड जमीन है। ये सभी पढे-लिखे हैं। आस-पास के शहरो के व्यापारियों, स्थानीय अधिकारियों और राजनीतिक दलो के लोगो से भी इनके संबंध हैं। इस प्रकार गॉव के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर इनकी काफी पकड़ है।[3]

परिवारों की संख्या : गॉव मे 865 घर हैं। उनका जातिवार विवरण इस प्रकार है : अनुसूचित जनजातियॉ 292 (37.75 फीसदी), अनुसूचित जातियॉ 278

(37.13 फीसदी), पिछडी जातियाँ 290 (33 52 फीसदी), और अन्य जातियाँ 5 (0.57 फीसदी)। गॉव मे लगभग 2000 लोग रहते है। सल्हौना गॉव मे रहनेवाली विभिन्न जातियॉ और उनके व्यवसाय तालिका 1 में बताये गये है।

शिक्षा : गॉव मे सिर्फ एक प्राथमिक स्कूल है, जिसकी स्थापना 1972 में हुई थी। स्कूल मे सिर्फ दो शिक्षक है, जिनमे से एक 'केन्द्र पाठक' शिक्षक है, जिनके अधीन नौ स्कूलो का काम भी है। इसलिए स्कूल मे दाखिल सभी 151 छात्रो (114 लडके और 37 लडकियॉ) को पढाने का काम दूसरे शिक्षक के जिम्मे है। केंद्र पाठक स्वय कोई क्लास नही लेते।

तालिका 1

जाति, हैसियत तथा व्यवसाय के सल्हौना के परिवारों की संख्या

क्रम संख्या	जाति/जनजाति	कानूनी हैसियत	व्यवसाय	परिवारों की संख्या
1.	सओरा	अनुसूचित जनजाति	खेतिहर मजदूर	280
2.	गंडा	अनुसूचित जाति	खेतिहर मजदूर	200
3.	अघरिया	पिछडी जाति	किसान	100
4.	साहिस/घसिया	अनुसूचित जाति	खेतिहर मजदूर	60
5.	पनिका	पिछडी जाति	जुलाहा	25
6.	रावत/गौड़	पिछड़ी जाति	छोटे किसान खेतिहर मजदूर	25
7.	कैओत	पिछडी जाति	भडभूजा	15
8.	कलहर	पिछड़ी जाति	किसान	10
9.	धोबी	अनुसूचित जाति	धोबी	12
10.	साहू/तेली*	पिछड़ी जाति	छोटे व्यापारी/दुकानदार	12
11.	कूडा	अनुसूचित जनजाति	खेतिहर मजदूर	08
12.	चमार	अनुसूचित जाति	खेतिहर मजदूर	06
13.	अग्रवाल*	सामान्य	धान व्यापारी/दुकानदार	04
14.	गोंड़	अनुसूचित जनजाति	खेतिहर मजदूर	04
15.	नाई	पिछड़ी जाति	नाई	03
16.	पाणिग्राही*	सामान्य	पुरोहित	01

* बाहर से आये लोग

राजनीतिक दलों का समर्थन : सल्हौना गॉव में 12 घर शिव सेना के समर्थक हैं। बाकी परिवार कांग्रेस या भाजपा के समर्थक है। चार अग्रवाल परिवारो में से

दो कांग्रेस के समर्थक है, एक भाजपा का और एक शिव सेना का समर्थक है।

भूमि का वितरण : गॉव में नौ सौ एकड खेती योग्य और 100 एकड गोचर भूमि है। विभिन्न जातियो और आदिवासियो के बीच जमीन का बॅटवारा बहुत ही असमान है। गॉव में सबसे ज्यादा जमीन अघरिया जाति के लोगो के पास है। सिर्फ नौ अघरिया परिवारो के पास 540 एकड़ जमीन है। इसके विपरीत 292 आदिवासी परिवारो के पास सिर्फ 100 एकड जमीन है और अनुसूचित जातियों के 278 परिवारो के पास महज 20 एकड जमीन है। गॉव के पूर्व-गोतिया परिवार के पास 280 एकड जमीन है। तीन अघरिया परिवारो के पास 100-100 एकड जमीन है। इस गॉव मे 100 एकड़ जमीन रखने वाले पूर्व-गोतिया निरजन पटेल ने सालाना ठेके पर 12 मजदूर रखे है, जिन्हें कामिया कहा जाता है।

फसलें : गॉव में मक्का, धान, मूँगफली, मिर्च और अरहर की खेती होती है। केवल पाँच ट्यूबवेल है, जो 30 से 40 एकड जमीन की ही सिचाई कर सकते है। चूँकि खेती बारिश पर निर्भर है, इसलिए यहॉ साल भर मे एक ही फसल हो पाती है।

गौंतिया : गॉव के परपरागत प्रधान लोगो को गोतिया कहा जाता था, जो पीढी-दर-पीढ़ी चले आ रहे थे। उनमें से अधिकाश आदिवासी थे। अंग्रेज सरकार ने मालगुजारी की वसूली का काम इन्हें सौपा हुआ था, सो ये मालगुजार भी कहलाते थे। इनकी सेवाओ के बदले सरकार ने इन्हे गॉव की एक-चौथाई कृषि योग्य भूमि दे दी थी, जिस पर कोई राजस्व नहीं लगता था। इस जमीन को भोगरा कहा जाता था। इन गोतियाई गाँवों मे जमीन की मिल्कियत गोतिया की होती थी। लगान-मुक्त भोगरा जमीन के अलावा गोतियाओं के पास सैकड़ों एकड रैय्यती जमीन भी थी। गॉव की सबसे अच्छी जमीन पर उनका ही कब्जा था। उन्हे बजर भूमि रैय्यतों को देने का अधिकार था, जो उसे खेती लायक बना लेते थे। इस प्रकार अंग्रेजी राज मे गौंतियाई व्यवस्था बहुत शोषक हो गयी थी और इससे सबसे ज्यादा पीडित आदिवासी थे। वक्त बदलने के साथ आदिवासी गोतियाओ की जगह कुलता या अघरिया जैसे सवर्ण हिन्दुओं ने ले ली। वे बाहर से अपनी जाति के लोगों को ले आये और उन्हें जमीन दी। 1952 मे गोतिया प्रणाली समाप्त की गयी। लेकिन पूर्व-गौंतिया परिवारो के पास अभी भी सैकडों एकड़ जमीन है।

खेतिहर मजदूरों की बदहाली : सल्हौना में पुरुष मजदूर की दैनिक मजदूरी 25 रुपये और स्त्री की 20 रुपये है। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा निर्धारित दर पुरुष के लिए 35 रुपये और स्त्री के लिए 30 रुपये हैं। जाहिर है, यहाँ सरकारी दर से काफी कम मजदूरी दी जाती है। साल भर काम करनेवाले कामिया मजदूर को रोज करीब दो किलो धान मिलता है। इस धान की कीमत सात रुपये है। कामिया को मालिक से खेती के लिए एक एकड जमीन भी मिलती है। इस पर खेती के लिए

हल-बैल भी मालिक ही देता है। वर्ष मे दो-तीन माह के लिए ही काम मिलता है। गॉव मे सूखा और अकाल के समय मजदूर उडीसा के धान के खेतों ओर चावल मिलो मे चले जाते है या उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले मे जा कर ईटो के भट्ठा पर काम करते है। जंगल गॉव से काफी दूर है, इसलिए खेतिहर मजदूरो के लिए वहॉ से ईंधन, चारा और दूसरे वन उत्पाद लाना भी संभव नही होता।

अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के परिवार : सल्हौना गॉव के सभी 570 हरिजन-आदिवासी परिवार खेतिहर मजदूरों के है। उनमे से कुछ के पास अपनी जमीन भी है। लेकिन यह जमीन पूरे परिवार के लिए पर्याप्त नहीं है। उल्लेखनीय है कि जमींदार अनुसूचित जातियो के लोगो को उनके सामाजिक दरजे के चलते कामिया नही रखते। इस प्रकार गॉव के अघरिया जमींदारो और व्यापार सँभालने वाले अग्रवाल तथा तेली लोगों को गाँव की अनुसूचित जातियों और आदिवासियो पर काफी मजबूत पकड़ है। जमींदार उन्हें काम देते हैं और अग्रवाल तथा तेली उधार पर राशन।

1994 का पंचायत चुनाव और मुख्य प्रतिद्वंद्वी : 1994 के पचायत चुनाव मे चार महिलाओ ने सरपंच पद का चुनाव लडा। ये सभी सओरा आदिवासी थीं। द्रौपदी बाई (भारतीय जनता पार्टी) को 254 वोट मिले और उन्होने चमेली बाई (कांग्रेस) को 47 वोटों से हराया। सरपंच पद की अन्य उम्मीदवारों धर्मिनी बाई (कांग्रेस) को 137 और बुंदा बाई (कांग्रेस) को 87 वोट मिले थे।

अघरिया जाति के नवयुवक रामकुमार पटेल (भारतीय जनता पार्टी) उपसरपंच चुने गये। अन्य 12 लोग सदस्य चुने गये। पंचायत के 14 निर्वाचित सदस्यो में पॉच महिलाएँ और नौ पुरुष थे। इन नौ पुरुषो में चार आदिवासी और एक अनुसूचित जाति का था।

द्रौपदी बाई

द्रौपदी बाई 50 से कुछ ऊपर की हैं। उनके परिवार में छह लोग हैं—पति (60), विवाहित बेटा (27), बहू और दो पोते। गॉव में द्रौपदी बाई की चाय की दुकान है। उनका बेटा साइकिलें मरम्मत करने की दुकान चलाता है। इस परिवार के पास 75 डेसिमल जमीन है। द्रौपदी बाई ने स्कूल मे तो पढ़ाई नहीं की है, पर वह उडिया भाषी औरतों के साथ मिल कर एक शिक्षक से लिखना-पढ़ना सीखती हैं। इस अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली को चटसाली कहते हैं। तीन से चार महीने मे ये औरते उडिया लिखना-पढना सीख जाती है और जब वे उड़िया में धार्मिक और पौराणिक किताबें पढना शुरू कर देती हैं, उनकी शिक्षा का अंत हो जाता है। ऐसा इसलिए कि औरतों से सिर्फ उडिया रामायण, भागवत गीता, महाभारत और हरिवंश जैसी धार्मिक किताबें पढ़ने की ही उम्मीद की जाती है। कार्तिक के महीने को उडिया

लाग पवित्र मानते हे। इस महीने मे औरते कार्तिक पुराण पढ़ती है। सारगगढ के गॉवो में गर्मियो के दिनो मे औरते और पुरुष छमराई में साथ बैठ कर धार्मिक ग्रथ पढते है और उन पर चर्चा करते है। इन अवसरों पर अकसर औरतों से ही पढने की उम्मीद की जाती है। कई बार औरतें लरिया भाषा मे इनकी व्याख्या करती है। सओरा क्षेत्रवासी अन्य आदिवासियों की अपेक्षा ऊँचे माने जाते हैं।

द्रौपदी बाई ने एक कुम्हार शिक्षक से उडिया सीखी थी। वे उडिया की धार्मिक किताबें पढती है। हिन्दी मध्य प्रदेश की राजभाषा है, इसलिए उन्होने हिंदी में दस्तखत करना सीख लिया है। धोवनीपली गॉंव के पूर्व सरपच रामचंद्र पटेल (भारतीय जनता पार्टी) कहते है, 'द्रौपदी बाई दलगत राजनीति को नहीं मानती। किसी पार्टी से उसका रिश्ता नहीं है। वह कहती हैं कि राजनीतिक दल तो भिखमगो जैसे हैं। फूल छाप (भाजपाई) और पंजा छाप (कांग्रेसी) हमसे वोट की भीख मॉंगते हैं। हम उनको कैसे मना कर सकते हैं!' उन्हें पार्टियों से मेल-मिलाप रख कर चलना होता है।

महेश अग्रवाल

42 वर्षीय महेश अग्रवाल कांग्रेस के इलाके में सक्रिय कार्यकर्ता है। करीब 80 वर्ष पहले उनके पूर्वज हरियाणा से रायगढ़ के सरीया इलाके में आये थे। 1977 मे महेश ने सरीया स्कूल से हायर सेकंडरी की परीक्षा पास की और कांग्रेस पार्टी के सदस्य बन गये। उनके पॉच भाई और तीन बहने है। उनके सभी भाई व्यापार करते है ओर बरगढ (उडीसा) मे उनकी चावल मिल, लकडी मिल तथा दवा और मिठाई की दुकाने है। 1990 में महेश सरीया से सल्हौना आये और वहाँ उन्होने परचून की दुकान खोली। 1986 में उन्होंने रायपुर की अग्रवाल लड़की से शादी की, जिससे उनके तीन बेटियॉं हैं। रायपुर की एक दलित (घासी) लड़की से उनके अवैध संबध भी है। सल्हौना मे उन्होने किशोर आदिवासी लडकी, बुदा बाई, को घरेलू काम के लिए रखा। जब उसे गर्भ ठहर गया, तो उन्होंने बिना शादी किये उसे दूसरी पत्नी बना कर रख लिया। बुदा बाई से भी उनके एक बेटी है।

महेश अग्रवाल पूरे इलाके में कुख्यात है। वे शराबी हैं और औरतो के पीछे भागते रहते हैं। वे अपनी दुकान नहीं चला पाये। उन्होने बुंदा बाई को सरपंच बनवाना चाहा, ताकि उसकी आड मे वे पचायत के संसाधानों पर कब्जा कर सके। करीब 17 साल की बुंदा बाई ने सरपंच का चुनाव लडा, लेकिन वे हार गयीं। उसके बाद से ही महेश अग्रवाल पंचायत के कामकाज को प्रभावित करने के किसी अवसर की तलाश में थे। वे द्रौपदी बाई के काम में गलती ढूँढने में लगे रहते थे। उन्होंने पचायत सदस्य शौकीलाल निषाद (भारतीय जनता पार्टी समर्थक) से दोस्ती गॉंठी। उन्होंने अपने शक्तिशाली संपर्को से शौकीलाल को स्कूल के भवन के निर्माण का ठेका दिलाने मे मदद भी की।

घटनाक्रम

सरीया प्रखड के बीडीओ के अनुसार हर पंचायत को साल में चार चौपाले (ग्राम सभा) आयोजित करनी होती है। सल्हौना में चार चौपालें हो चुकी थीं। 19 नवबर 1995 को स्वर्गीय इदिरा गांधी का जन्मदिन मनाने के लिए बैठक बुलायी गयी थी। बैठक करीब 12 बजे शुरू हुई। 70 से 100 लोगो ने इनमें भाग लिया। इनमे पंचायत की दो महिला सदस्य भी थीं। बैठक की शुरुआत इदिरा गाधी को श्रद्धांजलि देने से हुई। बाद मे जनपद पंचायत सदस्य तुलसी पटेल ने विभिन्न योजनाओं का ब्यौरा पढा और महेश अग्रवाल ने सल्हौना पंचायत की अनेक समस्याएँ रखी। महेश ने समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण आवास योजना, इंदिरा आवास योजना और पंचायत के तालाब के बारे में सवाल उठाये। उन्होंने द्रौपदी बाई और पचायत सचिव के खिलाफ कई शिकायतें कीं।

बैठक के बीच में ही वे लोग शराब ले आये और वही पीने लगे। महेश और उनके साथी पचायत के कार्यो के विवरण जानना चाहते थे। वे 20 अगस्त 1994 से 19 नवबर 1995 तक के आय-व्यय का विवरण और पचायत का रजिस्टर देखना चाहते थे। महेश अग्रवाल, शौकीलाल निषाद और उनके समर्थक नशे की हालत मे ही बैठक मे आये थे। उनकी माँगे और आरोप थे

1 ऑगनवाड़ी कार्यकर्ता को हटाओ।

2 केंद्र पाठक और कुसुम पटेल का तबादला करो।

3 सरपंच (द्रौपदी बाई) ने जन स्वास्थ्य रक्षक की नियुक्ति में तीस हजार रुपये की रिश्वत ली है।

4. एक नये जन स्वास्थ्य रक्षक की नियुक्ति की जाये।

5. सरपच ने चार एकडवाला पुराना तालाब हर्दी गॉव के आशाराम सीदार को दस हजार रुपये में ही दस साल के लिए किराये पर दे दिया है। आशाराम पंचायत सचिव मनबोध सीदार का साला है और यह ठेका ग्राम सभा की सिफारिश के बिना ही दिया गया है। सल्हौना के रामरतन सीदार (अनुसूचित जनजाति) जैसे आवेदको के सामने आने के बावजूद यह ठेका आशाराम को क्यों दिया गया है? नियमो के अनुसार सरपंच दस एकड़ से कम क्षेत्रफलवाले तालाव में मछली पकड़ने के लिए लीज ग्राम सभा की मजूरी के बाद ही दे सकता हे। दस एकड़ से बड़े तालाब जनपद पचायत के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

महेश अग्रवाल, शौकीलाल निषाद और उनके समर्थक बड़े जोर-शोर से यह कहते रहे कि अगर सरपच संतोषजनक जवाब नही दे सकतीं, तो वे इस्तीफा दे दे। शेष निर्वाचित सदस्य भी इस्तीफा दे देंगे। भारतीय जनता पार्टी के सदस्य बाबूलाल पटेल ने कहा,'सरपंच से इस्तीफा मॉगने का हक गॉववालों को नहीं है।' भारतीय

जनता पार्टी के दो सदस्यो को छोड कर बाकी सभी ने अपने इस्तीफे सरपंच को सौप दिये। द्रौपदी बाई ने ये इस्तीफे मंजूर करने से इनकार कर दिया। इससे महेश और उनके समर्थक नाराज हो गये। उन्होंने सरपच और सचिव को सभा स्थान से जाने नहीं दिया। बाद मे सचिव को इस बात की अनुमति दी गयी कि वे बीडीओ आर.एस. सिह, पचायत निरीक्षक ए. खाखलो और जिला पचायत के उपाध्यक्ष जगन्नाथ पाणिग्रही को बुला लाये। वे लोग रात साढ़े दस बजे सल्हौना पहुँचे तब भी स्थिति उतनी ही तनावपूर्ण थी। रजिस्टर लाने का बहाना बना कर मध्य रात्रि के करीब सचिव वहाँ से खिसक गये। कुछ देर बाद उपाध्यक्ष भी चले गये।

महेश अग्रवाल, शौकीलाल निषाद और उनके समर्थक अपनी माँग पर अडे रहे। करीब एक बजे रात को, जब द्रौपदी बाई ने भी वहाँ से जाने की कोशिश की, महेश अग्रवाल और शौकीलाल निषाद ने उनका हाथ पकड़ कर खींचा। इस खीचतान मे उनकी साड़ी खुल गयी। यह सब बीडीओ और पचायत निरीक्षक के सामने हुआ। बीडीओ ने पचायत के सारे रजिस्टर जब्त कर लिये।

घटना के 48 घटे बाद 21 नवबर 1995 को द्रौपदी बाई ने जगन्नाथ पाणिग्रही की सलाह से सरीया थाने में प्राथमिकी दर्ज करायी। बाद मे भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ताओं ने रायगढ कलक्टर के दफ्तर और बर्मकेला मे बीडीओ के दफ्तर का घेराव किया। भारतीय जनता पार्टी ने द्रौपदी बाई से रैली का नेतृत्व करने के लिए कहा। द्रौपदी ने भारतीय जनता पार्टी की रैली में हिस्सा लिया। भारतीय जनता पार्टी आगामी लोक सभा चुनावों मे इसका राजनीतिक लाभ उठाना चाहती थी।

पीडित महिला का नाम क्योंकि द्रौपदी है, इसलिए सल्हौना की घटना को महाभारत में दु शासन और दुर्योधन द्वारा किये गये द्रौपदी के चीर हरण से जोड दिया गया। ऐसा आदिवासियों, हरिजनों और दलितों की धार्मिक भावनाएँ भडकाने के लिए किया गया। घटना के मुख्य आरोपियो महेश अग्रवाल (कांग्रेस) और शौकीलाल (पहले भारतीय जनता पार्टी के और अब कांग्रेस के समर्थक) की तुलना दुर्योधन और दु शासन से की गयी।

सल्हौना ग्राम सभा को महाभारत की कुरु सभा का नाम दिया गया। 3 जनवरी 1996 को बिलासपुर के दैनिक *भास्कर* ने मध्य प्रदेश भारतीय जनता पार्टी के सचिव और रायगढ़ के पूर्व सांसद नंदकुमार सहाय तथा जिला पचायत उपाध्यक्ष जगन्नाथ पााणिग्रही का बयान छापा, जिसमे उन्होंने हिन्दू जन जागरण मच से आह्वान किया था कि वे लोगों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक बनायें। सल्हौना से यशपुर नगर में लाटबोर तक एक ऐसी रैली की योजना बनायी गयी, जो पूरे रायगढ से हो कर गुजरे। घरघोड़ा, कुडुमकेला, धर्मजयगढ़, राजपुर, लेलुंगा, पथलगाँव, लुडेग, कसबेला, महादेवदाड, बगीचा, दुलदुला, मनोरा, यशपुर नगर, डुलडुला कुनकुरी और लाटबोर में 1 से 10 जनवरी 1996 तक जनसभाएँ करने की योजना भी बनायी

गयी। इस पर बडे नबापाडा गाँव के रोहित कुमार सहाय ने, जो सारंगगढ के जिला प्रतिनिधि भी है, कहा, 'चूँकि सल्हौना गॉव मध्य प्रदेश काग्रेस अध्यक्ष परसराम भारद्वाज के लोक सभा चुनाव क्षेत्र मे पडता है, इसलिए भारतीय जनता पार्टी इस मुद्दे को राजनीतिक रग देना चाहती थी।'

दो : उपसरपंच की प्रताड़ना

गॉव के बारे में : कार्की गॉव मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित है। यह जिला 1972 में पहली बार तब देश-विदेश मे चर्चित हुआ जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने तत्कालीन मुख्य मंत्री प्रकाशचंद सेठी की मदद से कुख्यात डाकुओं मूरत सिह, मोनी राम सहाय, पूरन सिंह वगैरह को आत्मसमर्पण करने के लिए राजी कर लिया था। अपनी अद्वितीय वास्तुकला और मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध खजुराहो मदिर भी इसी जिले मे है।

यह गॉव 1993 तक धिनोची ग्राम पचायत का हिस्सा था। 1994 में कार्की, गोचीपुरा, गोहरा और बमनेरा गॉवो को धिनोची पचायत से अलग किया गया और कार्की पंचायत गठित हुई। इस पंचायत क्षेत्र मे 315 मतदाता हैं। यह पंचायत बड़महलेरा जनपद विकास खड में पडती है।

गॉव मे चार मदिर है, जिनमें दो शिव के और एक-एक मंदिर हनुमान ओर देवी का है। शिव और देवी के मदिरों मे दलितों समेत सभी जातियों के लोगों को आने-जाने की अनुमति है, पर हनुमान मदिर मे सिर्फ ब्राह्मण ही प्रवेश कर सकते है। गॉव में एक प्राथमिक विद्यालय है। यहॉ पढ़नेवाले 40 छात्रो मे से 15 पास के गोरहा गॉव के हैं। गॉव मे दो सरकारी कुएँ हैं—एक दलितों के लिए और दूसरा ऊँची जातिवालो के लिए।

आबादी : कार्की गॉव में 73 घर है—45 पिछड़ी जातियों के, 26 अनुसूचित जाति के और दो अन्य जातियों के। गॉव मे कुल मिला कर 400 लोग है। पिछडो में यादवो का बहुमत है। दलितों मे सिर्फ चमार ही है। दूसरी जातियो मे एक घर ब्राह्मण का और एक ठाकुरों का है। पिछडों मे 30 घर यादव, चार-चार घर पाल और लोहार, तीन घर नाई, एक-एक घर नामदेव (दर्जी), कुम्हार, बढ़ई और धीमर (मछेरे) का है।

कृषि : गॉव मे खेती योग्य जमीन का रकबा 500 एकड़ है। सिर्फ तीन महीने (नवबर से जनवरी) तक ही पास के बॉध से सिंचाई हो पाती है। गॉव की भूमि उपजाऊ है। यहॉ गेहूँ, सोयाबीन, तिल, उडद और धान की खेती होती है। छोटे और मझोले किसानों मे एक-दूसरे के यहॉ जा कर मजदूरी करने का रिवाज यहॉ अब भी है। इस व्यवस्था में खेत पर काम करवानेवाला मजदूरी नही देता। बदले मे जरूरत पड़ने पर वह मजदूरी करनेवाले के यहॉ जा कर मजदूरी कर आता है।

भूमि का वितरण : कार्की गॉव के सभी 73 परिवारो के पास कुछ न कुछ जमीन है। लेकिन गॉव मे सबसे ज्यादा जमीन यादवो के पास है। आशाराम के पास 50 एकड जमीन है और वे गॉव के सबसे बडे भूमिपति हैं। उनके पास बहुत-से दुधारू पशु भी हैं, जिनका दूध वे पास के बडमहलेरा गॉव के चाय और मिठाईवालो के यहॉ बेचते हैं।

1994 का पंचायत चुनाव और मुख्य प्रतिद्वंद्वी

1994 के पचायत चुनाव मे आशाराम यादव ने सरपच पद का चुनाव लडा था। उन्हे स्थानीय विधायक उमा यादव (काग्रेस) का समर्थन हासिल था। उमा ने उन्हे अपनी बिरादरी का होने के नाते समर्थन दिया था।

पास के गोचीपुरा गॉव के नोनेजु उर्फ दौलत सिंह (राजपूत) ने भी सरपच पद का चुनाव लडा था। उनके पास 60 एकड जमीन है। वे काग्रेसी नेता है। वे पहले दो बार घिनोची पचायत के सरपच रह चुके हैं। उनके और उनके चारों भाइयो के पास राइफले है। छतरपुर जिले के प्राय सभी समृद्ध अगडे किसान राइफल रखते है। नोनेजु की दो बीवियॉ है और कहा जाता है कि अहीर, लोध, नाई और यादव जैसी पिछडी जातियो की कई महिलाओ से भी उनके संबध है।

आशाराम यादव को कार्की गॉव मे चमारों को छोड कर बाकी सभी का समर्थन हासिल था। चमारो ने नोनेजु को वोट दिया। आशाराम यादव 70 वोटो से हार गये। कार्की के यादव, ब्राह्मण और ठाकुर इस बात पर खासे नाराज हुए कि बड़ा गॉव होने पर भी उनका उम्मीदवार हार गया और छोटे गॉव के नोनेजु जीत गये। गॉव के एकमात्र ब्राह्मण परिवार के प्रमुख ललित प्रसाद तिवारी को सभी जातियों के लोग गॉव का मुखिया मानते हैं। वे उम्र के पॉचवे दशक मे हैं। गॉव के सभी लोग आपसी झगडो में तिवारी से फैसला करवाते हैं, इन मामलो को ले कर वे कभी-कभार ही पचायत में जाते हैं। सभी जातियो के लोग उनके फैसले का सम्मान करते हैं। उनके पिता भी गॉव के मुखिया थे। उनके चार भाई हैं, एक भाई बडमहलेरा प्रखंड विकास कार्यालय मे ग्राम सहायक है। तिवारी ने पचायत के चुनाव मे नोनेजु का सीधा विरोध नही किया। उपसरपच पद के लिए उन्होंने सभी प्रभावशाली लोगो को हनुमान की मूर्ति के आगे शपथ दिलवायी थी कि वे मातादीन का विरोध नहीं करेंगे।

नोनेजु को मालूम था कि तिवारी ने पूरे कार्की गॉव को उनके खिलाफ वोट देने के लिए एकजुट किया है। इसलिए वे चाहते हैं कि उनका कोई नजदीकी व्यक्ति ही उपसरपच बने। सो उन्होने कार्की गॉव के ही सरमन अहीरवार को उपसरपच का चुनाव लडने के लिए चुना। अपने ही गॉव का उम्मीदवार खडा करने से दूसरे गॉववाले नाराज हो जाते, इसलिए उन्होंने यह सावधानी बरती। सरमन को नोने का समर्थन हासिल था, इसलिए वे एक वोट से जीत गये। उन्हे छह और मातादीन

यादव को पॉच वोट मिले। गॉव के यादव और ब्राह्मण लडके इससे बहुत नाराज हुए। वे अपने उम्मीदवार की हार का बदला लेना चाहते थे। इस क्षेत्र में जाति एक प्रमुख तत्व है और पार्टी का टिकट देने तथा राजनीतिक समर्थन हासिल करने मे इसका खास तौर से खयाल रखा जाता है।

सरमन अहीरवार

सरमन अहीरवार 50 पार कर चुके हैं। वे चमार जाति के है। अपनी बिरादरी मे उनका बहुत सम्मान है। उनके एक बेटा और एक बेटी है। दोनों की शादी हो चुकी है। उनके पास 12 एकड़ जमीन है और कार्की गॉव मे वे सबसे अधिक गाये रखनेवाले दलित हैं। इससे पहले वे 15 वर्षो तक पंच रहे थे। वे कभी स्कूल नही गये, पर जिला साक्षरता अभियान मे भाग ले कर उन्होने हस्ताक्षर करना सीख लिया है। सरमन अहीरवार कांग्रेस के समर्थक हैं, इसलिए नोनेजु सिंह से उनका अच्छा सबध है।

घटना का विवरण

पंचायत चुनाव के दो महीने बाद कार्की गॉव के चार नौजवान—दयाराम यादव, लक्ष्मण यादव, भगीरथ यादव और हरिचरण तिवारी—सरमन अहीरवार को गॉव क मुख्य चौराहे पर ले गये। उससरपंच अहीरवार का टोला गॉंव से करीब एक किलोमीटर दूरी पर है। दयाराम मातादीन यादव का बेटा है जो उपसरपच के चुनाव में सरमन अहीरवार से हार गये थे। हरिचरण तिवारी कार्की के मुखिया ललित प्रसाद तिवारी का भाई है। इन चारो ने एक डडे से सरमन के दोनों हाथ बॉध दिये और उनके सिर पर गुड़ डाल दिया। थोड़ी देर में चीटियों ने सरमन को बुरी तरह काटना शुरू कर दिया। यही नहीं, उन्हे इस हालत में लगभग घटे भर तक गॉव मे घुमाया भी गया। असहाय और अपमानित सरमन को लगा कि उनका अत पास आ गया है। उन्हे बचाने के लिए कोई भी आगे नहीं आया। बाद मे एक बुजुर्ग ने डॉट-डपट कर नौजवानों को हटाया और सरमन को मुक्त किया। इसके बाद सरमन सरपच नोनेजु सिंह के पास पहुॅचे। अगले दिन नोनेजु उन्हें ले कर बडमहलेरा थाने पहुॅचे और प्राथमिकी दर्ज करायी। दोषी लोग पकडे गये। प्रशासन ने छतरपुर स्थित जिला उपन्यायाधीश की अदालत में मामला दायर किया। प्रशासन ने सरकारी वकील की सेवाएँ भी मुहैया करायी। नामजद अभियुक्तों ने वकील की फीस वगैरह पर 40 हजार रुपये खर्च किये।

कलक्टर ने हरिजन कल्याण विभाग के कोष से एक हजार रुपये का मुआवजा दिलवाया। लेकिन सरमन के हाथ में सिर्फ 800 रुपये ही आये। 200 रुपये अधिकारियों ने घूस में ले लिये।

सरमन अहीरवार के मॉग न करने पर भी कलक्टर ने उनकी सुरक्षा के लिए

तीन पुलिसवालो को तैनात कर दिया। ये लोग मददगार की जगह बोझ ही साबित हुए। ये तीनो ठाकुर, यादव और कुर्मी जातियो के थे। ये दो महीनो तक उनके घर मे रहे और सुरक्षा प्रदान करने की जगह परेशानी का कारण बने रहे। पुलिसवालो ने रहने की अच्छी जगह और भोजन की मॉग की। सरमन ने उन पर दो हजार रुपये खर्च किये। हर रोज वे सिपाहियो को ईधन, आटा और लकडियॉ देते थे। साथ ही, रोज पाव भर घी भी देते थे, जिसकी कीमत करीब 25 रुपये है। उनकी रोज-रोज की मॉगो से तग आ कर सरमन ने कलक्टर से उन्हें वापस बुला लेने के लिए कहा।

नोनेजु ने सोचा कि अगर विवाद जारी रहा तो उनकी लोकप्रियता और वोट घटेंगे। उन्होंने सरमन और अभियुक्तों के बीच मेल-मिलाप करा दिया। 12 अक्टूबर 1995 को यह करार हुआ और कोर्ट से मामला वापस ले लिया गया।

बुनियादी मुद्दे

अगर पिछडी जाति का उपसरपच अपने चुने जाने, काम करने और बचे रहने के लिए अगडी जाति के सरपच पर पूरी तरह आश्रित है, तो वह नयी पंचायती व्यवस्था में कैसे काम करेगा?

ग्राम पचायतों को अधिकार देने और औरतो तथा पिछडी जातियों के लिए स्थान सुरक्षित करने के बावजूद ऊँची जातिवालो का परपरागत दबदबा अब भी बरकरार है। गॉवो के मामलो में फैसले करने के समय ये समानातर व्यवस्था के रूप में काम करते हैं। गॉव के लोग अपने पारिवारिक या अन्य विवादो को ग्राम पंचायतों में ले जाने की जगह ऊँची जातियो के अगुआ लोगो के पास ही ले जाते हैं। निचले स्तर पर, मतदाताओ को अपने-अपने पक्ष में मोडने के लिए राष्ट्रीय पार्टियॉ भी जातीय विभाजन का उपयोग करती हैं। पचायत चुनाव मे उम्मीदवारो के चयन और उनके पक्ष में मतदान कराने मे ऊँची जातियो (ब्राह्मण/ठाकुर) का प्रभाव कार्की गॉव मे अभी भी जारी है।

तीन : दलित सदस्य की पिटाई

गॉव के बारे में : बर्बतपुर गॉव रायसेन जिले मे है। 1994 में चार गॉवों–खोआ, बोर्दा, साओतर और साओतर सोयासटी–को मिला कर बर्बतपुर पचायत का गठन हुआ। पहले ये सभी गॉव अब्दुलगज जनपद विकास मडल की चिकलोडकलॉं ग्राम पचायत मे शामिल थे। चिकलोडकलॉं के सरपंच का पद आदिवासियो के लिए सुरक्षित है। यहॉ बहु सख्या भी उन्ही की है। लेकिन बर्बतपुर गॉव में ठाकुर बहुमत मे हैं। उनके बाद चमारो और गोंडो का स्थान आता है।

परिवारों की संख्या : गॉव मे कुल 96 परिवार है। कुल आबादी 1200 हैं।

इनमें से 52 परिवार अगडी जातियों के, 23 अनुसूचित जातियो के, 11 पिछडी जातियो के और 10 आदिवासियो के है। अगडी जातियो मे ठाकुरो के 50 घर हैं और एक-एक घर ब्राह्मणो और देश बधुओ का है। हरिजनो में 20 घर जाटवो के और तीन घर भारोडो के हैं। पिछडो मे चार घर कुशवाहों के, तीन घर विश्वकर्माओं के, तीन घर अहीरों के और एक-एक नाइयों और कुम्हारों का है।

भूमि का वितरण : गॉव में सबसे ज्यादा जमीन ठाकुरो के पास है। एक ठाकुर परिवार के पास तो 70 एकड़ जमीन है। गॉव के 33 हरिजन और आदिवासी परिवारों मे से सिर्फ चार के पास जमीन है। ये लोग ठाकुरों के खेतों मे काम करते है। गॉव के पास ही जगल है। करीब-करीब सभी हरिजन परिवारो ने जगलो की जमीन पर नाजायज ढग से कब्जा किया हुआ है, जिस पर वे खेती करते है।

फसलें : इस इलाके में मुख्यत· गेहूँ, सोयाबीन, चना और धान पैदा होता है। सिचाई की कोई सुविधा नहीं है। खेतिहर मजदूरों को साल में मात्र दो या तीन महीने ही काम मिल पाता है। पुरुषो की दैनिक मजदूरी 25 रुपये और स्त्रियो की दैनिक मजदूरी 20 रुपये है और ये दोनों ही दरें मध्य प्रदेश सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी से काफी कम है।

शिक्षा : गॉंव मे एक प्राथमिक विद्यालय है। 1988 मे बना इसका भवन बुरी हालत मे है। छत नही है और दीवारें भी टूट गयी हैं। छात्रो के लिए बेंच तक नही है। वे खुले आसमान के नीचे जमीन पर बैठते है। भवन के अदर जाना उनके लिए सुरक्षित नहीं है। बच्चे अपनी कक्षा के हिसाब से अधिक उम्र के हैं। स्कूल मे 82 छात्र हैं और शिक्षक सिर्फ एक। जाति के हिसाब से छात्रो का बॅटवारा इस प्रकार है : ऊॅची जातियॉ : 41, पिछड़ी जातियॉ · 13, दलित 23 और आदिवासी : 5। कुल 44 लड़के और 38 लडकियॉ है।

घटनाक्रम

बर्बतपुर गॉव के ठाकुर और चमार जुआ खेलते हैं। कई बार खेल-खेल मे लडाई हो जाती है। दीवाली की रात जुआ खेलना तो रिवाज बन चुका है। 23 अक्टूबर 1995 को दीवाली की रात तीस पार के नौजवान धन सिह (दलित पच मनुलाल का भाई) और ठाकुर जाति के अर्जुन सिंह के बीच जुए के बाद लडाई हुई थी। धन सिंह ने गॅड़ासे से अर्जुन सिह पर वार किया। इससे वह बुरी तरह जख्मी हो गया। अर्जुन सिह ने चिकलोडकलॉ पुलिस चौकी में इसकी शिकायत दर्ज करायी। घटना के बाद धन सिह जगल में भाग गया। पुलिस ने उसकी तलाश की, लेकिन वह पकड में नहीं आया। लेकिन यह मालूम हुआ कि धन सिह का भाई मनुलाल जाटव उसे जगल में खाना पहुँचवाता है। धन सिंह के खिलाफ अब्दुलगंज थाने मे फोजदारी का मामला दर्ज हुआ था जो आज भी लंबित पडा है। उसके पास चार

एकड नाजायज जमीन भी है।

धन सिंह गॉव में बहुत बदनाम था। कहा जाता है कि गाँव की अनेक लडकियॉ ओर विवाहित औरते उसकी हवस का शिकार हो चुकीं थीं। एक बार वह 14 साल की एक ठाकुर लडकी (कालू बाई) को ले कर नागपुर भाग गया था। यह स्पष्ट नही है कि वह लड़की को भगा ले गया या लड़की के बाप ने उसे बेच दिया था। लडकी की सगाई कही और हो गयी थी। उससे पहले फरवरी 1995 में उसका पिता बाबूलाल सिंह अपने बडी बेटी सुनीता बाई को 10,000 रुपये मे बेच चुका था। इस सौदे के पहले उसकी शादी कररिया गॉव के गोपाल सिह के साथ हो चुकी थी। कररिया गॉव करीब सौ किलोमीटर दूर है।

शादी के कुछ महीने बाद ही सुनीता मायके वापस आ गयी थी। उसके पिता ने उसकी दूसरी शादी करायी और पाँच हजार की रकम ली। सोना-चॉदी के रूप मे यह पैसा शादी के खर्च वगैरह के लिए दिया जाता है। कई बार लडकी के घरवाले इस परंपरा का दुरुपयोग करते है। मायके आने के बाद जब सुनीता अपने पति के घर वापस नही लौटी, तो गोपाल सिंह ने स्थानीय थाने मे उसके गायब होने की रपट लिखवायी।

रायसेन जिले के कलक्टर डी एस राय ने साओतर सोसाइटी में 3 नवंबर 1995 को एक महिला जाग्रति शिविर लगाया। बर्बतपुर के पंच मनुलाल जाटव को भी इस शिविर मे बुलाया गया। बैठक दो बजे शुरू हुई। करीब 150 लोग इसमे शामिल हुए, जिनमें आधी औरतें थी। जब कलक्टर ने पचायत की समस्याओं के बारे मे पूछा तब अर्जुन सिह ने उन्हे एक अर्जी दी कि धन सिह ने मुझे मारा है। कलक्टर ने धन सिह के बारे मे पूछताछ की। थानेदार ने बताया कि धन सिह का भाई मनुलाल तो बैठक मे ही है। तब कलक्टर ने मनुलाल से उसके भाई का अता-पता पूछा। मनुलाल ने कहा, 'मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। मैंने अपने भाई का ठेका नहीं लिया है।' चिकलोडकलॉ के भाजपा कार्यकर्ता एस.एस. अहमद का कहना है कि मनुलाल का जवाब बहुत ही उजड्ड था। कलक्टर ने इसे दुर्व्यवहार माना। कहा जाता है कि उसने दारोगा से कहा, 'मारो साले को।'

कलक्टर के कहने पर पुलिस ने मनुलाल को निर्दयता से पीटना शुरू कर दिया। मनुलाल की पिटाई तब जा कर रुकी जब चिकलोडकलॉं गॉंव की जनपद सदस्य शाति बाई ने कलक्टर को याद दिलाया कि मनुलाल पंचायत का निर्वाचित सदस्य है, और उसे न पीटने का अनुरोध किया।

पिटाई के कारण मनुलाल का दाहिना हाथ टूट गया, जिससे वह अपने रोजमर्रे के काम-काज से भी लाचार हो गया। चिकलोड़कलॉं पुलिस चौकी के लोग उसे कहीं बाहर नही जाने देते थे। चार दिन बाद भारतीय जनता पार्टी के स्थानीय सांसद शिवराम सिह चौहान को इस घटना की जानकारी मिली। वे मनुलाल को अब्दुलगंज थाने

मे ले गये और प्राथमिकी दर्ज करायी। लेकिन कलक्टर का नाम आने से पुलिसवाले प्राथमिकी दर्ज करने मे आना-कानी कर रहे थे। इसके बाद मनुलाल ने मानवाधिकार आयोग में भी शिकायत दर्ज करायी।

मनुलाल कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं और कांग्रेस के टिकट पर ही पंच का चुनाव जीता था। पिटाई और अपमान के बाद उनकी मदद के लिए भारतीय जनता पार्टी के लोग ही आगे आये, इसलिए वे अब भारतीय जनता पार्टी के समर्थक हो गये है। चिकलोडकलॉ गॉव के सुरेश कुशवाहा कहते है, 'भारतीय जनता पार्टी के लोग खुद को दलितों का सरक्षक दिखाने के लिए मनुलाल का समर्थन कर रहे हैं। यहॉ दलित परपरागत रूप से काग्रेस के वोटर रहे है।''

मनुलाल की बीवी लबे समय से बीमार हैं। उनकी 17 साल की बेटी की शादी हो चुकी है। उनका बेटा सिर्फ 12 साल का है। वे कहते है कि उनकी आमदनी का और कोई जरिया नहीं है। कलक्टर से लडने की शक्ति भी उनमें नहीं है। बर्बतपुर के दलितो का कहना है कि जिला, तहसील और प्रखंड कार्यालयों में सरकारी कर्मचारी उन्हे परेशान करते है। जगल की जमीन का इस्तेमाल करने पर तहसीलदार जुर्माना लगाता है।

मानवाधिकार आयोग में मामला जाने के बाद कलक्टर ने वर्बतपुर और चिकलोडकलॉ गॉव के लोगों से कहा कि वे मनुलाल के पक्ष मे गवाही न दे। इस मामले मे कलक्टर के शामिल होने के कारण लोग काफी डरे हुए हैं। मनुलाल के पास दो एकड़ नाजायज जमीन है। उनके खिलाफ अब्दुलगंज थाने से पहले से ही दो मुकदमे दर्ज है। एक मुकदमा जमीन को ले कर है। दूसरा सार्वजनिक स्थान पर शराब पीने का है। मनुलाल कहते हैं कि चिकलोडकलॉ चौकी के पुलिसवालों ने दो साल पहले इसी मामले मे उनसे 250 रुपये ऐठ लिये थे।

चार : सरपंच के साथ सामूहिक बलात्कार

घटना का संक्षिप्त विवरण

समाचार पत्रो मे प्रकाशित खबरों के अनुसार, मध्य प्रदेश के खंडवा जिले की गुज्जरखेडी ग्राम पंचायत की पिछड़ी जाति की महिला सरपच कुसुम बाई के साथ 22 अगस्त 1994 की रात को उनके पति की उपस्थिति मे चार लोगो ने बलात्कार किया।[4] इन चारों लोगो—मानक, देवमन, नारायण और जगदीश—ने सरपच के पति घनश्याम को धमकी दी कि अगर उसने विरोध किया तो वे उसे मार डालेगे। बाद मे उन्होंने इन दोनो को इस धमकी के साथ छोड दिया कि अगर मामले की रिपोर्ट थाने मे लिखवायी तो बहुत बुरा होगा। कुसुम बाई ने थाने मे रिपोर्ट नहीं लिखवायी। लेकिन इस घटना ने उन्हें बुरी तरह झकझोर दिया और दो दिन बाद 24 अगस्त 1994 को उन्होंने जहर खा लिया। सौभाग्य से वे बच गयीं। अस्पताल में अपने बयान मे उन्होंने कहा कि इस काड के बाद वे खुद को किसी के सामने जाने लायक नही

माननी थीं, इसीलिए उन्होंने जहर खा लिया।

गॉव के बारे में : गुज्जरखेड़ी गॉव मध्य प्रदेश के पूर्वी जिले में है। यह जिला मुख्यालय खडवा से 70 किलोमीटर की दूरी पर है। पंचायत में तीन गॉव है--गुज्जरखेडी, नदियाखेडी, और जूनापानी। यह पुनासा जनपद पचायत का हिस्सा है। पुनासा मे 74 ग्राम पचायत और 24 वार्ड है।

गुज्जरखेडी ग्राम पंचायत मे 249 घर है। इनमे से 157 घर गुज्जरखेड़ी गॉव मे, 54 नंदियाखेड़ी मे और 38 जूनापानी मे है। इन घरों का जाति/कबीले के आधार पर विवरण इस प्रकार है : पिछड़े 126 घर (54.61 फीसदी), आदिवासी 64 घर (25 70 फीसदी), दलित 37 घर (14 85 फीसदी) और अन्य 12 घर (4 81 फीसदी)। इस प्रकार गुज्जरखेडी में पिछडो का बहुमत है। उनके बाद आदिवासियो ओर दलितो का नंबर आता है। पिछडो मे भी गुज्जरो का बहुमत है। उनके बाद बजारो का नबर है। आदिवासियो मे मुख्यत लोध, कोर्कू, भील, नाहल और लोटा है। पचायन क्षेत्र मे सबसे ज्यादा जमीन राजपूतो और गुज्जरो के पास है। गुज्जरखेडी गॉव की आबादी 1200 है। इसमें 86 घर पिछड़ो के, 30 घर आदिवासियो के, 37 घर दलितो के और चार घर दूसरी जातियो के है। 1994 के पचायत चुनाव मे गुज्जरखेडी के सरपच का पद पिछडी जाति की महिला के लिए आरक्षित था।

खेती . विभिन्न जातियो के बीच जमीन का वितरण असमान है। दलितों ओर आदिवासियो के 67 परिवारो मे से 49 भूमिहीन है। शेष 18 परिवारो के पास भी एक या दो एकड़ से अधिक जमीन नही है। इसलिए दलित और आदिवासी परिवारो के लोग खेतिहर मजदूरो के रूप में काम करते है। कुछ का पूरा खर्च इसी से चलता हे, तो कुछ अपनी खेती के साथ-साथ मजदूरी करके गुजारा करते हैं।

खेतिहर मजदूर को मात्र 20 रुपये दिहाडी दी जाती है, जो सरकार द्वारा तय दर से काफी कम है। साल में बस चार महीने ही काम मिल पाता है। साल भर एक ही मालिक का काम करनेवाले मजदूरों (नौकरो) को साल मे चार हजार रुपये ओर रहने की जगह दी जाती है। 86 पिछडे परिवारो मे से पॉच परिवारों के पास पॉच एकड़ से भी कम जमीन है। 10 से 15 परिवार ऐसे है जिनके पास 40-50 एकड जमीन है। यहॉ के पूर्व-मालगुजार राजपूत परिवार के पास 350 एकड से ज्यादा जमीन है। इस परिवार के पास एक ट्रैक्टर भी है। गॉव में कपास, गेहूॅ, अरहर, मसूर ओर चना पैदा होते है। अमीर किसानो के पास अपनी बोरिंग है और मुख्यत नलकूपो से ही सिचाई होती है।

शिक्षा : गॉव मे एक प्राथमिक और एक माध्यमिक स्कूल है, जिनमें 199 छात्र है।

1994 का पंचायत चुनाव

1994 के पंचायत चुनाव में पिछड़ी जाति की चार महिलाओं ने सरपंच पद का चुनाव लड़ा था। दो महिलाएं गुज्जरखेड़ी की थीं, जब कि नदियाखेड़ी और जूनापानी की एक-एक महिला ने चुनाव लड़ा था। गुज्जरखेड़ी की कुसुम बाई ने चुनाव जीता। उन्हें भारतीय जनता पार्टी के स्थानीय विधायक राणा रघुराज सिंह तोमर का समर्थन प्राप्त था।

कुसुम बाई

कुसुम बाई की उम्र 30 वर्ष से कुछ ही अधिक है। उनके परिवार के पास 25 एकड़ जमीन है। 15 वर्ष की उम्र में ही उनकी शादी हो गयी थी। उनके एक बेटा और एक बेटी है। कुसुम बाई अनपढ़ है, पर उन्होंने स्कूल में पढ़ रही अपनी बेटी से दस्तखत करना सीख लिया है।

सामाजिक परिदृश्य

आज भी निमाड़ क्षेत्र के गुज्जरों में बाल विवाह आम है। माँ-बाप बच्चों के जन्म के समय ही उनका रिश्ता तय कर देते हैं। इसे सगाई कहते है। इसमें लड़केवाले कपड़े-गहने जैसी वस्तुएँ लड़की के यहाँ भेजते हैं। जब लड़की 14 या 15 वर्ष की हो जाती है तब शादी की जाती है। कई बार तो लड़की की शादी मासिक धर्म शुरू होने से पहले ही कर दी जाती है। आम तौर पर लड़का और लड़की लगभग बराबर उम्र के होते है। गुज्जरों के रिवाज के अनुसार शादी के बाद कुछ महीने पति के घर रहने के बाद लड़की मायके लौटती है। शादी के शुरुआती वर्षों में दूल्हा-दुल्हन दोनों को कई समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। लड़का इतना बड़ा नहीं होता कि वह दुनियादारी के मामले सुलझा सके। दूसरी ओर, कई बार लड़कियाँ मायके में रहते हुए किसी और मर्द से संपर्क बना लेती हैं, जो अकसर उनकी बिरादरी का या करीब का रिश्तेदार होता है। अनेक मामलों में नजदीकी रिश्तेदार उनका शारीरिक शोषण भी करते है। यदि लड़की के ससुरालवालों को इस रिश्ते की भनक लग जाती है, तो वे उसे अपने घर नहीं ले जाते। कई बार तो ऐसी लड़की के माँ-बाप ही उसे ससुराल नहीं जाने देते। वे उसकी दूसरी शादी करा देते हैं, जिसे 'नात्रा' कहा जाता है। रिवाज के अनुसार लड़की के माँ-बाप दूल्हे के घरवालों से 'पैसे-तोहफे' लेते हैं। बाज मामलों में तो माँ-बाप अपनी बेटियों के आठ-आठ, नौ-नौ 'नात्रे' कराते हैं। अमीर गुज्जर मुखिया और नौजवान गरीब विवाहित लड़कियों का शारीरिक और मानसिक शोषण भी करते हैं। कई बार वे इन लड़कियों को ससुराल जाने ही नहीं देते। स्थानीय सरदार उनका नात्रा करा देते है और कुछ रकम दिला देते हैं। एक

ही लड़की के लिए दो-दो, तीन-तीन लडकों से रकम ले ली जाती है। यह पैसा वे लडकी के माँ-बाप को भी नही देते। जिन परिवारो में पाँच-छह लड़कियाँ हों और खर्च चलाने लायक जमीन भी न हो, उन परिवारों के मुखिया नात्रा का उपयोग पैसा कमाने के लिए भी करते है। रकम कितनी होगी, यह लडकी के घरवाले और बिरादरी के बडे-बुजुर्ग तय करते हैं। नात्रा मे कानूनी तलाक की जरूरत नही होती। कई बार तो लडकी पहली शादी से हुए बच्चे भी अपने साथ ले जाती है। इस तरह इलाके की गुज्जर औरतों का शोषण उनके ससुरालवाले, घरवाले, रिश्तेदार और बिरादरीवाले सभी करते हैं।

घटना

सरपच कुसुम बाई का भाई गोविंदा 17 वर्षीय विवाहित गुज्जर लडकी बसता बाई को चाहता था। वह गुज्जरखेडी मे ही अपने मायके मे रहती थी। पचायत चुनाव के दो महीने बाद बसंता बाई पास के पश्चिम निमाड़ जिले के सनाबाद गाँव में अपनी बडी बहन के यहाँ गयी। वहाँ से गोविंदा उसे भगा कर इंदौर ले गया। तीन दिन बाद उसकी माँ ने सनाबाद थाने मे रपट दर्ज करायी। दो महीने बाद बसता बाइ सनाबाद लौट आयी। कुसुम बाई से बलात्कार करनेवाले नारायण डोडे, मानक पटेल, जगदीश साद और देवचन साद ने कुसुम बाई और उनके पति घनश्याम पटेल से कहा कि बसता बाई दो महीने तक गोविंदा के साथ रही है, उसके ससुरालवाले अब उसे मंजूर नही करेंगे; इसलिए गोविदा उसकी माँ को 15 हजार रुपये दे। साथ ही, गोविदा ने बसंता बाई के चाँदी के जो गहने बेच डाले है, उन्हे वह फिर से खरीद कर दे। कुसुम बाई इतनी रकम देने को तैयार नही थी। दोनो पक्षों ने अपनी जाति के सरदार और निमाड़खेड़ी इलाके के सम्मानित कांग्रेसी नेता नारायण पटेल से राय-मशविरा करने का फैसला किया।

22 अगस्त 1994 की सुबह तीन मोटरसाइकिलो पर सवार हो कर कुसुम बाई, उनके पति, मानक पटेल, नारायण डोडे, जगदीश साद और देवचन साद सनाबाद रवाना हुए। वे चाहते थे कि बसता बाई की माँ द्वारा सनाबाद थाने में दायर शिकायत वापस ले ली जाये और कुसुम बाई द्वारा दी जानेवाली रकम का फैसला हो जाये।

अपनी बिरादरी के बड़े नेता से बातचीत (क्या बात हुई, यह बताने को कोई भी तैयार नहीं है) के बाद रात 8.30 बजे सभी लोग गुज्जरखेडी रवाना हुए। नारायण डोडे और मानक पटेल नशे में थे। घनश्याम पटेल की मोटरसाइकिल पर उनकी पत्नी कुसुम बाई बैठी थी। अतुट गाँव के पास नारायण डोडे और मानक पटेल ने घनश्याम पटेल से मोटरसाइकिल रोकने को कहा। फिर चारो ने उनके सामने ही उनकी पत्नी कुसुम बाई के साथ बलात्कार किया और धमकी दी कि अगर उन्होंने पुलिस को खबर की, तो उनकी हत्या कर दी जायेगी। नारायण डोडे कुसुम बाई का जीजा है

और मानक पटेल उनका चाचा। जगदीश और देवचन पडोसी है। ये सभी उनकी ही जाति के है। सरपच के चुनाव में कुसुम बाई ने गुज्जरखेड़ी गॉव की ही राधी बाई को हराया था। जगदीश राधी बाई का पति है और उसने इस बलात्कार द्वारा अपनी पत्नी की हार का बदला लिया। देवसन कुसुम बाई से नाराज था, क्योकि उसका भाई ही उसकी भॉजी बसता बाई के साथ भागा था। मानक पटेल काग्रेसी नेता हैं और खंडवा जिला किसान कांग्रेस के सचिव हैं। वे खंडवा जिला परिषद की उपप्रमुख मारू बाई का भतीजा है।

घटना के दो दिन बाद मानक और नारायण ने कुसुम बाई के साथ बलात्कार की खबर सब जगह फैला दी। अपमान न सह पाने के कारण कुसुम बाई ने जहर खा कर आत्महत्या करने की कोशिश की, पर वे बच गयीं। उनकी हालत गभीर थी। पूर्व-सरपंच जैनेंद्र सिंह तोमर उन्हे ले कर पुनासा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र गये। डॉक्टरों ने उन्हे खंडवा ले जाने की सलाह दी। आत्महत्या की कोशिश के बारे मे कुसुम बाई ने कहा, 'अपमान न सह सकने के कारण मैंने जहर खाया।' घनश्याम ने पुरासा थाने मे मामला दर्ज कराया। नारायण, जगदीश और देवचन पकड़े गये। उन्हें दो महीने खडवा जेल में रखा गया। मुख्य अभियुक्त को नहीं पकड़ा गया है। स्पष्ट है कि कुसुम बाई ने मॉंग के अनुसार 15 हजार रुपये देने से इनकार किया, इसलिए उन्हे सबक सिखाने के लिए यह सब किया गया।

बदली नहीं है तस्वीर

1946 मे एशियन रिलेशंस कांफ्रेस में दिल्ली की ओर इशारा करते हुए महात्मा गाधी ने कहा था, 'आप लोग दिल्ली को देख रहे हैं—यह भारत नहीं है। गॉवों में जाइए, वही भारत है। वहीं भारत की आत्मा निवास करती है।'[5]

लेकिन आज भारत की आत्मा की क्या स्थिति है? वह आहत, दमित और तनावग्रस्त है।

हर ओर शोषण और गरीबी है, उत्पादन के साधनो पर मुट्ठी भर लोगो का कब्जा है, शक्तिशाली लोगों पर कोई अकुश नही है। सवर्णो के अधिकारों को चुनौती देनेवाला कोई नही है। लडकियो को सताया जा रहा है तथा शादी से पहले और बाद में उनका यौन शोषण होता है। इन सब चीजों ने भारत की आत्मा को रौंद डाला है। नयी पंचायते और कुछ नहीं, बल्कि आज के गॉव में फैली हुई गंदगी और उसके सामाजिक जीवन में आयी गिरावट को ही प्रतिबिंबित करती है।

यथास्थिति मे किसी भी बदलाव का प्रतिरोध होता है और कई बार तो हिंसक तरीको से भी परहेज नहीं किया जाता। दलितों, आदिवासियों और औरतो के लिए आरक्षण को नियम के स्तर पर तो स्वीकार कर लिया जाता है, पर आचरण के स्तर पर नहीं। सारी चोट समाज के कमजोर वर्ग के हिस्से पडती है।

पॉच दशक पहले डॉ. आबेडकर ने जो बाते कही थी, वे आज भी उतनी ही सही है। इस बीच बस इतना हुआ है कि सरकार ने सामाजिक परिवर्तन के लिए कुछ कानून बना कर हस्तक्षेप किया है। इस दिशा मे नवीनतम कदम हैं संविधान का 73वॉं संशोधन और फिर राज्यो द्वारा तदनुरूप बनाये गये अधिनियम। मध्य प्रदेश की पचायतों की घटनाएँ सामाजिक समर्थन की अनुपस्थिति मे सरकारी हस्तक्षेप की सीमाओ और सभावनाओ के बारे में बताती हैं। दूसरे शब्दो मे, अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियों, पिछडी जातियो और औरतों के लिए आरक्षण की व्यवस्था सिर्फ एक स्पृहणीय आदर्श हैं। अनेक विधायी कदमो से सरकार ने समाज के तौर-तरीको को बदलने की लगातार कोशिश की है, पर समाज सुधार, भूमि सुधार या शिक्षा जैसे किसी भी क्षेत्र में दीर्घकालिक असरवाले बडे बदलाव नहीं हुए हे। यहॉ जिन जिलों से जुड़ी घटनाओ का विस्तृत अध्ययन किया गया है, उनमें साक्षरता का औसत स्तर मात्र 33 फीसदी है। औरतो मे साक्षरता की दर तो 11.5 फीसदी ही है।

कानून की जरूरतो को पूरा करने के लिए लोग कठपुतली उम्मीदवार सामने कर देते हैं, जब कि वास्तविक नियंत्रण मजबूत जातियों और जमींदारो के पास ही रहना है। जो वार्ड या पंचायत सीटें स्त्रियो के लिए आरक्षित हैं, वहॉ मुख्य भूमिका पुरुष ही निभाते हैं। कमजोर लोग संवैधानिक अधिकारो का फायदा उठा कर खुद को सक्षम बनाने में सफल नहीं हो पा रहे है। इस अध्ययन में दिये गये मामलो मे, अपने अधिकारो का प्रयोग करने मे अशक्त लोगों की असमर्थता ही सभी समस्याओ की जड है।

इन अध्ययनो से पता चलता है कि स्थानीय शासन मे न तो सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों का सम्मान है और न ही मानवता का। इन दो अध्ययनो मे महिलाओ से जुडे मामलों में यह बात खास तौर से सामने आती है। निर्वाचित प्रतिनिधि शक्तिहीन हे ओर निर्वाचित सदस्यो के सम्मान की रक्षा के लिए तैनात अधिकारी स्थानीय राजनीति ओर सत्ता के खेल मे लिप्त। सभी मामलो मे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के दर्शन होते हैं जो निजी और सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति के सम्मान की धज्जियॉ उडाती है।

इस निराशाजनक स्थिति मे भी आशा की एकमात्र किरण यही है कि जो सभावनाएँ अभी तक परदे के पीछे ही छुपी थी, पचायत व्यवस्था ने उन्हे सामने ला दिया है। अब कुछ भी गोपनीय नही रह गया है। पचायत जोड़-तोड की राजनीति का अखाड़ा ही नही, सामाजिक-राजनीतिक मुद्दो पर खुली लड़ाई और उठा-पटक का लोकतांत्रिक मंच भी है। ऐसा मंच पहली बार मिला है और अब इसे संवैधानिक तथा कानूनी समर्थन भी है।

ऐसे मे राजनीतिक पार्टियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। सर्वानुमति

(जिसका व्यावहारिक अर्थ ताकतवर की बात मान लेना ही था) की पुरानी व्यवस्था की जगह अब लोगों को यह हक मिला है कि वे पचायत के मामलो की पूरी जानकारी हासिल करें और जहाँ सदेह हो वहाँ सवाल उठाये। एक राजनीतिक पार्टी शोषण का समर्थन करती है, तो दूसरी पार्टी शोषित की मददगार बन जाती है। स्थानीय स्तर पर राज्य स्तरीय या राष्ट्रीय स्तरीय विचारधारा का कोई खास महत्व नही है। वर्तमान स्थिति मे तो जाति या परिवार की पुरानी तानाशाही प्रणाली को चुनौती देने के लिए पचायत चुनाव मे राजनीतिक दलों की खुली भागीदारी ही सबसे कारगर चीज है।

मीडिया के फैलाव और संचार तकनीक की उन्नति ने गॉवो को तेजी से नयी दुनिया से जोड़ा है। दूर-दराज के गाँवों की घटनाएँ भी एकदम राज्य और देश के स्तर पर उछल जाती हैं। नयी पचायत व्यवस्था ने, अपनी सारी कमजोरियो के बावजूद, गाँव को एक बृहत्तर सामाजिक दायरे में ला खड़ा किया है।

मध्य प्रदेश की इन चार घटनाओं के अध्ययन मे ये नकारात्मक और सकारात्मक दोनों ही बातें साफ दिखाई देती हैं। मध्य प्रदेश जातिवाद से ग्रस्त और पुरुष-सत्तात्मक पिछडा प्रदेश होते हुए भी जागरूक समाज है। हर पॉच साल बाद चुनाव होने से इन पिछडे इलाकों मे बदलाव की यह प्रक्रिया तेज होगी, पर शोषण-चक्र की प्रक्रिया बदलने में वक्त लग सकता है।

(इस लेख के सह-लेखक रमेश सी नायक है।)

संदर्भ

1 *पचायती राज एज द बेसिस ऑफ इडियन पॉलिटी एन एक्स्प्लोरेशन इनटु दी प्रासीडिंग्स ऑफ द कास्टीट्युएंट असेबली,* नयी दिल्ली, अवार्ड, 1992, पृष्ठ 24

2. *पायनियर,* नयी दिल्ली, 30 नवबर 1995, साथ ही देखें, *भास्कर,* बिलासपुर, 3 जनवरी 1996

3 अग्रवाल बधुओं में से एक ने एक आदिवासी का मकान किराये पर लिया। वहाँ परचून की दुकान खोली। दो साल बाद उस आदिवासी को बहुत कम पैसे दे कर उसके घर पर कब्जा कर लिया। इसके बाद उस आदिवासी ने वेपट्टा जमीन पर एक और मकान बनाया।

4 'महिला सरपच के साथ बलात्कार? विधान सभा में भारी हगामा', *स्वदेश,* इदौर, 27 अगस्त 1994

5 'महिला सरपच के साथ दुष्कृत्य—आरोपियों पर सख्ती होगी। भाजपा द्वारा सरकार पर आरोपियो को बचाने का आरोप।' *नई दुनिया,* इदौर, 27 अगस्त, 1994

6 संविधान सभा मे बहस के दौरान एल कृष्णस्वामी भारती द्वारा उद्धृत, 22 नवबर 1948

17

पंचायतों के बगैर गुजरात

भूकप के बाद मीडिया मे जब चारो तरफ केंद्र, राज्य सरकार, सेना, नौकरशाही तथा गैरसरकारी स्वयंसेवी सस्थाओं द्वारा किये जा रहे प्रयासो की चर्चा हो रही थी, उस समय पंचायतो का कही जिक्र तक नही था। आज किसी को भी इसमे लेश मात्र भी सदेह नही है कि स्वयसेवी संस्थाओं तथा सेना के अलावा पीडित नागरिको को तत्काल सहायता मुहैया कराने में अन्य सभी संस्थाएँ पूरी तरह विफल रहीं। इस परिदृश्य से पंचायतें, खासकर ग्राम पंचायते, ओझल ही रही और इसका एकमात्र कारण राज्य सरकारो का राजनीतिक खेल है—राज्य के नेताओ का, विशेषकर सत्तारूढ राजनीतिक दल के नेताओं का। गुजरात में पचायते यदि वास्तव में क्रियाशील और प्रभावकारी होतीं तो निस्सदेह इस गभीर आपदा के समय मे वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती। अपनी जिम्मेदारी से बच कर चुपचाप बैठी नही होती।

कानून के मुताबिक गुजरात में 13,316 ग्राम पंचायतें, 210 तालुक पंचायते तथा 25 जिला पंचायतें होनी चाहिए। सामान्य स्थिति में इन तीनो स्तरों पर कुल मिला कर लगभग एक लाख तीस हजार निर्वाचित पचायत सदस्य होने चाहिए। किंतु आज राज्य का प्रजातात्रिक ढॉचा एव स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ऐसी इमारत है, जिसकी नीव ही नदारद है।

गुजरात में त्रिस्तरीय पचायतो का कार्यकाल मई-जून 2000 मे पूरा हो गया था। संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि प्रत्येक पंचायत का कार्यकाल पॉच वर्ष का होगा तथा पाँच वर्ष की यह अवधि पंचायत की प्रथम बैठक से आरभ होगी। नयी पंचायतो के गठन के लिए पॉच वर्ष की यह अवधि के पूरा होने से पूर्व ही चुनाव हो जाने चाहिए। किंतु सवैधानिक प्रावधानों की उपेक्षा करते हुए और एक अनोखे तर्क का सहारा ले कर गुजरात सरकार ने केवल जिला एवं तालुक पंचायतों के चुनाव गत वर्ष (2000) सितंबर मे करवाये—वह भी सवैधानिक रूप से निश्चित

तिथि से छह माह के बाद।

जिला, तालुक एवं ग्राम पंचायतो को एक एकीकृत इकाई के रूप मे काय करना चाहिए। एक की भी अनुपस्थिति में दूसरा सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकता। सितंबर 2000 मे केवल जिला एवं तालुक पंचायतो के चुनाव करवा कर राज्य सरकार ने सविधान की आत्मा और शब्दो का हनन किया। उस समय कहा गया कि ग्राम पचायतो के स्थगित चुनाव दिसंबर मे होगे। यह पहला आघात था। दूसरा आघात तब लगा जब सितबर में ग्राम पचायतों के चुनावो को एक बार पुन स्थगित कर दिया गया। कारण यह बताया गया कि सूखे की स्थिति जारी रहने के कारण चुनाव करवाना सभव नहीं है। बड़ी ही आसानी से इस तथ्य की उपेक्षा कर दी गयी कि तीनो पचायतों के लिए मतदाता सूचियाँ एक ही थी। यदि कोई मतदाता सूखे के कारण ग्राम पंचायत के लिए मतदान नहीं कर सकता, तो वही मतदाता उसी परिस्थिति में जिला एवं तालुक पचायत के लिए मतदान कैसे कर सकता था? स्पष्ट है कि गुजरात सरकार पचायत चुनावों से बचना चाहती थी। गुजरात सरकार द्वारा केवल जिला एव तालुक पचायतों का चुनाव करवाने से आज ग्राम पचायतो पर छोटे अधिकारियों एवं क्लर्को का वर्चस्व हो गया है। गुजरात की जनता अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने के लिए कितनी बेताब थी, इसका पता जिला एव तालुक पचायत चुनावों के दौरान हुए भारी मतदान से लगाया जा सकता है। जिला पचायतो के लिए 73 51 प्रतिशत मतदान हुआ तथा तालुक पचायतों के लिए 73.39 प्रतिशत। मेहसाना जिले मे महिलाओ ने बढ़-चढ कर भाग लिया। ऐसी स्थिति में हम यह कैसे कह सकते हैं कि सूखे के कारण मतदाता चुनाव प्रक्रिया में भाग नही ले सकते थे?

पूरा देश जानता है कि ग्राम पंचायतों के चुनाव टालने का कारण सूखा नही, राजनीतिक स्वार्थ था। जिला एवं तालुक पचायतों मे गुजरात के सत्तारूढ राजनीतिक दल को मुँह की खानी पडी थी और उसमे दुबारा जनता के सामने जाने की हिम्मत बाकी नहीं थी।

24 सितंबर 2000 को संपन्न हुए 210 तालुक पंचायतों तथा 25 मे से 23 जिला पचायतो के चुनावो मे कांग्रेस दल को 22 जिला पंचायतो मे जीत हासिल हुई (1995 मे काग्रेस केवल डॉग जिले में ही जीती थी)। अधिकाश तालुक पंचायतो मे भी काग्रेस ही छायी रही। छह तालुक पंचायतों मे भाजपा एक भी सीट हासिल नही कर सकी। क्या यह गुजरात सरकार को उसकी अलोकतात्रिक कार्य पद्धति के लिए दंड नहीं था? अब समय आ गया है कि हमारे राजनेता यह जान लें कि सरकार के तीसरे स्तर के चुनाव सत्तारूढ़ दल की इच्छा और मनमानी का इतजार करते नहीं रह सकते। राज्य सरकारों को सविधान का पालन करना ही होगा।

6 नवबर को ग्राम पचायत चुनावों को मुलतवी करने के लिए गुजरात सरकार

ने जब अध्यादेश जारी किया, तब हमने केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री श्री वेंकैया नायडू को पत्र लिखा था कि गुजरात सरकार ने सूखा और लोकतत्र दोनों का ही मखौल उड़ाया है। क्या अमर्त्य सेन ने इसे एक स्वयसिद्ध सत्य नही बना दिया है कि सूखे और अकाल की सबसे अच्छी दवा प्रजातंत्र है? वैसे भी, ग्राम पचायतें हर हाल मे सूखा, भूकप अथवा ऐसी ही किसी आपदा से निबटने के लिए छोटे सरकारी कर्मचारियो से बेहतर हैं। किंतु गुजरात की जनता से उनकी ग्राम पंचायते छीन ली गयी है। ग्राम पचायते ही एक मात्र ऐसे प्रजातांत्रिक निकाय है, जहाँ एक आम ग्रामवासी की पहुँच है।

गुजरात में ग्राम पचायत चुनावो को स्थगित करना वस्तुत: गहराई से जडे जमाये हुए एक ऐसी बीमारी का लक्षण है जिसने भारतीय राज्य की व्यवस्था को अरसे से जकड़ रखा है। तिहत्तरवे सविधान संशोधन से पूर्व बलवंतराय मेहता समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के अनुरूप ढली पचायतो की अनेक उपलब्धियाँ थी—बहुत हद तक सफलतापूर्वक चलाये गये परिवार नियोजन कार्यक्रम, ग्रामीण विकास, वन विकास, आवास स्थलो का आवटन, कमजोर वर्गो के लिए मकानो का निर्माण, सूखा एव बाढ के दौरान किये गये सहायता कार्य तथा विकेंद्रीकरण की दिशा मे राज्य का प्रशसनीय रिकॉर्ड। यह सब उस समय हुआ, जब पडोसी राज्य महाराष्ट्र ने जिला विकास एव योजना परिषदों का गठन किया, जिसमे जिला परिषदों की स्वायत्तता का हनन निहित था। लेकिन अदूरदर्शी राजनीतिज्ञो तथा नौकरशाही ने योजनाबद्ध तरीके से पंचायतों को कमजोर करना शुरू कर दिया। ग्राम सभाएँ निष्क्रिय हो गयीं, न्याय पचायते अक्रिय। पचायतो के पास नियामक शक्तियाँ नहीं थीं और थी भी तो बहुत ही मामूली। हॉ, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डीआरडीए) और जिला योजना बोर्ड जरूर गठित किये गये और इन्हें बेहद ताकतवर बना दिया गया। इन सस्थाओं मे कलक्टरो तथा अन्य सरकारी अधिकारियों का प्रभुत्व था। इस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेज द्वारा किये गये एक अध्ययन में प्रवीन एन. शाह ने कहा हे कि जमीनी स्तर की भागीदारी के केद्र बिंदु के रूप मे अथवा प्रजातान्त्रिक विकेंद्रीकरण के रूप में पंचायतों की आत्मा क्षीण हो चुकी थी।

1995 के बाद पचायतो मे गिरावट की गति तीव्र हो गयी, क्योंकि उसी समय से गुजरात की राजनीतिक सस्कृति में क्षत्रिय, हरिजन, आदिवासी और मुसलमान (खाम) के स्थान पर उच्च जातियो का प्रभुत्व बढ़ने लगा था।

पचायतो की बदतर होती स्थिति निम्न तथ्यो से स्पष्ट है : (1) संसद तथा विधान सभा सदस्यों का पंचायतो पर प्रभुत्व . प्रतिवर्ष विधान सभा सदस्य 20 लाख रुपये तथा संसद सदस्य दो करोड रुपये की राशि विकास कार्यो के लिए स्वीकृत कर सकते है; और (2) राज्य के विभागों के अंग के रूप मे पचायतों के कार्यों की सख्या कम करना तथा उन्हें सरकारी विभागो द्वारा संचालित प्रकल्पो को कार्यान्वित

करनेवाली एजेंसी बना देना। (98 प्रतिशत व्यय इसी प्रकार के अनुदानों के पैसे से होता है), उन प्रकल्पों को, जो जनता एव क्षेत्र की जरूरतो को पूरा करते है, कम करना।

वैधानिक एव सामाजिक दायित्वो के निर्वाह के लिए पंचायतो को न तो प्रशासनिक सहयोग मिलता है, न ही उन्हें कार्यकारी और वित्तीय स्वायत्तता दी जाती हे जो स्व-शासन का अतरग हिस्सा है, विकेंद्रित जिला योजना के प्रावधानो का ध्यान नहीं रखा जाता; राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को पेश करने तथा उनके क्रियान्वयन में देरी की जाती है जब कि आयोग द्वारा प्रस्तावित सुझाव भी आधे-अधूरे मन से दिये जाते हैं। त्रिस्तरीय पचायतो को आवयविक रूप से जोड़ने तथा उन्हें सुझाव देने के उद्देश्य से गठित राज्य पचायत परिषद कुल मिला कर निष्क्रिय ही रही है। यद्यपि पचायत (अनुसूचित क्षेत्रो तक विस्तार) अधिनियम, 1996 के प्रावधानो को गुजरात पंचायत अधिनियम, 1998 मे शामिल कर दिया गया था, किंतु लाइसेंस देने तथा लघु खनिजो वाली खदानो को लीज पर देने का अधिकार पंचायतों के पास नही है। यही नहीं, ग्राम सभा के स्थान पर एक तालुक स्तरीय निकाय को सत्ता का केंद्र बना दिया गया है। आज तक राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों में पचायत निकायो के चुनाव नहीं हुए है।

राज्य के नेताओ एव नौकरशाहो का कहना है कि स्थानीय निकायो को सत्ता न सौपने का कारण यह है कि शहरी निकाय और खासकर पचायतें अक्षम, अयोग्य तथा भ्रष्ट है। 26 जनवरी को समूचे राज्य और जनता को हिला देनेवाली प्राकृतिक आपदा ने सपूर्ण विश्व को बता दिया है कि कौन अक्षम, अयोग्य और भ्रष्ट हे। भूकप से 10 जिले गभीर रूप से प्रभावित हुए हैं—अहमदाबाद, भावनगर, जामनगर, जूनागढ़, कच्छ, मेहसाना, राजकोट, सूरत एव बड़ोदरा। इन जिलों में कुल मिला कर 95 तालुक पंचायते हैं। ग्राम पंचायतों के विना तालुक एव जिला पंचायते जनता के दुख-दर्द को कैसे मिटाये? उनके नुकसान की भरपाई के लिए क्या जतन करे? उन्हे कैसे सात्वना दे? ग्राम पंचायते तो अब छोटे अधिकारियो एव तलातियो के नियत्रण मे काम कर रही हैं। यदि इन क्षेत्रों में निर्वाचित पंचायते होती तो निस्सदेह स्थिति कुछ और ही होती। भूकप प्रभावित पंचायतों की मदद के लिए पडोसी और निकटवर्ती पंचायते आ खड़ी होती। इस पंचायत संस्कृति को विकसित करने के लिए स्थानीय निकायों को मजबूत करना होगा। उन्हें संसाधन सौपने होगे। कर्मचारियों एव संरचनात्मक सुविधाओं से भरा-पूरा बनाना होगा।

सूरत का प्लेग मानव निर्मित आपदा थी। वह भयकर महामारी सूरत नगर निगम के अक्षम और निष्क्रिय प्रशासन की देन थी। यदि सूरत नगर निगम सक्षम, कार्यकुशल तथा जनता की जरूरतों की ओर उन्मुख होता तो प्लेग जैसी महामारी को समय रहते फैलने से रोक लिया जाता समय पर महामारी की चेतावनी दी जा

सकती थी। सूरत ने इस महामारी से सीखा जरूर, किंतु बहुत बडी कीमत चुका कर। आज सूरत देश के सर्वाधिक साफ-स्वच्छ तथा सुप्रशासित नगरो में से एक है। दुर्भाग्यवश शेष गुजरात ने सूरत के अनुभव से कुछ नही सीखा।

अब यह सर्वमान्य है कि स्थानीय सरकार को जनता की समस्याओ को सही ढग से हल करने योग्य बनाने के लिए इन चार चीजों का होना जरूरी है . (1) लोक सभा एव विधान सभा चुनावों की तर्ज पर स्थानीय निकायों के चुनाव निश्चित समय पर हों; (2) प्रजातात्रिक तरीके से निर्वाचित स्थानीय निकायों को कमजोर नही बनाना; (3) निर्वाचित सदस्यों को यह अधिकार हो कि वे नौकरशाहों को काम करने के लिए बाध्य कर सके, और (4) मजबूत विपक्ष की उपस्थिति, जो सदन और समाज, दोनों में सरकार की कमियों की खिंचाई कर सके।

उपर्युक्त मुद्दों को ध्यान में रखते हुए आज यह कहा जा सकता है कि गुजरात—महात्मा गांधी, बलवतराय मेहता, अशोक मेहता, जादवजी मोदी, जी.सी. पटेल, झीनाभाई दारजी, रिखरदास शाह, त्रिकमलाल पटेल तथा रत्नसिह महीदा को जन्म देनेवाले गुजरात—ने हाल की प्राकृतिक आपदा के समय आम जनता के सामने अपने को अक्षम और निरुपाय पाया, तो इसका एकमात्र कारण था : सत्तारूढ़ दल भाजपा द्वारा स्थानीय लोकतंत्र की सतत उपेक्षा।

18

महाराष्ट्र का ग्राम सेवक राज

तुलजापुर तालुक के उस्मानाबाद कस्बे से करीब तीस किलोमीटर दूर बसे तीर्थ के गाँव के करीब तीन सौ घरो की कुल आबादी 1,672 है। इसके बावजूद यहॉ सिफ सातवी कक्षा तक का एक प्राथमिक शिक्षा विद्यालय है और एक ही ऑगनवाडी है। पूरे गॉव के लिए सिर्फ हैंडपम्पवाला एक ही बोरवेल है। पीने के पानी का यही अकेला स्रोत है। गॉव में लगभग एक सौ पन्द्रह घर गरीबी रेखा के नीचे ऑके जा चुके हैं। महाराष्ट्र के राज्यपाल ने 11 नवम्बर 1997 को इस गॉव का दौरा किया था।

जहाँ तक पचायतो का सवाल है, महाराष्ट्र को काफी प्रगतिशील राज्य माना जाता है। लेकिन तीर्थ ग्राम पचायत का दौरा करने पर हमारी ऑखें खुल गयी। इस पंचायत मे सात सदस्य हैं। गाँव के सरपंच अनुसूचित जाति (मॉग) के काशीनाथ सिरसत है। उनकी आदत कम बोलने की है। उपसरपंच शोभा पठाड़े ऊँची जाति की है, बारहवीं कक्षा तक शिक्षित हैं और काफी समझदार भी है। उनके पति भी उन्हीं जैसे हैं। पूर्व महिला सरपच मंगल स्वामी भी अनुसूचित जाति की हैं। वे सातवी कक्षा तक पढ़ी हैं। उन्होने माना कि पहले पॉच साल के उनके कार्यकाल के शुरुआती साढे तीन साल मे उनकी जगह उनके पति एव ग्राम विकास अधिकारी या ग्राम सेवक ही सरपच का काम देखते थे।

काशीराम, शोभा एव मगल सहित करीब 50 गॉववाले वहॉ के सामुदायिक कक्ष में बातचीत के लिए इकट्ठा हुए थे। हमारी बातचीत गॉवों के लिए वित्तीय ससाधनो पर होने लगी। मैंने ग्राम पचायत के बजट के बारे में पूछा। सरपंच का जवाब था कि वह इसके बारे में कुछ नहीं जानते और ग्राम सेवक ही हमें यह जानकारी दे सकते हैं। यह पूछने पर कि पिछले साल के आय-व्यय विवरण का क्या हुआ, उनका जवाब था, वह भी ग्राम सेवक के ही पास है। गाँव के बारे में उनके पास कोई दस्तावेज है? नही, ग्राम पचायत के सभी कागज-पत्र ग्राम सेवक के ही पास है। रिकॉर्डवाली अलमारी की चाबी वे अपने साथ ही ले जाते है। महाराष्ट्र में आम तौर

पर ग्राम सेवक को छह से सात पंचायतें देखनी पडती है और गॉव के सभी संसाधन उसी के सुपुर्द रहते है। ग्राम पचायत के सारे कार्य ग्राम सेवक की मर्जी से ही होते है, उसके बिना वहॉ पत्ता भी नही हिल सकता। निर्वाचित प्रतिनिधियो के पास चाबी का एक अतिरिक्त गुच्छा भी नही है, क्योकि ग्राम सेवक की नजर मे वे विश्वासपात्र नही है। तो यह है सशक्तीकरण।

ग्राम सेवक कैसा है? कायदे से उसे जन सेवा के प्रति असाधारण रूप से प्रतिबद्ध होने के साथ ही साथ खासा ईमानदार भी होना चाहिए। मेरे इस सवाल पर वहॉ खामोशी छा गयी। मंगल स्वामी हॅसी। जब उन्हें बोलने के लिए प्रोत्साहित किया गया तो सामुदायिक भवन मे छायी चुप्पी को उन्होंने ही तोड़ा। ग्राम सेवक की जवाबदेही ग्राम पचायत के बजाय सिर्फ खड विकास अधिकारी (बीडीओ) तक सीमित है। मंगल जब सरपंच थीं तब तत्कालीन ग्राम सेवक ने गाँव से सात हजार रुपये कर के बतौर वसूला था और राज्यपाल के दौरे के मौके पर ग्राम पचायत की इमारत की पुताई पर एक हजार रुपये खर्च किये थे। दिलचस्प यह है कि महाराष्ट्र मे ग्राम सेवक बैक से पैसा भी सिर्फ अपने ही हस्ताक्षर से जब चाहे तब निकाल सकता है। इस मामले में भी ग्राम सेवक ने ग्राम पचायत को खाते दिखाने से मना कर दिया और जब उसकी शिकायत की गयी तो उसका तबादला कर औपचारिकता पूरी कर दी गयी। पिछले साल नये ग्राम सेवक ने भी बैक से सोलह सौ रुपये निकाले थे। उसका भी कोई हिसाब-किताब अथवा उसके इस्तेमाल का ब्यौरा पंचायत को नही दिया गया। जब यह मामला उजागर हुआ तो उस ग्राम सेवक का भी तबादला कर दिया गया। यह भी कोई सजा हुई? नहीं। क्योकि कथित दोषी ग्राम सेवक तबादले के बाद दूसरे खड विकास के अधिकारी के अधिकार क्षेत्र में चला गया है, इसलिए अब तुलजापुर के बीडीओ के लिए उसे सजा देना संभव नहीं है। दिलचस्प तथ्य यह भी है कि ग्राम सेवक ग्राम पचायतों के सदस्यों को पटाने में भी निपुण हैं। वे पचायत सदस्यो के घर जाते है और केन्द्र द्वारा प्रायोजित विभिन्न योजनाओं के तहत उपलब्ध रकम की उन्हें जानकारी देते हैं। फिर उनकी निजी अर्जियों को मजूर कराने के लिए कुछ प्रतिशत दलाली तय कर लेते हैं। ग्राम पंचायत के अपेक्षाकृत सपन्न सदस्यो का समर्थन हासिल करके ग्राम सेवक अपने कार्यक्षेत्र में लोकप्रिय हो जाते है। इस मिलीभगत के कारण ग्राम पचायत और उसके ज्यादातर निर्वाचित सदस्य बेअसर हो जाते हैं। वैसे भी, गॉवों मे चुनाव एव लोकतंत्र तो महज सविधान द्वारा निर्धारित औपचारिकताऍ ही हैं।

तीर्थ गॉव के इस मामले को अपवाद मान कर मैंने राज्य के अन्य गॉवों की पचायतो के कामकाज का जायजा लेने का फैसला किया। मैं उस्मानाबाद कस्बे के 60 किलोमीटर के दायरे में बसे वाखरवाड़ी, तुगॉव, वदगॉव और यादशी ग्राम पंचायतों और लातूर जिले के चिंचौली एव रामवाडी ग्रामों की पंचायतो में भी गया। इन गाँवों

मे मै जिससे भी मिला, लगभग सभी ने तीर्थ गॉव से मिलते-जुलते किस्से ही सुनाये—कही भी निर्वाचित प्रतिनिधियो या सरपचों अथवा तालुक एवं जिला स्तर पर निर्वाचित अध्यक्षो के हाथ मे सत्ता नही है। गॉववालो के साथ एक बैठक मे एक सामाजिक कार्यकर्ता ने बताया कि नजदीक के जिले मे उन्होने देखा है कि जिला परिषद के मुख्य अधिकारी के सामने जिला परिषद अध्यक्ष को बैठने के लिए कुर्सी भी नही दी जाती और उन्हें खड़े-खड़े ही अपना काम करना पडता है।

जिले में सबसे ज्यादा पैसा जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डीआरडीए) के तहत आता है। लातूर जैसे छोटे-से जिले मे चौदह लाख लोगो की ग्रामीण आबादी के लिए साल 2000-01 में कुल 2516.4 लाख रुपये (123.87 राज्य सरकार के कोष से आने बाकी हैं) आये थे। लेकिन डीआरडीए का नियत्रण किसके हाथ मे है? यह पालक मत्री (जिले का प्रभारी मत्री) एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी के नियत्रण मे है। मत्री महोदय सर्वोच्च सभा (आम सभा) के सभापति हैं और कार्य समिति के अध्यक्ष के नाते मुख्य कार्यकारी अधिकारी उसकी वित्तीय एव प्रशासनिक देखरेख के प्रभारी है। केन्द्र सरकार के एक आदेश के मुताबिक जिला परिषद के अध्यक्ष उसकी संचालन समिति की अध्यक्षता औपचारिक प्रमुख के तौर पर करते हैं। सचालन समिति के अधिकतर सदस्य सबद्ध विभागो के अधिकारी हैं।

महाराष्ट्र में निचले स्तर पर नियोजन की अभी कोई परंपरा नही है और नियोजन का कार्य पचायतों के अधिकार क्षेत्र मे भी नही है। जिला नियोजन का कार्य जिला नियोजन एवं विकास परिषद के जिम्मे है, जिसके अध्यक्ष पालक मत्री है और उनके बाद सबसे महत्वपूर्ण भूमिका जिला कलक्टर की है। सविधान के अनुच्छेद 243 जेडडी के तहत महाराष्ट्र सरकार ने अभी तक जिला योजना समितियों का गठन नहीं किया।

पंचायतो से संबंधित अधिकारियों के भ्रष्टाचार के बारे में पूछने पर लातूर के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा कि भ्रष्टाचार तो चारों तरफ फैला हुआ है और उसमे हर कोई हिस्सेदार है। गॉवों मे विकास गतिविधियॉ ठप रहने के लिए उन्होंने वहॉ के निर्वाचित प्रतिनिधियों को दोषी ठहराया। उनका कहना था कि अपनी लोकप्रियता खोने के डर से निर्वाचित सरपंच एवं अन्य सदस्य लगान जमा करने आदि जैसे कडे फैसले लागू करने से बचते है और इसी वजह से विकास के लिए पैसो की कमी पड़ती है।

महाराष्ट्र में भी जातिवाद कटु सामाजिक यथार्थ है। अग्रणी जातियॉ हर कीमत पर पिछडी जातियों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहती हैं। लिहाजा जिन जिलो में यह अध्ययन किया गया, वहॉ कहीं भी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का पालन होता दिखाई नहीं दिया। कई जिलों में चुनाव के दौरान अग्रणी जातियों द्वारा समर्थित उम्मीदवारों के आगे कोई दूसरा व्यक्ति खड़ा होने की हिम्मत ही नही जुटा पाता। मिसाल के तौर पर पिछले पच्चीस सालों से लातूर जिले के रामवाड़ी गॉव मे चुनाव

के दौरान कोइ उम्मीदवार ही सामने नहीं आता था। वहॉ के मौजूदा सरपच एक अनपढ बुजुर्ग व्यक्ति हैं। दिलचस्प तथ्य यह है कि वहॉं के गॉववाले भी चुनाव मे कोई उम्मीदवार न होने को अपनी बडी भारी सफलता मानते है। इसकी मिसाल मुझे एक रात करीब सौ गॉववालों की बैठक मे देखने को मिली, जब उन्होंने कहा कि उन्हे चुनाव मे काई उम्मीदवार न होने के कारण अपने गॉव पर गर्व है, क्योकि चुनाव से वहॉ की शांति एव सौहार्द में दरार पड़ सकती है। यहॉ सवाल यह उठता है कि शाति किसकी? किसका भाईचारा? निचली जातियों का तो कदापि नहीं। सदियो से अछूत माने जानेवाले लोगों को अब भी अप्रत्यक्ष रूप से समाज से अलग-थलग रखने की कोशिश वहॉ जारी है। गॉव में यदि दो बोरवेल लगाने की मजूरी मिलती है, तो उनमें से एक वहॉं के सबसे ताकतवर व्यक्ति के घर के पास लगेगा और दूसरा मदिर के पास। इससे दोनो ही नलो से निचली जाति के लोग पीने का साफ पानी नहीं भर पाते।

ग्राम सेवकों से ले कर जिला मुख्य कार्यकारी अधिकारियों तक पचायतों का नियत्रण तीन स्तर पर होता है। संबद्ध विभाग ही सारे कामकाज करते हैं। उनकी मजूरी के लिए अकसर ग्राम सभाओ की बैठक भी नही बुलायी जाती और निर्वाचित प्रतिनिधियो का काम महज शिकायते सुनने, ज्ञापन लेने और प्रमाणपत्रों पर हस्ताक्षर करने तक सीमित है। उन्हे प्रशासनिक फैसले करने का कोई अधिकार नहीं है। उनके पास कोई ससाधन भी नही है। उन्हें लगान और केंद्र द्वारा प्रायोजित इक्का-दुक्का योजनाओ से आनेवाली राशि से ही गुजारा करना पड़ता है। ग्राम पंचायत के स्तर पर लगान जमा करने के बारे मे जितना कम कहा जाये उतना ही अच्छा है, क्योंकि वहॉ यह भावना है कि समर्थ लोग भी बिना फायदे के लगान क्यों जमा करे?

यादशी ग्राम पंचायत की आबादी करीब दस हजार है और उसके सरपच राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी से जुड़े और स्नातक डिग्रीधारी हेमंत विठ्ठल राव सास्ते हे। पचायतों पर विभिन्न विभागो के नियत्रण के बारे मे सास्ते ने भी यही बातें कहीं। उनका कहना था कि उनके पास बहुत ही सीमित अधिकार है और हर एक काम के लिए उन्हें खंड विकास अधिकारी या जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी की चिरौरी करनी पडती है। सरपच को सिर्फ पॉच सौ रुपये तक खर्च करने का अधिकार है और उसका अपना भत्ता महज चार सौ रुपये मासिक है। उन्हें इस बात की जानकारी है कि सरकार ने ग्राम पंचायतों की समस्याओ की समीक्षा के लिए एक समिति बनायी थी, लेकिन जमीनी स्तर पर अभी तक तो कोई सुधार दिखाई नहीं देता।

महाराष्ट्र जैसे राज्य के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वहॉं अभी तक जिला ग्रामीण विकास अभिकरण को पचायतों के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखा गया है, जब कि कई अन्य राज्य उसे पंचायतो से जोड चुके है। लातूर जिले की ही मिसाल लीजिए।

यदि डीआरडीए के तहत सालाना मिलनेवाली 2640 34 लाख रुपये की राशि ग्राम सभाओं से ले कर जिला परिषद तक की भागीदारी सुनिश्चित कर ईमानदारी से गॉववालो पर खर्च की जाये, तो औसतन पंद्रह सौ से दो हजार आबादीवाली पचायतो के अधिकार क्षेत्र को इससे कितना ज्यादा फायदा पहुँचेगा! पूरे तत्र पर अभी भी सासदों, विधायकों, कलक्टरो, मुख्य कार्यकारी अधिकारियो, खंड विकास अधिकारियो और ग्राम विकास अधिकारियों का कब्जा होने के कारण गॉव अभी तक कई दशक पहले जैसे ही पिछड़े हुए है। एक महिला खेतिहर मजदूर की मजदूरी अभी तक पच्चीस-तीस रुपये ओर पुरुष खेतिहर मजदूर की पैंतीस-चालीस रुपये प्रतिदिन है। इनमे से ज्यादातर जिलो में आधी से ज्यादा आबादी निरक्षर है। कई गाँवो में स्कूल भी नहीं है। एक महिला की आपबीती सुन कर काफी तकलीफ हुई, क्योंकि पढाई-लिखाई मे तेज होने के बावजूद हाई स्कूल गाँव से बहुत दूर होने और वहाँ तक आने-जाने का कोई सुरक्षित साधन उपलब्ध न होने के कारण उनकी बेटी को पढ़ाई छोड कर घर बैठना पडा है।

महाराष्ट्र की समस्या यह है कि राज्य अभी तक बलवतराय मेहता समिति की रिपोर्ट के खॉचे से उबर नही पाया है। सविधान के 73वें सशोधन की भावना के प्रति कहीं भी जागरूकता नही दिखती और अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट की तो बात ही जाने दीजिए जिसके तहत पंचायतों को स्वशासी संस्थाएँ बनाने पर जोर दिया गया था, न कि सिर्फ योजनाओं को कार्यान्वित करने की एजेंसियाँ।

महाराष्ट्र भी राजनैतिक नेतृत्व और नौकरशाही द्वारा सत्ता और लोकतत्र के सही मायनों मे विकेद्रीकरण मे कोताही की देशव्यापी प्रवृत्ति का शिकार है। यहाँ प्रोफेसर दॉतवाला का कथन याद आता है कि राजनैतिक नेतृत्व भले ही कितना दम भरे, मगर वह विकेद्रीकरण के विचार के खिलाफ हैं। इसकी एक वजह विपक्षी राजनैतिक ताकतो पर अकुश लगाये रखने की राजनैतिक मजबूरी भी है। कर्नाटक के स्वर्गीय अब्दुल नजीद साव ने भी बहुत सही कहा था कि नौकरशाही अभी तक इस बात के लिए तैयार नहीं है कि उनके विभागीय अधिकारों में कटौती हो और ये अधिकार ऊपर से नीचे तक लोकतात्रिक फैसले करनेवाली सस्थाओ मे बँट जाये जिनके बूते ये सस्थाएँ विभागीय योजनाओं को बदलने में सक्षम हों। महाराष्ट्र के सदर्भ मे यह बात और भी महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि देश मे सबसे पहले वहीं पर, साठ के दशक की शुरुआत में ही, जिला परिषदों के तहत 'जिला सेवा' (तकनीकी एवं सामान्य) का गठन किया गया था। इसके जरिये राज्य सरकार ने पंचायतो के लिए अलग से कर्मचारी तंत्र विकसित करने का रास्ता दिखाया था, लेकिन वहाँ मौजूदा हालात इसके ठीक विपरीत हैं।

इसी के समानांतर देखें तो महाराष्ट्र मे सहकारिता का प्रबध तंत्र एकदम उलट है। शक्कर सहकारी समितियो का नियत्रण वेतनभोगी कर्मचारियों के बजाय निर्वाचित

निदेशकों के हाथ में है। वहाँ यह शायद इसलिए संभव हो पाया है कि सहकारी समितियो के चुनाव में गरीब, पिछडे और निचले वर्गो के लोग न तो वोटर है और न ही उम्मीदवार।

कांग्रेस-राष्ट्रवादी कांग्रेस सरकार को अब चेतना चाहिए और निर्वाचित पचायतो को असली अधिकार देने चाहिए। जिला परिषदो और पचायत समितियो के अध्यक्षो का कार्यकाल एक या दो साल तक घटाने, पचायत सदस्यो पर दो बच्चो की बदिश लगाने, कार्यक्रम, वित्त एवं पदाधिकारियों सहित अठारह विषय पचायतों को सौंपने आदि सबधित कागजी घोषणाओं को लागू न करने के गंभीर परिणाम निकल सकते हैं। इन सब के अलावा यशवत ग्राम समृद्धि योजना के तहत पचायतों को राशि सीधे मुहैया कराने के प्रस्ताव को इस साल के शुरू में मंत्रियो द्वारा रोके जाने की खबर से और भी ज्यादा निराशा फैली है। इस योजना के तहत ग्राम स्तरीय परियोजनाओं को लागू करने के लिए सात सौ पचास करोड रुपये की राशि सीधे ग्राम पचायतों को दी जानेवाली थी। महाराष्ट्र के लोगो मे इन सब की चिताजनक प्रतिक्रिया पूरे देश को दिखाई दे रही है।

जहाँ तक पंचायती राज को मजबूत बनाने का सवाल है, निस्संदेह महाराष्ट्र के लोगों ने शिव सेना-भाजपा गठबंधन से इससे अधिक उम्मीद नहीं की थी। लेकिन काग्रेस-राष्ट्रीय कांग्रेस सरकार बनने से उम्मीदें काफी बढ गयी हैं। फिर भी, जमीनी हकीकत अधिक विश्वास नही जगाती। क्या विलासराव देशमुख और शरद पवार सुन रहे है?

19

नायडू को पंचायतें नहीं चाहिए

नवबर 2000 में विश्व बैंक के अध्यक्ष जेम्स डी. वुल्फुनसन ने आंध्र प्रदेश का दौरा किया था। उस समय विश्व बैंक की एक टीम ने अपने एक नोट में इस राज्य के बारे मे टिप्पणी की थी कि 'एन. चद्रबाबू नायडू देश के अग्रणी राज्य सुधारक है। स्थानीय ग्रामीण निकायों (पंचायतों) के आगामी चुनाव नायडू की लोकप्रियता सिद्ध करेगे। पचायत चुनावो का अक्तूबर मे होना सुनिश्चित था, लेकिन बिजली क्षेत्र मे सुधारों के राजनीतिक परिणामो को दृष्टि मे रख कर नायडू ने सभवतः उन्हें मुलतवी कर दिया।'

इस कथन का सबसे ज्यादा परेशान करनेवाला पहलू यह है कि सविधान के भाग नौ के तहत पचायतों को सवैधानिक निकायों का दर्जा प्राप्त हुए आठ वर्षो के बाद, आज भी, इन स्थानीय निकायो के चुनाव राज्य के मुख्य मत्री की मर्जी और सुविधा पर निर्भर हैं। विश्व बैंक के दल ने गत वर्ष नवंबर में होनेवाले पंचायत चुनावो के टाले जाने का जब जिक्र किया था तब उन्हें इस बात का संभवत. लेश मात्र भी अदाजा नही था कि तेलुगु देशम पार्टी ने उसके नौ माह पूर्व फरवरी 2000 में जिला एव मडल परिषदों के चुनाव भी स्थगित कर दिये थे। कारण यही था, राजनीतिक स्वार्थ की चिंता।

पंचायत चुनाव स्थगित करने के लिए तेलुगु देशम पार्टी के अजीबोगरीब तरीके रहे हैं, यद्यपि स्थानीय लोकतान्त्रिक निकायों का दम घोंटने के उनके पागलपन मे एक तरह की तर्क-पद्धति दिखाई देती है। चूँकि राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव है और संविधान के आदेश के लिए सम्मान नही है, इसलिए पंचायतो का गला घोटना उनके लिए आसान भी है। उन्होने एक अध्यादेश द्वारा जिला एवं मंडल परिषदो को प्रशासको के हवाले कर दिया और चुनावो से पीछा छुड़ा लिया, जब कि सविधान में ऐसा कोई प्रावधान नही है। इस सबका कारण यह बताया गया कि आध्र प्रदेश विधान सभा ने केंद्र सरकार से सविधान की अनुच्छेद 243सी को संशोधित करने

ी अपील की थी और इसीलिए जब तक ससद द्वारा इसे संशोधित नहीं किया जाता, ाज्य सरकार जिला एवं मडल परिषदो के चुनाव नहीं करवा सकती। पचायत चुनावो को टालने का सबसे ज्यादा बेतुका बहाना सभवत· और कोई नही हो सकता और यह भी तब, जब कि सविधान में पंचायतों का पॉच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही चुनाव कराने का प्रावधान स्पष्ट रूप से किया गया है। उपर्युक्त अध्यादेश निरस्त होने के बाद सविधान का 87वॉ संशोधन ससद में पेश कर दिया गया, जिसका उद्देश्य था अनुच्छेद 243सी को सशोधित करना। ऐसा करने से पूर्व अन्य दलों या राज्य सस्थाओ से विचार-विमर्श भी नहीं किया गया।

सत्ता के गलियारो में सविधान से खेलते राजनेताओ के साथ-साथ इस देश मे राजनीतिक रूप से जागरूक नागरिक भी रहते हैं, जिनके दिलो मे अपने देश के सविधान के लिए बेहद सम्मान है। ये देशवासी तेलुगु देशम दल की सरकार को कभी भी क्षमा नही करेगे। इनमें से कुछ ने सविधान की आत्मा के हनन के लिए दोषी आंध्र प्रदेश सरकार के विरोध में जनहित याचिकाएँ दायर कीं। जैसी कि उम्मीद थी, उच्च न्यायालय ने देशवासियों की मदद के लिए जो जायज था, वही किया। उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को 31 मई 2000 तक चुनाव कराने का आदेश दिया। राज्य सरकार ने 'अपनी भूल नहीं सुधारेगे' की जिद पर अमल करते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की। सर्वोच्च न्यायालय ने भी राज्य उच्च न्यायालय के आदेश पर अपनी सहमति की मुहर लगाते हुए 31 मार्च तक जिला एव मडल परिषदों के पचायत चुनाव कराने का आदेश दिया।

इसी दौरान ग्राम पंचायत चुनाव, अपने निर्धारित समय पर, अक्तूबर 2000 मे सिर पर आ गये। इसलिए इस समस्या से जूझने की सबसे आसान राह थी सविधान के अनुच्छेद 243डी(6) की मदद लेना। यह अनुच्छेद राज्य विधायिका को पचायतो में सीटों एव पदों पर पिछडे वर्गो के लिए आरक्षण करने का अधिकार प्रदान करता है। इस अनुच्छेद का 1993 से अब तक प्रत्येक राज्य के मुख्य मंत्री अथवा सत्तारूढ़ दल ने अनुचित प्रयोग किया है। अपने फायदे के लिए। पंचायत चुनाव टालने के लिए। किसी भी राज्य में एक पिछडा हुआ नागरिक किसे कहेंगे? इस तरह के पिछड़े वर्गो की न जनगणना हुई है न ही इनकी पहचान का कोई एक सर्वसम्मत आधार है। वस्तुत· यह धारा भानमती का पिटारा है। चुनाव मुलतवी करने के लिए एक खूबसूरत बहाना। मेरे विचार से, ससद को इस धारा पर गंभीरता से विचार करना चाहिए तथा अनुच्छेद 243डी के खण्ड (6) को ही समाप्त कर देना चाहिए। अन्य पिछड़े वर्गो के लिए जब ससद तथा विधान सभा में आरक्षण का प्रावधान नहीं है, तब पचायतों के लिए यह जरूरी क्यों हो?

अदालतों मे दाखिल याचिकाओ से इस खंड के उपयोग तथा पदो के आरक्षण

के लिए अन्य पिछडे वर्गो की पहचान के तरीको पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। 1995 के पचायत चुनावो में आध्र प्रदेश पिछडा वर्ग वित्त निगम द्वारा 1981-87 में किये गये सर्वेक्षण को आधार मान कर लॉटरी प्रणाली से पिछडे वर्गो के लिए आरक्षण किया गया। याचिकाकर्ताओ का यह कहना था कि चूँकि लॉटरी प्रणाली एक अवैज्ञानिक तरीका है, इसलिए कोई तर्कपूर्ण विधि अपनायी जानी चाहिए। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को मान लिया तथा पिछड़े वर्गो की जनसंख्या की वैज्ञानिक विधि से गणना करने का समय 31 मई तक निश्चित कर दिया।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है : पिछले पॉच वर्षो से ये याचिकाकर्ता क्या कर रहे थे? यदि लॉटरी प्रणाली अवैज्ञानिक और अतार्किक थी, तो वे चुनाव की पूर्व-संध्या को ही क्यो जागे? पिछले अनेक वर्षो से 'ई-गवर्नेन्स' और 'स्मार्ट गवर्नेन्स' के दावे करनेवाली नायडू सरकार इस अवधि में क्या कर रही थी? सरल, नैतिक, जवाबदेह, सवेदनशील एवं पारदर्शी समझी जानेवाली यह सरकार इस मामले में क्यों निष्क्रिय थी? क्या यह बिना किसी राजनीतिक एजेंडा के सभव है? सबसे अधिक दुखदायी है वह जगह जो मुख्य मंत्री चद्रबाबू नायडू ने 'आध्र प्रदेश भविष्य का स्वप्न 2020' शीर्षक दस्तावेज मे पचायतो को दी है। 352 पृष्ठो के इस दस्तावेज मे पंचायती राज संस्थाओ को सिर्फ एक पैराग्राफ मे निपटा दिया गया है। स्पष्ट है कि तेलुगु देशम पार्टी ने 73वे एव 74वे संविधान सशोधनो में विहित विकेंद्रीकरण के सिद्धान्त को ठीक से समझा ही नहीं है। उसका कहना है कि 'पंचायती राज सस्थाओ तथा सामुदायिक संगठनो के जिम्मेदार प्रबधन के माध्यम से राज्य अपने प्रशासन को मजबूत बनाने के लिए कटिबद्ध है।' (पृष्ठ 325)

क्षमा करें, मुख्य मत्री नायडू जी, आप पचायतो को सामुदायिक संगठनों के साथ नही जोड सकते। देश के सविधान ने पंचायतों को स्वशासन की सस्थाओं के रूप मे परिभाषित किया है (अनुच्छेद 243जी)। सभी सरकारी कामों के लिए पचायते देश में सरकार का तीसरा स्तर है। निस्सदेह चन्द्रबाबू नायडू की यह सोच तेलुगु देशम पार्टी की 1984 की विचारधारा के विपरीत है। 1984 मे तेलुगु देशम पार्टी के घोषणापत्र मे कहा गया था कि वह देश की संघीय नीति मे सरकार के तीसरे स्तर के रूप मे प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित ऐसे जिला प्रशासन के लिए काम करेगी, जिसे सवैधानिक मान्यता हो, ताकि लोग स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक स्व-शासन हासिल कर सके, जो जिला नौकरशाही के अधीन नहीं, बल्कि उसके शीर्ष पर होगा और अंततः जिला सरकार को एक स्थायी संस्था बन जाना चाहिए। (पृष्ठ 14) तेलुगु देशम को निस्संदेह इसका श्रेय देना पड़ेगा कि अस्सी के दशक मे इस दल ने आंध्र प्रदेश मे स्थानीय शासन का अपना ही तरीका विकसित करने का प्रयास किया था। सबसे गरीब वर्ग के दरवाजे तक स्थानीय स्वशासन की सस्थाओं को ले जाने के उद्देश्य से यह महत्वपूर्ण कदम उठाया गया था। यह कदम उसका अपना था—पश्चिम बंगाल अथवा कर्नाटक

ा अनुकरण नहीं। लेकिन खेद है कि एक वर्ष से भी अधिक समय से आज उसी लुगु देशम के शासन मे पचायतें प्रशासकों के चगुल मे फँसी कराह रही हैं।

पचायती राज और विकेंद्रीकरण के आग्रही सभी लोग आध्र प्रदेश की ओर देख रहे थे कि वहॉ की सरकार सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार जिला एवं मडल पंचायतों के चुनाव 31 मार्च तक संपन्न कराने के लिए क्या करती है। क्या किया आध्र प्रदेश की स्मार्ट सरकार ने--अपने चीफ एक्जीक्यूटिव ऑफिसर की अध्यक्षता में (चन्द्रबाबू नायडू स्वयं को आंध्र प्रदेश लि. का सी.ई.ओ. कहलाना पसंद करते हैं)? उन्होंने चुनाव प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए कुछ भी नहीं किया। वे पूर्णतः निष्क्रिय बैठे रहे।

बहरहाल, सरकार चार महीने की नींद से जगी और सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दाखिल कर चुनाव करवाने में असमर्थता जाहिर करते हुए चुनावों को पुनः मुलतवी करने की प्रार्थना की। 4 अप्रैल 2001 को सर्वोच्च न्यायालय में जब इस मामले की सुनवाई हुई तब उम्मीद की एक किरण जगी कि न्यायपालिका को धता बता कर राजनेता अपने निहित स्वार्थों के लिए जनतंत्र एवं जनतांत्रिक सस्थाओं को कुचल नहीं सकते।

वरिष्ठ अधिवक्ता ए.के. गागुली ने जब सर्वोच्च न्यायालय मे आध्र प्रदेश राज्य का पक्ष प्रस्तुत करते हुए दलील दी कि चुनावो के लिए और अधिक समय की मॉंग पिछडे वर्गों के मतदाताओ की गणना करने संबंधी आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय को पूरा करने के लिए की गयी है, तो प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को बताया गया है कि राज्य किसी न किसी बहाने मार्च 2001 से चुनाव टाल रहा है। तब सर्वोच्च न्यायालय ने जानना चाहा कि प्रशासन की स्थिति क्या है। बताया गया कि जिला परिषदों के दायित्वो का वहन करने के लिए विशेष अधिकारी के रूप मे जिलाधीशों की नियुक्ति की गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने वर्तमान स्थिति पर अपना असतोष जाहिर करते हुए कहा कि चुनाव प्रक्रिया को परे रख कर राजनीतिक दलों द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा प्रशासन चलाना न्यायालय को कदापि मान्य नहीं होगा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय देने के बाद आंध्र प्रदेश राज्य चुनाव आयोग के वकील ने एक दूसरी दलील रखी कि सीटो की पहचान के बाद आयोग को 40 दिन चाहिए, अतएव इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए। किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट तौर पर कहा कि यह राज्य चुनाव आयोग और राज्य सरकार का आपसी मामला है और इस बारे मे जो भी किया जा सकता है, वह किया जाना चाहिए, किंतु चुनाव 31 जुलाई 2001 तक होने ही चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय सभी राज्यो के मुख्य मंत्रियों तथा सत्तारूढ़ दलो के लिए एक सामयिक चेतावनी है कि राज्य विधायिकाएँ पंचायतों के साथ गरीब सौतेले भाई जैसा व्यवहार न करें। पंचायत चुनावो की उपेक्षा न करे। पचायतों को अपनी स्वार्थ सिद्धि का

साधन न बनायें। स्थानीय लोकतन्त्र के बीज को वृक्ष बनने से पहले ही न उखाड़ फेंके।

यह कैसी विडंबना है कि तेलुगु देशम दल की 'परिकल्पना 2020' गांधी के इस कथन के साथ समाप्त होती है, 'केंद्र में बैठे 20 व्यक्तियों द्वारा सच्चा लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता। यह तो प्रत्येक ग्रामवासी के द्वारा ही संभव है।' लोकतंत्र की नींव अर्थात निर्वाचित पंचायतों के प्रति तेलुगु देशम की यह अश्रद्धा निस्संदेह गंभीर चिंता का विषय है। यद्यपि राज्य सरकार ने एक विशेष याचिका दाखिल कर सर्वोच्च न्यायालय को आश्वासन दिया है कि मंडल एवं जिला परिषदों के चुनाव इस वर्ष जून में एवं ग्राम पंचायतों के चुनाव जुलाई में संपन्न होंगे, राज्य सरकार द्वारा पंचायत चुनावों को संपन्न कराने का एक आखिरी मौका देने की प्रार्थना करने पर सर्वोच्च न्यायालय चुनाव प्रक्रिया को फिर स्थगित करने के विचार से नाखुश है, फिर भी उसने राज्य को 31 जुलाई 2001 तक पंचायत चुनाव अवश्य कराने का आदेश दिया। न्यायालय ने कहा कि वह अब तारीख नहीं बढ़ायेगा। हो सकता है, इस बार समय पर चुनाव हो जायें, पर लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित पंचायती राज संस्थाओं के प्रति तेलुगु देशम का समग्र रवैया गहरी चिंता का विषय है—इसलिए भी कि यही रवैया कई अन्य राज्यों में भी देखने को मिल रहा है।

20

स्थानीय लोकतंत्र के लिए बेताब कश्मीर

कश्मीर में स्थानीय लोकतत्र की चाहत देश के अन्य भागो में रहनेवाले अधिकाश लोगो के लिए अजीब बात लग सकती है, क्योंकि मीडिया द्वारा कश्मीर की जो भयावह छवि निर्मित की गयी है वह उग्रवाद एवं आतकवाद की है।

कंगन ब्लॉक कारगिल-लेह राजमार्ग पर श्रीनगर से 45 किलोमीटर दूर स्थित है। इस दूरी को तय करने मे डेढ़ घटा लग जाता है, क्योकि यह नाम मात्र का राजमार्ग है। अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान के खिलाफ युद्ध घोषणा के तुरत बाद मैने जब ब्लॉक का दौरा किया तो सरपंचो, नायब सरपचों और पचो के रूप मे चुने गये डेढ सौ के करीब लोग बीडीओ के दफ्तर में इकट्ठा हुए थे। हिमालय की गोद मे बसा यह एक खूबसूरत गॉव है। श्रीनगर जिले के चार ब्लॉकों मे से एक, कगन मे हलका (ग्राम) पचायतों के चुनाव इस साल मार्च मे हुए थे। अखाल पचायत के सरपच जलालुद्दीन शेख को आठ सौ वोट मिले। अखाल में 1990 वोटर हैं, जिनमे से 1200 ने मार्च के चुनावों मे अपने मताधिकारो का इस्तेमाल किया। महिलाओं ने भारी संख्या में मतदान किया। छह उम्मीदवारो मे जलालुद्दीन चुने गये। क्या चुनावों के दौरान उम्मीदवारों को उग्रवादियों से धमकियॉ मिल रही थीं? जवाब था, नहीं। क्या उग्रवादियों ने वोटरों को डराया-धमकाया? उत्तर फिर 'नहीं' मे था। इस ब्लॉक मे महिलाओ एवं पुरुषो की लबी कतारे थीं जो हलका पचायतों को चुनने के लिए अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

क्या पंचायते सरकारी तौर पर गठित कर दी गयी है? नही, उग्रवादियों से मिली किसी धमकी की वजह से नहीं, बल्कि सरकार की रेंगनेवाली रफ्तार के कारण पचायतें गठित नहीं हो पायी थी। सरकार की तरफ से कोई अधिसूचना नही है। पचायतों की बैठक करने के लिए जगह भी नहीं है। हालाँकि अधिकारियों का कहना है कि 27 जुलाई को अधिसूचना जारी कर दी गयी थी, लेकिन चुने गये सरपचो और पंचायत सदस्यो का एकमत से कहना है कि उन्हें ऐसा कोई पत्र नही मिला

है। एक सरपच पूछता है, 'हमारे लिए बैठने की कोई जगह नहीं है, इसलिए पंचायत की बैठक कैसे बुलाये?' कगन ब्लॉक में पंचायतो के लिए 27 इमारतो की जरूरत है, जब कि है केवल सात। जिस पंचायत भवन मे हम मिले, वह अच्छा था, लेकिन उस पर ब्लॉक पदाधिकारियो ने कब्जा कर रखा है और चुनाव के छह महीने बाद भी इसे पंचायत को नहीं सौपा गया है।

इसमें कोई शक नहीं कि जम्मू-कश्मीर सरकार जिन गॉवों में पंचायत घर नहीं है वहॉ पचायत घर बनाना चाहती हैं। इनमें से कई तो उग्रवाद के दौरान नष्ट हो गये थे, कुछ को 1990 के दशक के शुरू में ही उग्रवादियो ने आग लगा दी थी और कइयो पर सुरक्षा बलों का कब्जा है। पचायत भवनों का वर्तमान वजट पॉच लाख रुपये का है और फर्नीचर के लिए 25 हजार रुपये का बजट है। खाका तैयार है, बजट आवटित है, लेकिन काम अभी शुरू नहीं हुआ है। लोग अधीर हो रहे है।

कगन मे बैठक के दौरान सामान्य वार्तालाप से बातचीत शुरू हुई, लेकिन धीरे-धीरे माहौल गरमाता गया। सरपचों और पंचो ने अपने कष्टों, समस्याओं और चिंताओं को ले कर शोर मचाना शुरू कर दिया। एक सरपच ने कहा, 'जब छह महीने पहले हम चुने गये थे तब हमें लोगो का समर्थन था। जैसे-जैसे वक्त बीतता जा रहा है, वे असमजस मे है। हममें से प्राय' सभी दिहाड़ी मजदूर है। पास में एक पनबिजली परियोजना थी। परियोजना को बीच मे ही रोक दिया गया। उद्योग-धधे नहीं है। मवेशी नही हैं, भेड़ें नहीं हैं। हमारे गॉवों में बुनियादी सुविधाएँ नही है। सडके नहीं है, पुल नहीं है, पीने का पानी नहीं है, बिजली नहीं है, दवाखाना नही है, डॉक्टर नही है, स्कूल नहीं है।' वह समस्याओ पर समस्याएँ गिनाये चला जा रहा था। जब अभी तक 'पंचायत प्रशासन' के नियम तय नहीं हुए हैं या चुने गये पदो की रिक्तियॉ नही भरी गयी है, तो हताश होना स्वाभाविक ही है।

जम्मू-कश्मीर मे दिसंबर 2000 से मार्च 2001 के दौरान तीन चरणों मे पंचायत चुनाव हुए थे। यह तो हारी हुई बाजी का मामला था। चुनावों के लिए सही समय तो 1996 के विधान सभा चुनावों के फौरन बाद का था। (जे एंड के पंचायत ऑन एजेंडा, द *हिन्दू*, 30 अक्तूबर 1996)। लेकिन नेशनल कांफ्रेंस और सरकार मामले को खींचती रही। छोटी-छोटी घटनाओ के कारण ये स्थगित होते रहे। भारत और पाकिस्तान द्वारा परमाणु परीक्षण, करगिल संघर्ष और छत्ती सिहपुरा (दक्षिण कश्मीर) में सिखों की हत्या जैसी घटनाओं ने राज्य की पवित्र इच्छाओं को खत्म कर दिया और अततः जब चुनाव हुए, तो कश्मीर में स्थानीय लोकतंत्र की ललक दिखाई पडी। लद्दाख इलाके में चुनाव सामान्य थे। जम्मू मे भी डोडा जिले के बनिलाल, वारवान और मरवाह ब्लॉकों की 10-15 पंचायतो को छोड़ कर पंचायत चुनावों के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया उत्साहजनक रही (75 से 80 प्रतिशत वोट पडे)। कश्मीर डिवीजन

64 ब्लॉक पड़ते है, 1470 हलका पचायतें है और इनके लिए 1042 सरपच चुने गये। 10,458 सदस्यों (पंचों) मे से 5155 चुने गये तथा शेष 5303 जगहे खाली पड़ी रही। घाटी की स्थिति देखते हुए यह कोई कम बड़ी उपलब्धि नही थी। सदेश स्पष्ट व जोरदार था। कश्मीरियों मे जमीनी लोकतंत्र की चाह है।

पंचायत का यह पहला चुनाव था, इससे पहले 1979 मे चुनाव हुए थे। दिलचस्प बात यह थी कि पहली बार गुप्त मतदान के जरिये चुनाव हुए थे। 1979 में अतिम बार हुए चुनावों मे हाथ खड़े करके चुनाव हुए थे। एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि 1996 के विधान सभा चुनावों में तत्कालीन हालात के चलते राज्य सरकार के कर्मचारियों ने हिस्सा नहीं लिया था, लेकिन इन पचायत चुनावों में सभी ने पूरे मन से भाग लिया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि चुनाव स्वतत्र और निष्पक्ष थे। ताकत का इस्तेमाल नहीं किया गया। घाटी में कई स्थानों पर मैंने जिन वरिष्ठ अधिकारियों और गॉववालों से बातचीत की, उनके अनुसार इस बार शिकायत की कोई रिपोर्ट नहीं थी। खबरों के अनुसार चुनावों के दौरान और बाद मे 14 उम्मीदवार मारे गये। गुलमर्ग में बड़े अधिकारियो के साथ बैठक में मुझे बताया गया कि कुपवाडा और बारामूला जिलो में ही नौ व्यक्तियों की जान गयी। लेकिन जब मैने जॉच-पडताल की तो केवल तीन मामले ही चुनावी हिंसा के मिले। उग्रवादियो द्वारा मारे गये तीन व्यक्तियों में से एक अवामी लीग से सबधित था। उसने मुलगम पंचायत मे निर्वाचन अधिकारी के कार्यालय में 40 नामाकन पत्र जमा कराये, जिसके बाद उसे गोली मार दी गयी। बॉदीपुर ब्लॉक में नेशनल काफ्रेस के दो कार्यकर्ताओ को सरपच निर्वाचित होते ही सुरक्षा के बावजूद मार डाला गया।

निस्सदेह बहुत-से क्षेत्र ऐसे थे जिनमें उग्रवादी लोगों को डराने-धमकाने मे सफल रहे। इन लोगों ने पचायत चुनावो को गभीरता से लिया था। संयोग से ड्यूटी पर तैनात एक भी सरकारी कर्मचारी को उग्रवादियों ने न तो धमकाया और न ही उसे चोट पहुँचायी।

अगर जम्मू-कश्मीर मे स्थानीय शासन की जीवंत प्रणाली होती, तो क्या स्थिति भिन्न होती? जिससे भी मैने चर्चा की, उसका कहना था कि लोकतात्रिक तरीके से चुनी गयी स्थानीय सरकारों से काफी फर्क पड़ता। यह एक आवश्यक स्थिति थी, लेकिन पर्याप्त नही। अभाव और हताशा मुख्य कारण थे, जिन्होंने नौजवानों और बुजुर्गो को उग्रवादी मॉगो की ओर आकर्षित किया था। यदि सामुदायिक भागीदारी से लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान मे रख कर विकास होता तो उग्रवाद काफी हद तक रोका जा सकता था। जबरदस्त ठंड के कारण, घाटी में विकास कार्यो के लिए समय कम ही मिल पाता है। लोगों की लगातार शिकायत है कि सरकार इन वास्तविकताओ को समझती नही है। चूँकि केंद्र के अधिकारी भी गंभीरता को नहीं

समझते, कश्मीर कुचक्र मे फँस कर रह गया है। आम तौर पर धारणा है कि दिल्ली की केंद्रीय सरकार को कश्मीरियो के सोच का पता नहीं है। आर्थिक अभाववाले इस राज्य को पचायत चुनावो पर अपनी जेब से 14.5 करोड रुपये खर्च करने पडे थे, जब कि विशेप स्थिति होने के कारण यह राशि और जरूरी सुरक्षा कर्मचारी केंद्रीय सरकार से आ सकते थे।

यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि पाकिस्तान ने कश्मीर में पचायती चुनावो को विफल करने की पूरी कोशिश की थी। वहाँ की सरकार नही चाहती कि कश्मीर की जनता घाटी मे किसी भी राजनीतिक गतिविधि मे हिस्सा ले। हैरानी होती है कि 1996 या 1997 मे पचायत चुनाव नहीं करा कर राज्य ने कीमती समय क्यो वरबाद कर दिया। उससे पाकिस्तान को ही नहीं, बल्कि शेष विश्व को सही सदेश जाता। इसके विपरीत, ये चुनाव दिसंबर 2000 में पाकिस्तान मे स्थानीय निकायो के पहले दौर के चुनावो के बाद हुए। नेशनल कांफ्रेस को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि पिछले पॉच वर्षो मे उसने अनेक नाजुक संस्थानो को पटरी पर ला दिया है। गंभीर धमकियों के बीच राज्य सरकार द्वारा जनगणना अभियान चलाना कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नही है। लोगो के असाधारण उत्साह से हुए पंचायत चुनावो ने उग्रवादियों की कुछ हवा तो निकाल ही दी है।

अमेरिका पर हुए 11 सितम्बर के आतंकवादी हमलो और बाद के अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम को देखते हुए, कश्मीरियो को उम्मीद होने लगी है कि घाटी में उग्रवाद धीमा पड़ जायेगा। कुछ भी हो, हाल के दिनो मे उग्रवादियो का निशाना नागरिक नहीं रहे हैं। क्या राज्य सरकार इस अद्‌भुत अवसर का फायदा उठायेगी? यही सवाल कश्मीर से सबद्ध और कश्मीरियो के कल्याण से जुड़े सभी लोगो के मन में उठ रहा है।

जम्मू-कश्मीर हाशिये पर धकेले जाने की दुखदायी हकीकत को झेल रहा है। केंद्र में जिम्मेदार लोग इस हकीकत को मानने को राजी नही हैं। कश्मीर और उसकी बहुआयामी समस्याओ को अकसर गलत समझा गया है और उनकी गलत व्याख्या की गयी है, जिससे ये लोग शेष भारत के लोगों से और कट गये है। उनके इस अलग-थलग पडने को रोकने का सबसे अच्छा तरीका विभिन्न स्तरों पर जीवत लोकतांत्रिक सस्थानो को बहाल करना है। राज्य सरकार को इन सस्थानो को मजबूत करने में सक्रिय भूमिका निभानी होगी। उग्रवाद व आतकवाद से निपटने की कोशिश मे केंद्र को इन बुनियादी मुद्दों से गंभीरता से निपटने में कोई कसर नहीं छोडनी चाहिए। उन्हे कश्मीरियों मे विश्वास बहाल करने की कोशिश भी करनी चाहिए। स्थानीय निकायो के चुनावो ने दर्शा दिया है कि अदरूनी और सीमा पार के उग्रवाद के कारण कश्मीरियों की भावनाओ को कम करके नही ऑका जा सकता।

निर्वाचित स्थानीय निकायों के माध्यम से अपने अधिकारो के लिए लडने की कगन के लोगो की जबर्दस्त भावनाएँ वास्तव में कश्मीर के सभी लोगों की भावनाओं का प्रतीक हैं, जिसका मैं स्वयं गवाह हूँ। शानदार पहाड़ियों से घिरे श्रीनगर की ओर ड्राइविंग करते हुए, मेरे मस्तिष्क मे इकबाल के ये मशहूर शब्द गूँज रहे थे - 'वह धरती जिसकी मिट्टी में चिनार की आग छिपी हुई है, कभी ठंडी नही हो सकती, न ही वह अपना स्वाभिमान छोड़ सकती है।'

21

पंचायती राज के दुश्मन

'पचायती राज संस्थाएँ अभी तक कई वजहों से टिकाऊ और जवाबदेह जन-निकाय का दर्जा और सम्मान हासिल नहीं कर पायी हैं। इन वजहों में नियमित चुनाव न होना, निरंतर दमन, कमजोर वर्गों—मसलन अनुसूचित जातियो-जनजातियों और स्त्रियो—का असंतोषजनक प्रतिनिधित्व, शक्तियो का अपर्याप्त विकेंद्रीकरण और वित्तीय संसाधनों का अभाव आदि शामिल हैं...इन दिखाई पडनेवाली खामियों की वजह से यह समझ में आता है कि पचायती राज सस्थाओ को सुदृढता, सुनिश्चितता और निरंतरता प्रदान करने के लिए संविधान में कुछ मूलभूत और आवश्यक तत्वो का समावेश करना निहायत जरूरी है।'

इन्हीं शब्दों के साथ तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री जी. वेकटस्वामी ने सितबर 1991 मे संसद में 72वॉ संविधान सशोधन विधेयक प्रस्तुत किया था। 22 और 23 दिसबर 1992 को लोक सभा और राज्य सभा ने इस विधेयक को 73वें सविधान सशोधन विधेयक के रूप में पारित कर दिया और बाद मे कुछ महीनो के भीतर संविधान में पंचायतों के कुछ मूलभूत और अनिवार्य तत्वों का समावेश कर दिया गया।

क्या अब पचायते कुछ अलग है जब 73वें संविधान संशोधन विधेयक की सर्वसम्मत स्वीकृति अपने दसवें साल मे दाखिल हो रही है? क्या बीते नौ वर्षो ने उन्हें सुदृढ़ता, निरंतरता और सुनिश्चितता प्रदान की है? इस मुद्दे पर बातचीत करने के लिए देश भर के करीब 1500 निर्वाचित प्रतिनिधि 22-23 दिसबर 2001 को नयी दिल्ली में इकट्ठा हुए। एकाधिक वजहों से यह समागम अनूठा था। 73 वें सविधान सशोधन के बाद यह पहली बार था जब नागरिक समाज की पहल पर ऐसा अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ और इस ऐतिहासिक सम्मेलन में सभी राज्यों के प्रतिनिधियो ने हिस्सा लिया। यह सिर्फ उत्सव मनाने का अवसर नही था, यह प्रशासन के तीसरे स्तर के लिए संवैधानिक रूप से चुने गये सदस्यों के अनुभवों को साझा करने का

र अवसर था और साथ ही हर एक राज्य की मोजूदा परिस्थितियो के मुताबिक ापने अधिकारों और कर्तव्यों को समझने का भी। प्रतिनिधियों ने पंचायतों को और ी मजबूत बनाने और पटरी पर लाने के लिए विभिन्न उपायों पर चर्चा भी की।

हालॉकि नब्बे के दशक के प्रारभ से ही कुछ उपलब्धियों को ले कर वहाँ नकारात्मक स्वर थे। मगर जमीनी लोकतत्र के प्रतिनिधियों के इस सम्मेलन का सामान्य रुख हताशा से भरा था। उनके पास पैसे नहीं है, उनके पास काम नहीं हैं, उनके पास काम करनेवाले नहीं हैं। संविधान ने पचायतों को स्वशासन की सस्थाओं का दर्जा दिया है, मगर वे इस आदर्श के कही भी आसपास नहीं हैं। स्वाभाविक रूप से वहॉ इस बात को ले कर भी आत्मनिरीक्षण हो रहा था कि इस निराशाजनक परिदृश्य के लिए कौन जिम्मेदार है। व्यवस्था? व्यवस्था के भीतर काम करनेवाले लोग? या, दोनों? देश भर मे यह एहसास आम है कि कुछ शक्तियॉ है जो 73वे संविधान सशोधन के शब्दों और भावनाओ के साथ, प्रत्यक्षतः और परोक्षत:, छल करने में लगी हुई है। निश्चय ही पंचायतों के सवैधानिक लक्ष्यो की ओर बढ़ने से जिन्हे कुछ गँवाना पड़ा हे, वे इनके दुश्मन हो जाते है। क्या केद्र के और राज्य के स्तर के राजनीतिज्ञ कुछ शक्तियो और विशेषाधिकारों को–जो उनके पास थे और जिनका मजा वे अब तक ले रहे है–जीवत लोकतत्र, तेज विकास और जिला स्तर और उससे नीचे के कुशल प्रशासन के लिए छोड़ने को तैयार हैं? क्या अफसरशाही ग्राम स्तर पर जन प्रतिनिधियों की सर्वोच्चता को तहेदिल से मान्यता दे सकती है और उनके मातहत काम कर सकती है? क्या यह हमारे समय की तल्ख सच्चाई नहीं है कि हमारे देश के सामाजिक ढॉचे में अभी भी सक्रिय सामती तत्व–जर्मीदार, सवर्ण–पचायती राज संस्थाओं के जरिये दिखनेवाले जनशक्ति के उभार के विरुद्ध अपने निहित स्वार्थो की रक्षा के लिए कानून को अपने हाथ में ले रहे हैं? कहने की जरूरत नहीं कि पंचायतों के इन दुश्मनो से केंद्र सरकार और उसके विभिन्न मत्रालयों की मिलीभगत है।

पंचायती राज सस्थाओं के प्रति राज्य सरकारों की उदासीनता के बारे में बार-बार लिखा गया है। किसी न किसी बहाने चुनावों को टालना रूटीन बन चुका है। लगातार लड़ी जानेवाली कानूनी लडाइयों और नागरिको और सामाजिक संगठनों के हस्तक्षेप के बाद अब जा कर सभी राज्यो में (झारखड, अरुणाचल प्रदेश, और पांडिचेरी को छोड कर) चुनाव संपन्न हुए हैं। केरल और कर्नाटक जैसे कुछ राज्य, जिन्होंने पचायतों को प्रशासन का तीसरा स्तर बताते हुए, सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए बडे कदम उठाये थे, अब पीछे हट रहे हैं। हमारे राजनैतिक नेता समुदाय में कुछ अजीब-सी बात है। जब वे विपक्ष में होते है तो स्थानीय निकायो की शक्तियॉ सौंपने के बारे में बेहद स्पष्ट और मुखर होते है। मगर जैसे ही उन्हें सत्ता मिलती है, वे रंग बदर लेते हैं। पंचायतों के लिए यह ऐसी वचनवीरता है जो वस्तुतः स्थानीय निकायों के

दुर्बल बनाना चाहती है। लोगो को अब ज्यादा से ज्यादा यह महसूस हो रहा है कि राजनैतिक दल और राजनेता पंचायतो और उन्हें शक्तिमान करने के लिए संवैधानिक आदेश के नाम पर सिर्फ घडियाली आँसू बहा रहे हैं। ज्यादातर राज्यो के लिए संवैधानिक प्रावधानो की अवहेलना करना (भाग नौ के बहाने) एक रूटीन हो गया है। कुछ उदाहरण देखते है।

अनुच्छेद 243जेडडी के तहत राज्य सरकारो को जिला नियोजन समितियों का गठन करना है, ताकि प्रत्येक जिले मे गॉवो और शहरो की जरूरतों को जोड़ कर मिश्रित योजनाएँ तैयार की जा सकें और विकेंद्रीकृत नियोजन को बढावा मिल सके। नौ साल बीत गये हैं। आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गोवा और गुजरात में भी इन समितियो का गठन होना बाकी है। कई राज्यों में जिला नियोजन समितियों के अध्यक्ष की कुर्सी पर राज्य सरकार के सदस्य काबिज हैं, हालॉकि यह 73वे सविधान सशोधन की भावना के विरुद्ध है। मसलन, तमिलनाडु मे जिला नियोजन समितियो को कार्य आरंभ करने के सरकारी आदेश का जारी होना अभी बाकी है। पंचायतो को वित्त हस्तातरण के लिए गठित राज्य वित्त आयोगों की रिपोर्टें एक अन्य मामला है, जिसकी घोर उपेक्षा हो रही है। उन्हे राज्य सरकारे गभीरता से लेतीं ही नहीं। फिर एक अन्य परेशान करनेवाली प्रवृत्ति पंचायतों की शक्तियो को सीमित करने के लिए समानातर निकायों का उदय है। केद्र और राज्य सरकारें इस मामले मे एक-दूसरे से होड ले रही है। आंध्र प्रदेश का जन्मभूमि कार्यक्रम, हरियाणा की ग्राम विकास समितियॉ, गुजरात की सयुक्त वन प्रबंधन समितियॉ, राजस्थान का वाटरशेड कार्यक्रम, उत्तर प्रदेश के जल उपभोक्ता समूह और परियोजना स्थल क्रियान्वयन समितियाँ, मध्य प्रदेश की जिला सरकार इसके कुछ उदाहरण है। यह मत्रियों, इन समानांतर निकायो में मनोनीत अन्य ताकतवर तत्वों और, सर्वोपरि, जिला कलक्टरों के हाथ मजबूत करने का राज्य सरकारो का खुला प्रयत्न है, जिसमें वे खासा पैसा बहा रही हैं। राजनैतिक दलों और राजनीतिज्ञ (केद्र और राज्य दोनो के) स्पष्टतया पचायती राज के मुकाबले कलक्टर राज को तरजीह देते हैं।

केद्र सरकार इन समानांतर सरचनाओं को मजबूत करने में ज्यादा पीछे नही है। मसलन, ग्रामीण विकास मत्रालय पचायतों को अँगूठा दिखाते हुए ग्रामीण विकास के लिए आबंटित हजारो करोड़ रुपये का इस्तेमाल करते हुए जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डिस्ट्रिक्ट रूरल डेवलेपमेंट एजेसी) को मजबूत करने में कोई कसर नही छोड़ रही है। अगर सिर्फ केद्र सरकार और मत्रालय ने 73वें संशोधन को गंभीरता से लिया होता तो जिला ग्रामीण विकास अभिकरण अब तक अतीत की चीज हो गये होते। इसके बजाय जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के प्रशासन को पेशेवर और मजबूत बनाने के नाम पर पंचायती राज संस्थाओं से अलग इसकी अलग पहचान बनाये रखने के लिए एक नयी पहल हो रही है। मंत्रालय की 2000-2001 की वार्षिक

रिपोर्ट बताती है कि उसका यह रुख कोई तात्कालिक कदम भर नही है। वह बताती है कि जिला ग्रामीण विकास एजेंसियाँ 'पंचायतों से अलग' अपनी पहचान बनाये रखेंगी। इस कदम से मंत्रालय ने साफ तौर पर दोहरे शासन की व्यवस्था प्रस्तुत कर दी है। 'यह शब्दो और भावनाओ दोनो मे सविधान के साथ खिलवाड से कम नहीं है और इससे विकेंद्रीकरण की समूची योजना का नष्ट हो जाना तय है, जैसा कि पिछले पचास वर्षो मे होता रहा है।'—यह संविधान समीक्षा समिति के समक्ष पेश की गयी एक रिपोर्ट मे साफ-साफ कहा गया है।

पचायती राज संस्थाओं को प्रभुत्वहीन बनानेवाला जो सबसे नुकसानदेह कदम केंद्र सरकार और ससद ने उठाया है, वह है स्थानीय विकास के लिए प्रतिवर्ष 1580 करोड़ रुपये सांसदों के अधीन करना। जिम्मेदार नागरिक इस तथ्य से बहुत क्षुब्ध है कि सांसद क्षेत्रीय विकास योजना में पचायतो और नगर निगमो के निरीक्षण से परे सासदो को क्षेत्रीय विकास की योजनाएँ चलाने का अधिकार दे कर न सिर्फ सविधान के 73वे और 74वे सशोधन के प्रासंगिक प्रावधानों को लागू करने के केंद्र और ससद के नैतिक अधिकार के साथ समझौता किया गया है, बल्कि नौकरशाही के तंत्र को मजबूत भी किया गया है। सविधान समीक्षा समिति के समक्ष रखे गये एक अन्य दस्तावेज के मुताविक 'अनुच्छेद 243जी के तहत स्वशासन की जिन संस्थाओ को उन्होंने खुद जन्म दिया, यह उनके शीलहरण सरीखा है।' एक अन्य स्तर पर पचायतो में होनेवाले लोकतान्त्रिक चुनावो के प्रति केंद्र के शासक दल ने बहुत कम सम्मान प्रदर्शित किया है। गुजरात में भाजपा के मुख्य मंत्री ने अपने निर्देश पर चलने को तैयार पचायतों के लिए एक लाख रुपये तक के पारितोषिक देने की घोषणा करते हुए और सर्वसहमति पर जोर देते हुए निर्वाचन मडल को सीधे-सीधे रिश्वत देना चाहा है। मगर गुजरात के लोगों ने पिछलग्गू लोकतत्र के इस सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया है—90 प्रतिशत से ज्यादा ग्राम पंचायतो मे जम कर चुनावी मुकाबले हुए।

जहाँ हर कोई पंचायत के सदस्यो और अध्यक्षों पर यह कहते हुए उँगली उठा रहा है कि वे अक्षम, अकुशल और भ्रष्ट हैं, कोई यह नहीं समझ रहा कि अतत' तो वे उसी तत्र के पुर्जे हैं जो अक्षमता, अकुशलता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। उनके लिए 73वें सशोधन के पारित होने से पहले के ही चार दशकों में उच्चतर स्तरों पर चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा बनाये गये रोल मॉडल हैं कि किस तरह चुनाव लडे जाते हैं, किस तरह विकास योजनाओं के संदर्भ मे दफ्तरशाही के साथ मिलीभगत की जाती है और किस तरह अगले चुनाव के लिए साधन जुटाये जाते है। जॉन ड्रेज के एक अध्ययन के मुताबिक ज्यादातर राज्यो में किसी सरपंच की मुख्य जिम्मेदारी विभिन्न विकास योजनाओ, मसलन जवाहर रोजगार योजना. इंदिरा आवास योजना आदि का निरीक्षण करने की होती है। कई मामलों में इन योजनाओं के साथ सार्वजनिक साधनो की लूट का एक सगठित तंत्र जुड़ा हुआ है, जिसमें सरपंच को विकास का

कुछ पैसा विभिन्न अधिकारियो ग्राम सेवक से ले कर जूनियर इंजीनियर, प्रखड विकास अधिकारी और कतार के विभिन्न पायदानो पर खडे लोगों तक—के बीच 'पुनर्वितरित' होता है। अकसर सभी के हिस्से पहले से ही नियत होते हैं। नीरजा गोपाल जयाल के मुताबिक उत्तर प्रदेश मे 'विभिन्न अधिकारियो और प्रतिनिधियों को दिया जानेवाला प्रतिशत तय होता है. कमीशन की रकम पचायत की बैठक में खुले आम घोषित की जाती है और शायद ही कभी इसका विरोध होता हो।'

इन हालात के लिए किसे दोष दिया जाये? पंचायतों को, उनके प्रतिनिधियो को या तत्र को? केंद्र और राज्य सरकार के राजनीतिज्ञ, सभी स्तरों के अधिकारी, उच्च जातियो के नेता, समृद्ध और ताकतवर और निहित स्वार्थी तत्व खुश ही होगे, अगर पचायती राज नाम के इस शिशु की हत्या हो जाये।

मगर पचायतें तो रहेंगी। जो पंचायतो को 'स्वशासन की सस्थाएँ' घोषित करनेवाले सविधान संशोधन को नष्ट करने पर तुले हैं, उन्हे यह पत्र पढ लेना चाहिए जो प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 27 अप्रैल 2001 को आंध्र प्रदेश के मुख्य मंत्री चंद्रबाबू नायडू को लिखा था, 'आप याद करे कि सविधान के खंड नौ के रूप में शामिल सविधान (73वें सशोधन) विधेयक के पारित हो जाने के साथ ही पंचायती राज सस्थाओं को सवैधानिक दर्जा हासिल हो चुका है। इस संघीय ढॉचे में पचायतो की परिकल्पना शासन के तीसरे स्तर के रूप में की गयी है...इस बीच आनेवाले वर्षो मे पचायती राज के प्रतिनिधियों और कुल मिला कर ग्राम समुदाय के क्षमता विकास का काम प्रमुखता पर रहना है। मै यह भी ध्यान दिलाऊँ कि समानांतर संरचनाएँ (जो पचायती राज संस्थाओं को हाशिये पर ले जाती हैं) गठित नहीं की जानी चाहिए।'

क्या राजनैतिक नेता, सरकारें और विभिन्न स्तरो पर उनके कर्ता-धर्ता और साथ ही स्थानीय दबंग लोग सुन रहे हैं?

था।
की।
और
न
के
वा
में
इट
तर
ज,
पर
री

के
कों
में
ख
ती
त
ंड
ल
स
फ

ती
ती
ना
गा
से

डॉ जॉर्ज मैथ्यू का जन्म 6 मई 1943 को केर
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से उन्होंने प
उनके शोध कार्य का विषय था धर्मनिर
संप्रदायीकरण - केरल राज्य मे अंतर्विरोध
1890-1980। वे 1981-82 में शिकागो वि
दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र मे और 1
विश्वविद्यालय मे विजिटिंग प्रोफेसर रहे।
शिकागो विश्वविद्यालय में काम करने के लिए
वृत्ति प्रदान की गयी। उन्होंने 1968 से एशि
अमेरिका तथा पूर्वी एवं पश्चिमी यूरोप में ध
राजनीतिक प्रक्रिया और लोकतंत्र एव मान
विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनो तथा परिसंवा
की और परचे पढे।

राज्य और समाज के सुधी अध्येता डॉ
अध्ययन और लेख राष्ट्रीय दैनिकों, पत्रिका
मे प्रकाशित होते हैं। हिंदी तथा अन्य भार
भी उनके काम का अनुवाद प्रकाशित हो चुका
कृतियाँ है *कम्यूनल रोड टु अ सेक्यूलर केरल*
राज : फ्रॉम लेजिस्लेशन टु मूवमेंट। उनकी
कृतियाँ है : *डिग्निटी टु ऑल : एस्सेज इन*
डेमोक्रेसी, पचायती राज इन कर्नाटका टुडे
डाइमेंशन्स, पंचायती राज इन जम्मू एड क
ऑफ पचायती राज इन द स्टेट्स एड यूनियन
इंडिया, 2000।

डॉ मैथ्यू इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइ
के संस्थापक-निदेशक हैं। नागरिक अधिकार
वे सक्रिय रहे है। सप्रति उनके शोध और अ
विषय है भारत मे स्थानीय शासन प्रणाली, प
तृणमूल स्तरीय लोकतंत्र। वे अनेक सामाजि
विभिन्न हैसियतों में सबद्ध हैं